सम्बोधि के क्षण

प्रवचन-क्रम

1. मैं अकेला गाता रहूंगा..2
2. मेरा दायित्व..18
3. असुरक्षा--प्रवाह--स्वीकार...47
4. असुरक्षा से संबोधि...77
5. क्षण-क्षण जीना..112
6. मेरा अंतर-सहयोग का सत्य...130
7. जन्मों-जन्मों का जीवन..141
8. मेरा विकल्प...150

सम्बोधि के क्षण
पहला प्रवचन

मैं अकेला गाता रहूंगा

मेरे प्रिय आत्मन्!
बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा है कि मनुष्य
को किसी न किसी प्रकार के डिसिप्लिन, अनुशासन की जरूरत होगी ही।

जरूरत है। अनुशासन की जरूरत है। लेकिन वैसे अनुशासन की नहीं जैसा अब
तक रहा है। अनुशासन दो प्रकार के हैं। एक तो वह जो बाहर से थोप दिया जाए और एक वह जो स्वयं के भीतर से आए। अब तक हमने यही किया है कि सब डिसिप्लिन, सब अनुशासन ऊपर से थोपने की कोशिश की है। ऊपर से हमने सिखाया है आदमी को क्या करना है और क्या नहीं करना है! उस आदमी को दिखाई नहीं पड़ा है कि जो करना है वह करने योग्य है, जो नहीं करना है वह नहीं करने योग्य है। हमने सिर्फ ऊपर से नियम बिठा दिए हैं। इन नियमों के दोहरे दुष्परिणाम हुए हैं। एक तो इन नियमों के कारण व्यक्ति का अपना विवेक विकसित नहीं हो पाता और दूसरा ऊपर से थोपे गए नियम मनुष्य के भीतर विद्रोह पैदा करते हैं। जितना बुद्धिमान व्यक्ति होगा, उतना स्वयं के ढंग से जीना चाहेगा। सिर्फ बुद्धिहीन व्यक्ति पर ऊपर से थोपे गए नियम प्रतिक्रिया, रिएक्शन पैदा नहीं करेंगे। तो दुनिया जितनी बुद्धिहीन थी, उतनी ऊपर से थोपे गए नियमों के खिलाफ बगावत न थी। अब दुनिया बुद्धिमान होती चली गई है, बगावत शुरू हो गई है। सब तरफ नियम तोड़े जा रहे हैं। मनुष्य का बढ़ता हुआ विवेक स्वतंत्रता चाहता है।
स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता नहीं है, लेकिन स्वतंत्रता का अर्थ यह
है कि मैं अपने व्यक्तित्व के तंत्र को निर्णय करने की स्वयं व्यवस्था चाहता हूं, अपनी व्यवस्था चाहता हूं। तो पुरानी सारी अनुशासन की परंपरा एकदम आकर गड्ढे में खड़ी हो गई है। वह टूटेगी ही। उसे आगे नहीं चलाया जा सकता। उसे चलाने की कोशिश महंगी पड़ेगी, क्योंकि जितना उसे हम चलाना चाहेंगे, उतनी ही तीव्रता से नई पीढ़ियां उसे तोड़ने को आतुर हो जाएंगी। और उनका तोड़ने की आतुरता बिल्कुल स्वभाविक, उचित है। गलत भी नहीं है।
तो अब हमें एक नये अनुशासन की दिशा में सोचना जरूरी हो गया है। ऐसे अनुशासन की दिशा में सोचना जरूरी हो गया है, जो व्यक्ति के विवेक के विकास से सहज फलित होता हो। एक तो यह नियम है कि दरवाजे से निकलना चाहिए, दीवाल से नहीं निकलना चाहिए। यह नियम है। जिस व्यक्ति को यह नियम दिया गया है, उसके विवेक में कहीं भी यह समझ में नहीं आया है कि दीवाल से निकलना, सिर फोड़ लेना है। और दरवाजे से निकलने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। उसकी समझ में यह बात नहीं आई। उसके विवेक में यह बात आ जाए तो हमें कहना नहीं पड़ेगा कि दरवाजे से निकलो। वह दरवाजे से निकलेगा। और यह निकलने की जो व्यवस्था है उसके भीतर से आएगी, बाहर से नहीं। अब तक हम शुभ क्या है, अशुभ क्या है, अच्छा क्या है, बुरा क्या है, वह तय कर दिए थे, वह हमने सुनिश्चित कर दिया था। उसे मान कर चलना ही सज्जन व्यक्ति का कर्तव्य था। अब यह नहीं हो सकेगा, नहीं हो रहा है, नहीं होना चाहिए।
मैं जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि हम एक-एक व्यक्ति के भीतर उतनी चेतना, उतना विचार, उतना विवेक जगा सकते हैं कि उसे यह दिखाई पड़े कि क्या करना ठीक है, और क्या करना गलत है। निश्चित ही अगर विवेक जगेगा, तो हम करीब-करीब हमारा विवेक एक से उत्तर देगा। लेकिन उन उत्तरों का एक सा होना बाहर से निर्धारित नहीं होगा, भीतर से निर्धारित होगा। प्रत्येक व्यक्ति के विवेक को जगाने की कोशिश की जानी चाहिए और विवेक से जो अनुशासन आए, वह शुभ है। फिर सबसे बड़ा फायदा यह है कि विवेक से आए हुए अनुशासन में व्यक्ति को कभी परतंत्रता नहीं मालूम पड़ती है।
दूसरे के द्वारा लादा गया सिद्धांत परतंत्रता लाता है। और यह भी ध्यान रहे, परतंत्रता के खिलाफ हमारे मन में विद्रोह पैदा होता है। विद्रोह से नियम तोड़े जाते हैं, और अगर व्यक्ति स्वतंत्र हो और अपने ढंग

से जीने की कोशिश से एक अनुशासन आ जाए, तो कभी भी विद्रोह पैदा नहीं होता है। इस सारी दुनिया में नये बच्चे जो विद्रोह कर रहे हैं, वह विद्रोह उनकी परतंत्रता के खिलाफ है। और उन्हें सब तरफ से परतंत्रता मालूम पड़ रही है। मेरी दृष्टि यह है कि अच्छी चीज के साथ परतंत्रता जोड़ना बहुत मंहगा काम है, अच्छी चीज के साथ परतंत्रता जोड़ना बहुत खतरनाक बात है। क्योंकि परतंत्रता तोड़ने की आतुरता बढ़ेगी, साथ में अच्छी चीज भी टूटने वाली है, क्योंकि आपने अच्छी चीज के साथ परतंत्रता जोड़ी हुई है। अच्छी चीज के साथ तो स्वतंत्रता ही हो सकती है; क्योंकि अच्छी चीज का अच्छा होने के भीतर स्वतंत्रता का तत्व भी अनिवार्य है, अन्यथा वह अच्छा नहीं हो सकता। और अब उस जगह आदमी आ गया है जहां हम उसके विवेक को जगा सकते हैं। शिक्षा बढ़ी है, संस्कृति बढ़ी है, सभ्यता बढ़ी है, ज्ञान बढ़ा है। आदमी के विवेक को अब जगाया जा सकता है। अब उसके ऊपर से थोपना अनिवार्य नहीं रह गया है।
तो मैं नहीं कहता हूं कि सब अनुशासन उठ जाए। मैं कहता हूं, ऐसा अनुशासन आए जो विवेक की छाया बने, जो ऊपर से न थोप दिया गया हो। एक बच्चे को हमने कह दिया है, क्रोध बुरा है। क्रोध नहीं करना है। क्रोध उठेगा, क्रोध कितना ही बुरा हो, जीवन की व्यवस्था में कहीं उसकी जरूरत है। और अगर कोई बच्चा ऐसा पैदा हो जाए जिसमें क्रोध जन्म से ही न हो, तो उस बच्चे को न आप कुछ सिखा सकेंगे, न बड़ा कर सकेंगे, न बुद्धि दे सकेंगे, न उस बच्चे में कोई जान होगी, न कोई रीढ़ होगी। वह बच्चा एक कोने में बैठा-बैठा मर जाएगा। क्रोध एक बल है, जो जरूरी है जीवन के लिए। उस क्रोध के आधार पर बच्चे की जिंदगी में बहुत कुछ आएगा, जो शुभ है।
तो क्रोध को एकदम इनकार कर देना खतरनाक है। प्रकृति और परमात्मा क्रोध दे रहा है। उसका कहीं अर्थ है। एक आदमी, हम ऐसा सोचमें जिसे जन्म से क्रोध नहीं है, तो आप पाएंगे उसमें जीवन ही क्षीण हो गया है। वह सब तरह से सुस्त, ढीला और आलसी हो जाएगा। और उसे किसी चीज में गतिमान नहीं किया जा सकता। अगर आप उसको गाली देंगे, तो वह बैठ कर सुन लेगा। अगर आप उसे धक्का मारेंगे, तो वह धक्का सह लेगा और बैठ जाएगा। अगर आप उससे कहेंगे कि सब दूसरे आगे निकले जा रहे हैं, तू आगे नहीं निकल रहा है, तो वह कहेगा ठीक है। अगर उसके भीतर क्रोध का तत्व नहीं है, तो उसके भीतर गति का तत्व भी नहीं होगा।
लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि क्रोध शुभ है। इसका मतलब केवल इतना है
कि क्रोध एक सीमा तक सार्थक है। एक सीमा के बाद व्यर्थ होना शुरू होता है। एक सीमा तक क्रोध भी सीढ़ी है, और एक सीमा के बाद खतरनाक है। एक उम्र तक क्रोध का होना जरूरी है। और एक उम्र तक क्रोध सिखाया जाना चाहिए बजाए रोके जाने के।
लेकिन हम बच्चे को क्रोध बुरा है, क्रोध पाप है, क्रोध नहीं करना है, ऐसा अनुशासन सिखा दें, तो बच्चा करेगा क्या? सिर्फ क्रोध को दबाएगा, सप्रेस करेगा, अपने को रोकने की कोशिश करेगा। और ध्यान रहे, छोटा-छोटा क्रोध निकल जाए, तो खतरनाक नहीं होता। क्रोध इकट्ठा हो जाए तो खतरनाक होता है। रोज अगर क्रोध निकले, तो उसकी मात्रा इतनी कम होगी जिसका कोई हिसाब नहीं। वह ऐसे ही होगा जैसे हम रोज घर का कचरा बाहर फेंक देते हैं। कचरा फेंकना बंद कर दें, कचरा पैदा होना जारी रहेगा, तो घर में महीने दो महीने में ढेर लग जाएगा और घर में रहना मुश्किल हो जाएगा। कचरा फिर फेंकना पड़ेगा। लेकिन तब वह कचरा बहुत दिखाई पड़ेगा और खतरनाक हो सकता है।
क्रोध रोज थोड़ा बहुत निकल जाए, तो खतरनाक नहीं है। इकट्ठा कर लें अगर
हम क्रोध को, तो वह खतरनाक है। समझा यह जाता है कि जो लोग हत्याएं करते हैं, आत्महत्याएं करते हैं, ये वे लोग हैं जो क्रोध को इकट्ठा कर लेते हैं। जिस आदमी ने रोज-राज क्रोध कर लिया है, वह कभी हत्या नहीं कर पाता। इतना क्रोध ही नहीं जुटा पाता कि किसी की हत्या करने के योग्य पागल हो जाए। उतने पागलपन के लिए एक ज्यादा मात्रा चाहिए। तो रोज छोटी-छोटी बात में क्रोधित हो जाने वाला आदमी खतरनाक नहीं होता है, कभी बहुत खतरा नहीं कर सकता। एक अर्थ में रोज छोटे-मोटे क्रोध कर लेने वाला आदमी सरल होगा। उस आदमी की बजाय जो क्रोध को दबाता चला जाएगा, वह बहुत जटिल हो जाएगा। और उसके भीतर

क्रोध की इतनी मात्रा इकट्ठी हो जाने वाली है कि एक दिन विस्फोट होगा। वह विस्फोट महंगा पड़ने वाला है। उस विस्फोट का कोई भी परिणाम हो सकता है। पर बच्चे को हम सिखा रहे हैं कि क्रोध बुरा है, एक अनुशासन दे रहे हैं और हम सोच रहे हैं हम अच्छा बना रहे हैं। हम अच्छा नहीं बना रहे हैं।
मेरी दृष्टि में बच्चे को क्रोध बुरा है ऐसा ऊपर से नियम देना गलत है। बच्चे के विवेक को बढ़ाने की जरूरत है कि वह जान सके कि क्रोध क्या है? क्रोध बुरा है और भला है, यह नहीं, क्रोध क्या है? और क्रोध में उसके व्यक्तित्व में क्या हो जाता है यह वह जानने के योग्य हो सके। धीरे-धीरे और इसे तो हम उसे समझा सकेंगे और बच्चे बहुत जल्दी समझ सकते हैं।
यूरोप में एक फकीर था, गुरजिएफ, अभी कुछ दिन पहले। उसके आश्रम में जो
भी भर्ती होता, वह पहले कहता कि क्रोध करना सीखो। और क्रोध की ट्रेनिंग देता, प्रशिक्षण देता कि क्रोध ऐसे करो। इतनी तीव्रता से करो, इतनी गति से करो, और इतने जोर से, इतनी इंटेंसिटी से करो कि तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व क्रोधित हो जाए। और तभी तुम जान सकते हो कि क्रोध क्या है।
जब एक आदमी पूरे क्रोध में भरा है, तब गुरजिएफ कहेगा, देखो, उस आदमी को चिल्ला कर कहेगा कि देखो--और ऐसी सिचुएशन पैदा करेगा कि कोई आदमी जो नया आया है बिल्कुल पागल हो जाए क्रोध में। फिर वह चिल्ला कर कहेगा, देखो, स्टाप एंड सी, भीतर देखो कि क्रोध क्या है?
उतने, उतने ज्वलंत रूप में जब क्रोध चारों तरफ जल रहा हो और कण-कण को
आग भर दी हो, तब एक दफा चौंक कर आदमी भीतर देख ले कि क्रोध क्या है, तो उसे झलक मिलती है। हमें कभी क्रोध की झलक नहीं मिलती। जब हम क्रोध में होते हैं, तब बेहोश होते हैं। और जब होश में आते हैं, तब क्रोध चला गया होता है। हमारा कभी मिलना नहीं होता क्रोध से, हमारा कभी एनकाउंटर नहीं होता कि हम आमने-सामने मिल जाएं, देख लें कि क्या है। तो गुरजिएफ कहता था, जिसने क्रोध को नहीं देखा, उसके भीतर क्रोध के संबंध में अनुशासन कभी पैदा नहीं होगा सिर्फ नियम रह जाएगा ऊपर से थोपा हुआ।
और ठीक है यह बात। क्रोध की पूरी स्थिति... और बच्चे जितने सुंदर ढंग
से क्रोधित हो सकते हैं, बड़े नहीं हो सकते। और अगर बच्चे का क्रोध आपने देखा है, तो आप पाएंगे कि उस क्रोध में भी एक सौंदर्य है, एक गतिमयता है, एक डाइनेमिज्म है। एक बच्चा जब पूरे क्रोध से भरता है, क्योंकि बच्चा पूरे क्रोध से भरता है--वह पैर पटक रहा है, वह चिल्ला रहा है, वह कूद रहा है, उसका कण-कण लाल हो गया है, सारी आंख जल गई हैं। इस वक्त बच्चे को हमें जगाने के श्रम करने चाहिए कि तू देख, यह क्रोध क्या है? हम छोड़ देते हैं इस कमरे को, द्वार बंद कर देते हैं कि तू देख, कि तेरे भीतर हो क्या रहा है? यह क्रोध क्या है, इससे तू परिचित हो जा। इससे जिंदगी भर साथ रहेगा, इससे बहुत काम भी लेना है।
क्रोध से परिचित कराने की जरूरत है। और ऐसे ही जीवन की सारी वृत्तियों से, जिनको हम बुरा कहते हैं--सारी वृत्तियों से परिचित कराने की जरूरत है, उनकी पूर्णता में, पूरी गहराई में; तो हमारे भीतर एक विवेक, एक अवेयरनेस पैदा होनी शुरू होती है कि क्रोध क्या है। और यह भी पता चलता है कि क्रोध एक बड़ी शक्ति है, जिसका सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी। और मैं मानता हूं विवेकशील आदमी धीरे-धीरे क्रोध का सदुपयोग करना सिखेगा, दुरुपयोग बंद करेगा। पहला कदम क्रोध खत्म करने का नहीं होगा, पहला कदम क्रोध के सदुपयोग का होगा। क्रोध के सदुपयोग हैं। और जो आदमी क्रोध का सदुपयोग करने में समर्थ हो जाएगा, वह आदमी क्रोध करते क्षण में भी अभिनय ही कर रहा होगा, भीतर वह क्रोध के बाहर खड़ा होगा। नहीं तो फिर प्रयोग नहीं कर सकता है।
हम जिस चीज का भी उपयोग कर सकते हैं, उससे अलग हो जाते हैं फौरन। एक आदमी अगर इतना सचेत हो गया है कि क्रोध का भी सदुपयोग करता है, तो वह आदमी कभी क्रोधित नहीं है। क्रोध से बाहर की घटना रह गई है, जिसका वह उपयोग कर रहा है। और भीतर वह क्रोध के बिल्कुल बाहर है, तभी उपयोग कर सकता है, नहीं तो क्रोध उसका उपयोग कर लेगा। दो चीजें हैंः अगर हम बेहोश हैं, तो क्रोध

हमें जैसा चाहेगा वैसा करवा लेगा। और अगर हम होश में हैं, तो क्रोध से हम जो करना चाहेंगे वह कर लेंगे।
तो पहला कदम क्रोध के अंत करने का नहीं होगा। विवेक विकसित होगा तो क्रोध का सदुपयोग शुरू होगा। दूसरा कदम, जब सदुपयोग में पूरा सामर्थ्य व्यक्ति का पैदा हो जाता है, अब दुरुपयोग क्रोध का नहीं हो सकता है, अर्थात अब क्रोध उससे दुरुपयोग नहीं करवा सकता है, वह बेहोश नहीं है। वह होशपूर्वक क्रोध को भी इंस्ट्रुमेंट और साधन बना लिया है। जब यह समझ पैदा हो जाती है, तब उसे दिखाई पड़ता है कि सदुपयोग में भी गहरे नुकसान पहुंच रहे हैं। यह तब तक दिखाई नहीं पड़ता है, जब तक कोई सदुपयोग करना न सिख लें। तब दिखाई पड़ता है, सदुपयोग तो हो रहा है, वह दूसरे के लिए हो रहा है। जैसे एक बाप अपने बेटे पर नाराज हो रहा है। नाराजगी काम की हो सकती है, और कभी नाराजगी बहुत काम की होगी। कभी बहुत सार्थक हो सकती है। कभी बच्चे के मन पर उस नाराजगी के क्षण में कोई ऐसी छाप पड़ सकती है, जो जिंदगी भर के लिए कीमती हो जाए। लेकिन यह उपयोग करने वाले पर निर्भर है। नहीं तो ऐसी छाप भी पड़ सकती है कि जिंदगी भर के लिए बाप दुश्मन हो जाए।
सच तो यह है कि अगर बाप क्रोध करना जानता हो, तो बाप के क्रोध में बेटे
को प्रेम का पता चलेगा ही। अगर उपयोग करना जानता हो, तो जानेगा कि यह प्रेम का सबूत है। अगर बाप उपयोग करना जानता हो, तो क्रोध में प्रेम ही दिखाई पड़ेगा, और अगर उपयोग करना न जानता हो, तो प्रेम में भी प्रेम दिखाई पड़ने वाला नहीं है। बाप प्रेम करेगा और बेटा समझेगा कि कोई तरकीब है, कुछ करवाने के इरादे में है। और वे बच्चे अभागे हैं, जिनके मां-बाप ने कभी उन पर ज्वलंत क्रोध नहीं किया। ज्वलंत क्रोध बड़ी और बात है। ज्वलंत क्रोध का मतलब हैं कि मां-बाप पूरी तरह इनकार कर रहे हैं किसी बात को अपने पूरे व्यक्तित्व से, कि यह गलत है। थोप नहीं रहे हैं उसके ऊपर कि तू भी गलत मान। लेकिन उनके पूरे व्यक्तित्व को गलत लग रही है वह बात, और वह आग से भर गए हैं कि यह छाप अगर बच्चे पर छूट जाए तो उपयोगी हो सकती है; लेकिन सिर्फ उपयोग करने वाला ही यह छाप छोड़ सकता है।
एक लड़की को मैं जानता हूं, उसका डाइवोर्स हो गया है, पति से अलग हो गई है। तो मां-बाप उसकी बहुत चिंता करने लगे कि वह दुखी न रह जाए। मां-बाप उसकी चिंता करने लगे कि वह दुखी न रह जाए। तो न कभी उस पर नाराज होते। नाराजगी का मौका होता तो भी टाल जाते; क्योंकि वह वैसे ही दुखी है। उसको कोई दुख नहीं देना है। वह जो कहती, मान लेते, चाहे वह मानने योग्य हो या न हो। वह जो मांग करती, पूरी कर देते, चाहे वह उनके खर्च की सीमा के भीतर हो या न हो। मां-बाप इस ख्याल में थे कि वह इस भांति लड़की को सुखी कर सकेंगे। उस लड़की ने मुझसे कहा कि मैं इस घर में एक मिनट नहीं रहना चाहती हूं। ऐसा लगता है कि मुझे कोई भी प्रेम नहीं करता है; क्योंकि कोई मुझे न कभी इनकार करता है, न कोई कभी मुझ पर नाराज होता है। ऐसा लगता है कि मैं यहां मेरे से किसी का कोई गहरा संबंध नहीं है। कोई गहरा संबंध मेरा किसी से नहीं मालूम पड़ता। ऐसा लगता है कि सब मेरे साथ अभिनय कर रहे हैं कि जब वे क्रोध भी करना चाहते हैं, क्रोध नहीं करते हैं। कहीं मुझे दुख न लग जाए। ऐसा लगता है कि सब मुझ पर दया कर रहे हैं, और दया बहुत अपमानजनक है।
कभी आपने ख्याल किया है कि दया बहुत अपमानजनक है? प्रेम का सब्स्टीट्यूट नहीं है दया। जिसको हम प्रेम करते हैं, वह दया नहीं मानता और जिस दिन आपने दया देनी शुरू की, प्रेम खत्म हो गया। अब वह जानता है कि प्रेम खत्म हो चुका है; क्योंकि दया जिस पर हम करते हैं, वह नीचा हो जाता है, दीन हो जाता है, हीन हो जाता है, हम ऊपर हो जाते हैं। प्रेम जिसको हम करते हैं, उसे हम समान तल पर खड़ा करते हैं। दया जिसे हम करते हैं, हम उसे नीचे खड़ा कर देते हैं।
कोई पत्नी दया नहीं चाहती पति से। कोई बेटा अपनी मां से दया नहीं चाहता। प्रेम चाहता है। प्रेम वक्त पर नाराज भी होता है। असल में प्रेम ही नाराज हो सकता है। क्योंकि प्रेम को पता है, नाराजगी से कुछ भी टूटने वाला नहीं है। प्रेम इतना गहरा है कि नाराजगी की गहरी से गहरी चोट भी सिर्फ वृक्ष को हिलाएगी और कुछ भी नहीं कर पाएगी। थोड़ी देर बाद हवाएं चली

जाएंगी, वृक्ष अपनी जगह खड़ा हो जाएगा। सिर्फ प्रेम ही क्रोध कर सकता है। जिससे हमने प्रेम नहीं किया है, उस पर हम क्रोध भी नहीं कर सकते। इसीलिए अजनबी से हमारा क्रोध नहीं होता। जिसके हम जितने ज्यादा निकट हैं, उससे हमारा क्रोध होता है। जितनी निकटता बढ़ती है, उतनी क्रोध की संभावना बढ़ती है। क्रोध का उपयोग अगर कोई सीख ले, तो क्रोध के पीछे छाया प्रेम की ही होती है।
लेकिन हमें क्रोध का कोई उपयोग नहीं मालूम है। और बचपन से सिखा दिया गया है कि क्रोध बुरा है, तो उसको दबाए चले जाते हैं। फिर कभी करते हैं, लेकिन वह करना बिल्कुल बेहोश होता है। उसका कोई शुभ परिणाम नहीं होता है, उसका सिवाय अशुभ के कुछ नहीं होता। और जब अशुभ परिणाम होता है, तो हम पुरानी धारणा को फिर मजबूत कर लेते हैं कि देखो, बचपन से ही सिखाया था कि क्रोध बुरा है, यह बुरा हो गया। फिर हम दबाने लगते हैं। फिर एक विसियस सर्किल शुरू हो गया, एक दुष्चक्र शुरू हो गया है। हम दबाएंगे, फिर क्रोध फूटेगा। जब फूटेगा, तब नुकसान होगा। जब नुकसान होगा, तब दबाने की पुरानी धारणा फिर मजबूत हो जाएगी। फिर इकट्ठा करेंगे, फिर दबाएंगे--पूरी जिंदगी क्रोध और पश्चात्ताप, क्रोध और पश्चात्ताप, उसी में हम जीएंगे। और यह बात जो मैं क्रोध के लिए कह रहा हूं, यह सब वृत्तियों के लिए लागू है यह ख्याल में रख लें।
जब कोई व्यक्ति क्रोध का सम्यक उपयोग करना सीख जाता है, सम्यक क्रोध करना सीख जाता है, राइट एंगर, तब उसे पहली दफा दिखाई पड़ता है कि ठीक क्रोध से भी दूसरे को भला लाभ हो जाए, लेकिन मुझे गहरा नुकसान होता ही है। कहीं न कहीं मेरे भीतर कुछ चीज टूट जाती है। तब वह क्रोध के ऊपर भी उठने का श्रम करेगा। लेकिन अब इस श्रम में दमन नहीं होगा। अब समझ होगी, बुद्धि होगी, विवेक होगा। और अगर आपको दिखाई पड़ जाए कि सांप जा रहा है, तो आपको सांप के ऊपर से निकलने की इच्छा का दमन थोड़े ही करना पड़ता है। सांप दिख गया कि आप बच जाते हैं बिना दमन किए! सांप जा रहा है, और आप उस रास्ते से गुजरते थे, तो जब आपको सांप दिखता है कि जहर सामने है और आप बगल में हट जाते हैं, तो आपको कोई सप्रेशन थोड़े ही करना पड़ता है बगल में हटने के लिए कि सांप पर से निकलने की बड़ी इच्छा थी, उसको दबा कर बगल में हट गए। कोई दमन नहीं करना पड़ता है। सिर्फ अंडरस्टेंडिंग कि सांप है, छलांग लग जाती है, आप बच जाते हैं, सांप निकल जाता है। कहीं पीछे यह आकांक्षा नहीं छूट जाती कि सांप के ऊपर से निकलना था।
जब क्रोध भी सांप की तरह दिखाई पड़ने लगता है, अनुभव में आने लगता है,
तो दमन नहीं करना पड़ता है। आप बस बच कर निकल जाते हैं। क्रोध एक तरफ हो जाता है, आप दूसरी तरफ हो जाते हैं। और जब क्रोध से आप बहुत बार बच कर निकल जाते हैं और दमन नहीं होता, तब क्रोध इकट्ठा नहीं होता है; उसकी क्षमता धीरे-धीरे क्षीण होती चली जाती है। एक क्षण आता है कि आदमी क्रोध के बिल्कुल बाहर हो जाता है। फिर भी हो सकता है, वैसा आदमी भी कभी क्रोध का प्रयोग करे, लेकिन तब वह निपट एक्टिंग होगी, बिल्कुल अभिनय होगा। उसमें कुछ भी नहीं इससे ज्यादा होने वाला है।
मेरा कहना यह है कि विवेक विकसित करने की बात है एक-एक चीज के संबंध में। लंबी प्रक्रिया है। किसी को बंधे-बंधाए नियम दे देना बहुत सरल है कि झूठ मत बोलो, सत्य बोलना धर्म है। पर नियम देने से कुछ होता है? नियम देने से कुछ भी नहीं होता। पुराना अनुशासन गया, आखिरी सांसें गिन रहा है। और पुराना मस्तिष्क उस अनुशासन को जबरदस्ती रोकने की कोशिश कर रहा है। उसे डर लग रहा है कि अगर अनुशासन चला गया, क्योंकि उसका अनुभव यह है कि अनुशासन के रहते भी आदमी अच्छा नहीं था, और अगर अनुशासन चला जाए तो मुश्किल हो जाएगी। उसका अनुभव यह है कि अनुशासन था, तो भी आदमी अच्छा नहीं था तो अनुशासन नहीं रहेगा, तो आदमी का क्या होगा? उसे पता नहीं है कि आदमी के बुरे होने में उसके अनुशासन का नब्बे प्रतिशत हाथ था। गलत अनुशासन था-- अज्ञानपूर्ण था, थोपा हुआ था, जबरदस्ती थी वह।
एक नया अनुशासन पैदा करना पड़ेगा। और वह अनुशासन ऐसा नहीं होगा कि हम बंधे हुए नियम दे दें। ऐसा होगा कि हम उसके विवेक को बढ़ाने के मौके दें, और

उसके विवेक को बढ़ने दें, और अपने अनुभव बता दें जीवन के, और हट जाएं रास्ते से बच्चों के। एकदम रास्ते पर खड़े न रहें उनके। सब चीजों में उनको बांधने और जंजीरों में कसने की कोशिश मत करें। वे जंजीरें तोड़ने को उत्सुक हो गए हैं। और कोई जंजीर बरदाश्त नहीं करेंगे। अगर भगवान भी जंजीर मालूम पड़ेगा तो टूटेगा, बच नहीं सकता। अब सोने की भी जंजीर बचेगी नहीं, क्योंकि जंजीर के खिलाफ मामला खड़ा हो गया है। और अच्छा हुआ है, बुरा नहीं हुआ है, जंजीर बचनी भी नहीं चाहिए।
लेकिन मनुष्य चेतना के विकास का क्रम है। एक क्रम था जब चेतना इतनी विकसित नहीं थी, नियम थोपे गए थे, शायद उसके सिवाय कोई उपाय नहीं था। अब नियम थोपने की जरूरत नहीं रह गई है। अब नियम बाधा बन गए हैं। अब हमें समझ, अंडरस्टेंडिंग ही बढ़ाने की दिशा में श्रम करना पड़ेगा। तो मैं कहना चाहता हूं कि समझ, विवेक, एकमात्र अनुशासन है। पूरी प्रक्रिया बदलनी पड़ेगीः क्योंकि विवेक की जगाने की प्रक्रिया बिल्कुल अलग होगी। नियम थोपने की प्रक्रिया बिल्कुल अलग थी, डायमिट्रिकली अपोजिट हैं दोनों, बिल्कुल विरोधी हैं। खतरे इसमें उठाने पड़ेंगे। खतरे पुरानी प्रक्रिया में भी बहुत उठाए। सबसे बड़ा खतरा तो यह उठाया कि आदमी जड़ हो गया। जिसने नियम माना, वह जड़ हो गया, जिसने नियम नहीं माना, वह बरबाद हो गया। दोनों विकल्प बुरे थे। अगर किसी ने पुराना अनुशासन मान लिया तो वह बिल्कुल इडियाटिक हो गया, बिल्कुल जड़ हो गया। उसकी बुद्धि खो गई। और जिसने बुद्धि को बचाने की कोशिश की, उसे नियम तोड़ने पड़े। वह बरबाद हो गया, वह अपराधी हो गया, वह प्राब्लम बन गया, समस्या बन गया, वह एक मुश्किल की बात बन गया। और दोनों तरफ विकल्प बुरे सिद्ध हुए। जिसने नियम माना वह खराब हुआ। क्योंकि नियम ने उसको जड़ कर दिया, गुलाम बना दिया। और जिसने नियम तोड़ा, वह स्वच्छंद हो गया। नियम से अच्छा फल नहीं आया।
यह हमारी आदमियत आज इसी तरह की है। खतरे इसमें हैं, इसमें खतरे बिल्कुल दूसरी तरह के हैं, जो मैं कह रहा हूं। इसमें खतरे यह नहीं हैं जो पिछली परंपरा में थे, इसमें खतरा सिर्फ एक ही है कि थोड़ी देर लगेगी और धैर्य रखना पड़ेगा। बस, और कुछ भी नहीं। धैर्य की बहुत कमी है। मां-बाप चाहते हैं कि बेटा आज ही बूढ़ा हो जाए। ये बिल्कुल पागलपन की बातें हैं! बूढ़े के जिंदगी भर का अनुभव बेटे पर आज कैसे थोपा जा सकता है? बेटा बूढ़ा होते-होते बूढ़ा होगा। वक्त लेगा, समय लेगा। और जल्दी में नुकसान हो सकता है। जल्दी में यह हो सकता है कि उसकी विकास की प्रक्रिया ही ठप्प हो जाए, और वह हमेशा के लिए बच्चा रह जाए। वह कभी भी प्रौढ़, मैच्योर न हो सके। वक्त लगेगा, बच्चे के साथ थोड़ी समझ लेनी पड़ेगी, बहुत धैर्य रखना पड़ेगा। आने वाली पीढ़ियों के साथ अगर धैर्य नहीं रखा गया, तो खतरा दुनिया के सामने है। बहुत धैर्य की जरूरत है। बड़ी शक्ति जब प्रकट होती है तो धैर्य की जरूरत पड़ती है। बड़ी शक्ति प्रकट हो रही है पृथ्वी पर। ऐसी कभी भी प्रकट नहीं हुई थी। मनुष्य चेतना ऐसी जगह आ गई है, जहां से छलांग लगेगी, जहां से बिल्कुल नये मनुष्य का जन्म होगा। तो ऐसी जगह पर बड़े संकट का, क्राइसिस का मौका तो होता है। मौका खड़ा है। अगर पुराने मन ने जिद्द की कि हम पुराने नियम जारी रखेंगे, तो भी छलांग लगेगी, लेकिन तब सब टूट कर छलांग लगेगी। सब नष्ट हो जाएगा। उसमें अच्छा भी जाएगा, बुरा तो जाएगा ही। लेकिन अगर पुराने मन ने थोड़ी समझ जाहिर की और नई जो संभावना प्रकट हो रही है, नया जो मनुष्य पैदा हो रहा है उसको समझने की कोशिश की, तो बहुत फर्क पड़ जाएगा। सोरबोर्न विश्वविद्यालय में पीछे फ्रांस में बहुत उपद्रव चला। अध्यापाकों ने बहुत समझाने की कोशिश की। अध्यापकों ने जो समझाया, उसके उत्तर में लड़कों ने सारी दीवालों पर विश्वविद्यालय के एक वाक्य लिख दिया बड़े-बड़े अक्षरों में, प्रोफेसर्स यू आर ओल्ड। कहा कि हम एक ही उत्तर देना चाहते हैं कि अध्यापाक गण, आप बूढ़े हो गए हैं और जो नया हो रहा है उसको आप नहीं समझ पा रहे हैं। आप हमें समझाने की कोशिश फिजूल कर रहे हैं।
उत्तर बहुत सांकेतिक है, अर्थपूर्ण है। सारी व्यवस्था पुरानी हो गई है, सब ओल्ड हो गया है, और सब जरा-जीर्ण हो गया है। और पांच हजार वर्ष के अनुभव से असफल हो गया है, सफल भी नहीं। तो मैं जो कहना चाहता हूं वह यह कि

अनुशासन एक तरह का होगा। होना चाहिए, वह भीतर से आए। और हम युवकों को, बच्चों को, आने वाली पीढ़ियों को भीतर से तैयार कर सकें कि वे अनुशासन अनुभव करें। बाहर से तैयारी अब नहीं हो सकती।
आपको मुझे सुनना है तो आप चुप बैठे हैं। यह भीतर से आया हुआ अनुशासन है। इसमें कोई ऊपर से थोपने का सवाल नहीं है। एक बोलने वाला चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है कि चुप रहो, शांत रहो मेरी बात सुनो कि मैं क्या कह रहा हूं और बातचीत चल रही है और कोई सुनने को राजी नहीं है, और बातचीत चली जा रही है। वह अनुशासन ऊपर से थोपा जा रहा है। नहीं, अगर आप बातचीत करते चले जा रहे हैं और मुझे नहीं सुनना है, तो आपके समझने की जरूरत नहीं है, मेरे समझने की जरूरत है कि बोलना बंद करूं और विदा हो जाऊं। इसमें आपको समझाने का क्या सवाल है? बात खत्म हो गई है। मुझे जानना चाहिए कि लोग सुनने को राजी नहीं है, मुझे विदा हो जाना चाहिए।
तो वह मुनि, वह समझाने वाला विदा होना नहीं चाहता। वह आपको कह रहा है, चुप रहो, डंडे के बल पर चुप रहो! नरक चले जाओगे अगर चुप नहीं रहोगे। तो वह आपको चुप करने की कोशिश कर रहा है। खुद चुप हो जाए, नहीं सुनना है लोगों को, विदा हो जाए। लोगों को सुनना होगा, वह चुप होंगे; नहीं सुनना होगा वह चुप नहीं होंगे। उन्हें सुनना होगा वह पकड़ कर ले आएंगे कि हम सुनने को राजी हैं। उन्हें नहीं सुनना होगा, बात खत्म हो गई। सुनाना जरूरी भी क्या है? सुनने के लिए ही कोई तैयार न हो, तो सुनाना जरूरी कहां है? मगर अब तक यही था--कि समझाया जा रहा है कि जब कोई बोलता है तो चुप रहो, चाहे वह कुछ भी बोल रहा है। वह अनर्गल बोल रहा है तो भी चुप रहो। वह अब नहीं चलेगा, अब नहीं चल सकता है। अब बोलने वाले को जानना पड़ेगा कि बोलने वाली बात होगी, तो ही सुनी जा सकती है। क्योंकि तब एक भीतरी अनुशासन पैदा होता है। जिसे सुनना है वह अपनी सांस तक रोक लेता है कि कहीं कुछ चूक न जाए। वह एक भीतरी अनुशासन है। अब बाहरी अनुशासन नहीं चल सकता है। जीवन की सारी व्यवस्था में नहीं चल सकता है।
बाप बेटे से कह रहा है कि मैं तुम्हारा पिता हूं, इसलिए आदर करो। यह कोई तर्क का नियम थोड़े ही है कि इसलिए। तुम पिता हो यह सिद्ध करो। आदर आना होगा, आ जाएगाः नहीं आना होगा, नहीं आएगा। और मैं मानता हूं कि अगर सिद्ध कर सके कोई कि मैं पिता हूं, तो आदर आता है। वह एक भीतरी अनुशासन है, उसको कोई नहीं रोक सकता है। यह असंभव है कि पिता के प्रति आदर न हो। यह असंभव है कि पिता के प्रति आदर न हो। लेकिन सिर्फ जन्म दाता पिता नहीं है। प्रोड्यूसर, उत्पादक है, पिता नहीं है। और उत्पादक कह रहा है कि मैं पिता हूं। अनुशासन नहीं आने वाला है। क्योंकि लड़के समझ रहे हैं, सिर्फ तुमने पैदा कर दिया, बस बात खत्म हो गई। और पैदा करने में तुम कोई बहुत समझपूर्वक पैदा कर दिए हो, ऐसा भी मालूम नहीं पड़ता। आकस्मिक घटना है। तुम कोई पैदा करना ही चाहते थे ऐसा भी नहीं मालूम पड़ता। तुमने सोचा भी था? तुमने मुझे निमंत्रण दिया था? ऐसा भी नहीं मालूम पड़ता। अतिथि हूं आकस्मिक हूं। तुमने झेल लिया है, दूसरी बात है। यह सब साफ हो गया है। अब पिता होने के लिए कुछ और करना पड़ेगा। पैदा करना काफी नहीं है।
और मैं मानता हूं, कभी काफी नहीं था। पिता होना सिद्ध करना पड़ेगा। पिता होना बड़ी डेलीकेट, बड़ी नाजुक बात है। मां होने से ज्यादा नाजुक बात है। क्योंकि मां होना बहुत कुछ प्राकृतिक है। पिता होना बिल्कुल ही अप्राकृतिक है। पिता होना बिल्कुल सामाजिक घटना है। पिता के बिना काम चल सकता है। पिता कोई अनिवार्य बात नहीं है। पिता मनुष्य की संस्कृति की खोज है। मां तो होगी ही, पिता के बिना हो सकती है। पिता का पता लगाना मुश्किल हो सकता है।
यह जान कर आप हैरान होंगे कि अंकल, चाचा पुराना शब्द है; फादर, पिता बाद का शब्द है। कोई तीन चार हजार वर्ष पहले पिता का कोई पता नहीं चलता था। स्त्रियां थीं और पुरुष थे और किनमें किनमें संबंध होता था कुछ पक्का नहीं था। पिता कौन है, यह तय करना मुश्किल था। सब अंकल थे। जो एक उम्र के थे, बड़े थे, वे सब अंकल थे। उनमें कोई पिता होगा। पिता तो बाद में आया है। जब थिर हो गई बात, और पति-पत्नी सुनिश्चित हो गए और एक घर बस गया और पति-

पत्नी तय हो गए। तो उनके ही बीच संबंध होता है और किसी के बीच संबंध नहीं होता है, तब पिता आया। पिता बहुत नई घटना है। और डर है कि विदा न हो जाए। इसका पूरा डर है। क्योंकि पिता की संस्था बहुत योग्य सिद्ध नहीं हुई है, इसलिए विदा हो सकती है। रूस में या नये समाजों में चिंता हो रही है इस बात की कि पिता को विदा किया जाए; क्योंकि संस्था कोई बहुत योग्य साबित नहीं हुई। खतरा इस बात का है कि पिता को बदला जा सके। कुछ नया इंतजाम हो सकता है। पिता सिद्ध करना पड़ेगा।
एक गुरु कह रहा है कि मुझे सम्मान दो, क्योंकि मैं गुरु हूं। यह बात ही कहना गलत है। जो गुरु यह कहे कि मुझे सम्मान दो, जानना चाहिए कि वह गुरु होने के योग्य न रहा। बात खतम हो गई। यह कहने की बात है? यह मांगना पड़ेगा? उसे गुरु होना सिद्ध करना चाहिए। वह सिद्ध कर दे, और विद्यार्थी पर नहीं छोड़ना चाहिए कि वह शिष्य होना सिद्ध करे। क्योंकि शिष्य अभी-अभी आया है, नया-नया है। उस पर नहीं छोड़ा जा सकता है यह मामला। वह अभी दुनिया शुरू कर रहा है। यह मामला, यह जिम्मेदारी, यह रिस्पांसिबिलिटी गुरु की है कि वह सिद्ध करे कि मैं गुरु हूं। तो मेरा मानना है कि गुरु अगर सिद्ध कर दे कि गुरु है, तो शिष्य के भीतर एक भीतरी डिसाइपलशिप, जिसको कहना नहीं पड़ता है, एक भीतरी शिष्यत्व पैदा होना शुरू होता है, जिसमें सम्मान है, जिसमें अपमान असंभव है। क्योंकि जिससे हमने कुछ भी पाया हो उसका अपमान बिल्कुल असंभव है।
लेकिन जिससे हमने कुछ भी न पाया हो, जो सिर्फ तनख्वाह पा रहा हो, और मशीन की तरह आकर कुछ बोल जाता हो, और जिससे हमारा कोई आंतरिक संबंध न हो, कोई भीतरी नाता न बनता हो, अब उपकुलपति कहते हैं। विश्वविद्यालय के प्रधान को हम कुलपति कहते हैं। कुलपति मतलब घर का बड़ा। और उसको लड़कों का नाम भी पता नहीं हैं कि कौन लड़का पढ़ता है, कौन नहीं पढ़ता है। फैक्ट्री है युनिवर्सिटी, अब कोई घर तो नहीं है, तो उसको मैनेजिंग डायरेक्टर या कुछ ऐसा नाम देना चाहिए वाइस चांसलर को। एक फैक्ट्री है युनिवर्सिटी जहां हम धंधा चला रहे हैं पढ़ाने का। एक फैक्ट्री है, वहां शिफ्टें चल रही हैं, सुबह, दोपहर, सांझ फैक्ट्री की शिफ्ट जैसे बदलती है, वैसे काम चल रहा है वहां, नौकरी-पेशा लोग पढ़ा रहे हैं।
उसको कुलपति कहे चले जा रहे हैं, कुलपति पुराना शब्द है, और बड़ा अर्थपूर्ण था। घर के बड़े का नाम था, जो पूरे कुल का पिता की तरह था। जो अपने बच्चों के साथ जी रहा था। उनकी चिंता कर रहा था--उनकी बीमारी की, उनके स्वास्थ्य की, उनकी समझ की, उनके ज्ञान की, सारी चिंता कर रहा था। जो उनके लिए फिकर में था--जो रात बीमार पड़ते थे उनकी खाट पर आकर रात भर बैठा भी रहता था, वह कुलपति था, तो समझ में आता था। उसके प्रति आदर रहा होगा। वह अनिवार्य था। उसको मांगा नहीं गया होगा। अब इस कुलपति को जिसे हम नाम से कुलपति कहे जा रहे हैं, जिसका कुलपति होने से कुल इतना संबंध है कि वह राजनीतिक तिकड़म में जीत गया है और चुनाव जीत लिया है।
सो कुलपति होना भी कोई चुनाव से हो सकता है? ऐसा तो कल पिता के लिए भी
हम कर सकते हैं। एक लड़के के लिए चार पिता खड़े हो जाएं कि हम चुनाव लड़ते हैं, जो जीत जाए, वह तुम्हारा बाप है। फिर तुम आदर देना उसको बाप का। कैसे संभव होगा यह? कुलपति चुनाव से नहीं आया था। एक कुल था, एक घर था, सीखने वालों का एक परिवार था। उस परिवार में जो सर्वाधिक वृद्ध था, सबसे ज्यादा सीखा था, सबसे ज्यादा सिखाया था, सबसे ज्यादा प्रेमपूर्ण था, पिता होने योग्य था, वह पिता बन गया था। यह बिल्कुल सहज घटना थी। तो उसके प्रति आदर था, अब उस कुलपति का आदर आज का कुलपति मांगता है तो सब बेहूदगी की बातें हो जाती हैं। कोई नहीं आदर देगा। पत्थर पड़ेंगे। चुनाव में पड़ने वाले पर पत्थर ही पड़ सकते हैं। और वह मांग करता है कुलपति की, कि चूंकि मैं कुलपति हूं, इसलिए मुझे आदर उतना मिलना चाहिए, जितना कुलपति को, गुरु को मिलता है। यह बेहूदी बातें हैं, एब्सर्ड हैं, इनकी कोई अर्थ, संगति नहीं है।
आने वाले भविष्य में हमें समझेना पड़ेगा कि कुलपति सिद्ध करो, गुरु सिद्ध करो। और गुरु सिद्ध करना साधारण बात नहीं है, बहुत असाधारण घटना है। इतना आंतरिक संबंध बनाना, इतना प्रीतिपूर्ण संबंध बनाना, इतना प्रेम देना

कि दूसरा अनुगत हो जाए, दूसरा झुक जाए, झुक जाना पड़े। उसे ख्याल भी कभी न आए कि वह झुका, क्योंकि जिसको ख्याल आ गया झुकने का, वह अकड़ जाएगा। क्योंकि कोई झुकना नहीं चाहता। क्यों कोई झुकना चाहे? और जिससे कहा गया कि झुको, उसके मन में शक्ति पैदा हो जाएगी। झुकने के प्रति दुश्मनी पैदा हो जाएगी। अगर झुकेगा तो भी मन में घृणा पोस लेगा। नहीं झुकेगा तो अहंकार और दंभ मजबूत हो जाएगा।
नहीं, यह कहने की बात नहीं है कि कोई झुके। जब कोई आदमी इस योग्य होता
है कि किसी को झुकने का ख्याल आ जाता है, अनजाने कोई झुक जाता है, तब एक और ही बात है, एक भीतरी अनुशासन की बात है। तो शिष्ट ऊपर से नहीं थोपनी है आने वाले जगत में भीतर से लानी है।

और प्रश्न बहुत से हैं। कुछ मित्रों का ख्याल है कि वह भी बहुत से प्रश्न हैं कि यह जो मैं कह रहा हूं, इसे कैसे अधिकतम लोगों तक पहुंचाया जा सके? क्या रास्ता हो? क्या मार्ग हो?

इसे थोड़ा समझ लेना उपयोगी होगा।
पुराने रास्ते भी बातों को पहुंचाने के रहे हैं। वे सब गलत साबित हुए हैं। और अक्सर यह होता है कि नई बात को भी अगर हम पहुंचाना चाहें तो पुराने ही रास्तों से पहुंचाना शुरू करते हैं। और पुराना रास्ता फिर नई बात को भी पुरानी कर देता है। पुराने रास्ते यह रहे हैं कि संगठन बनाओ, आर्गनाइज करो। जो एक मत को मानते हैं, वे इकट्ठे हो जाएं। वह चारों तरफ एक दीवाल खींच लें, दूसरों से अलग हो जाएं, भिन्न हो जाएं। यह पुराना विचार को फैलाने का रास्ता था। इससे विचार कुछ फैले, लेकिन इससे मनुष्यता खंडित हो गई। और मनुष्यता का खंडित हो जाना किसी भी विचार के फैलने से ज्यादा मंहगा मामला है। कोई फैले न फैले, यह उतनी बात नहीं है बड़ी महत्व की, लेकिन आदमी खंडों में टूट जाए, यह बहुत खतरनाक है। फिर जो लोग संगठित हो जाते हैं, आर्गनाइज्ड हो जाते हैं, संप्रदाय बना लेते हैं, समुदाय बना लेते हैं, संस्था बना लेते हैं, वह धीरे-धीरे विचार करना बंद कर देते हैं, वह धीरे- धीरे विचार करना बंद कर देते हैं। क्योंकि दस आदमियों को इकट्ठा होकर अगर सहमत होना हो, तो विचार करनी मुश्किल है।
विचार असहमति लाता है। जितना ही विचार करेंगे, उतना ही दूसरे से राजी होना एकदम आसान नहीं रह जाएगा। सिर्फ बुद्धुओं की भीड़ इकट्ठी की जा सकती है, बुद्धिमानों की भीड़ इकट्ठी करना मुश्किल बात है।
तो जब भी भीड़ इकट्ठी की जाती है, तो भीड़ बुद्धू हो जाती है; क्योंकि इकट्ठे होने में ही सब खत्म हो जाता है। व्यक्ति टूट जाता है फौरन। जैसे ही एक आदमी ने कहा, मैं हिंदू हूं, वह आदमी व्यक्ति की तरह खत्म हो गया। हिंदू होने का जो अर्थ है, वह उसने स्वीकार कर लिया। अब वह व्यक्ति नहीं रहा, हिंदू भीड़ का एक हिस्सा हो गया। जिसने कहा, मैं मुसलमान हूं, उसने कहा, मैं अपने को खोता हूं। तुम्हारी बड़ी भीड़ का जो संकेत है मुसलमान वह मैं स्वीकार करता हूं और जो मुसलमान होने का अर्थ है वह स्वीकार करता हूं। मुसलमान होने का अब मुझे संदेह नहीं है, अब मुझे विचार नहीं करना है। मैं पहुंच गया। जो ठीक था, वह मैंने पा लिया। अब बात खत्म होती है, मैं सम्मिलित होता हूं, मैं स्वीकार कर लेता हूं। जो आदमी मुसलमान बन गया, वह आदमी आदमी नहीं रह गया, सिर्फ एक संस्था का सदस्य हो गया। उसने अपने को खो दिया खत्म कर दिया।
तो मेरी बात कोई संस्था, कोई संगठन बना कर नहीं पहुंचानी है। मुश्किल मामला है फिर, पहुंचाना बहुत मुश्किल है। संस्था न हो, संगठन न हो तो बात कैसे पहुंचे? और संस्था और संगठन के मैं बिल्कुल दुश्मनी में हूं, एकदम दुश्मनी में हूं। बात पहुंचे कि न पहुंचे यह इतना मूल्य का नहीं। संस्था नहीं बननी है। संस्था बनी कि उसके स्वार्थ आए। स्वार्थ आए कि जो हम पहुंचाना चाहते थे वह गया, संस्था बनी की संस्था के पद आए, प्रतिष्ठा आई, संघर्ष आया, चुनाव आया, पॉलिटिक्स आई।

कोई संस्था बिना पॉलिटिक्स के नहीं हो सकती। व्यक्ति हो सकता है बिना राजनीति के। संगठन कभी बिना राजनीति के नहीं हो सकता। संगठन में राजनीति होगी ही। राजनीति वही नहीं है जो राज्य के लोग करते हैं। राजनीति वह है जो कोई भी समूह, पद-प्रतिष्ठा के लिए करता है। भीतरी राजनीति होती है। अगर पांच सौ साधु मिलेंगे, तो भीतरी राजनीति शुरू हो जाएगी कि कौन आचार्य बने। कौन उपाचार्य हो, फिर कब आचार्य मरे और कब कौन दूसरा उसकी जगह ले। वह राजनीति उतनी ही है सख्त, जितनी की राष्ट्रपति की होगी, प्रधानमंत्री की होगी। इसमें कोई फर्क नहीं है। एक छोटा ग्रुप है, जिसके भीतर खेल चलेगा। जहां संगठन हुआ, वहां राजनीति होगी। इसलिए मैं कहता हूं, संगठन मात्र पोलिटिकल होते हैं। कोई धार्मिक संगठन हो ही नहीं सकता। धार्मिक संगठन भी हुआ तो वह फौरन राजनीतिक हो जाएगा। नाम धर्म का रहेगा, भीतर राजनीति शुरू हो जाएगी। संगठन नहीं बनाना है कोई भी, इसलिए बड़ा दुष्कर काम है। बड़ा कठिन काम है, व्यक्ति की हैसियत से क्या हम कर सकते हैं? व्यक्ति की हैसियत से क्या हम कर सकते हैं।
जो बात ठीक लगती हो, और वह भी इसलिए नहीं कि मैं कहता हूं, अगर मैं कहता हूं, और आपको ठीक लग जाती है, आप नहीं सोचते तो आप खतरनाक आदमी हैं। आप नुकसान पहुंचाएंगे। क्योंकि तब आप तोते की तरह दोहराएंगे, जो कि सदा से हो रहा है। महावीर ने क्या कहा है, उनके मुनि उसको दोहराए चले जा रहे हैं। उनमें से एक ने भी उसे जानने की फिकर नहीं कि है कि वह क्या है। क्योंकि वे महावीर की आलोचना करने में ही डर गए हैं, असमर्थ हो गए हैं। वह डर गए हैं कि महावीर की आलोचना तो हो नहीं सकती, महावीर तो सर्वज्ञ है जो कह दिया, वह ठीक है। वह इसलिए ठीक नहीं है कि ठीक है, वह इसलिए ठीक है कि महावीर ने कहा है। तो बुद्ध ने कहा, मोहम्मद ने कहा है, कृष्ण ने कहा है। वह ठीक होकर बैठ गया है, अब उसको प्रचार करना है। ऐसा आदमी विचारशील नहीं होता। और ऐसा आदमी विचार को कम पहुंचाता है, अविचार ज्यादा पैदा करवाता है। वह जिसको भी सिखा-पढ़ा कर राजी कर लेगा, उसने एक आदमी को और अविचार में ढाल दिया! एक आदमी की और बुद्धि नष्ट की।
मैं जो कह रहा हूं, कोई वैसा ही उसे सब तक पहुंचा देना है, यह सवाल नहीं है। कोई जरूरत भी क्या है? एक आदमी को जो ठीक लग रहा है कह रहा है। वह सभी को ठीक लगे, यह अनिवार्य कहां है? इसकी मांग क्यों होनी चाहिए कि वह सभी को ठीक लगे? जान कर आप हैरान होंगे कि जिस आदमी को यह फिकर होती है कि जो मुझे ठीक लग रहा है, वह सबको ठीक लगना चाहिए, उस आदमी को भीतरी रूप से शक होता है कि जो मुझे ठीक लग रहा है, वह ठीक है या नहीं। वह दूसरों को समझा कर खुद कनविंस हो जाना चाहता है कि--नहीं जरूर ठीक है। जब इतने लोगों को ठीक लगने लगा है, तो गलत नहीं हो सकता है। इसलिए आदमी अनुयायी खोजता है।
जिस आदमी को अपने सत्य पर कोई श्रद्धा नहीं है, वह अनुयायी खोजता है। जितने अनुयायी बढ़ते जाते हैं, उतनी उसकी भी आस्था पक्की होती चली जाती है कि जब इतने लोगों को ठीक लग रहा है, तो बात ठीक ही होनी चाहिए। उसका करेज, उसका साहस बढ़ता चला जाता है।
मैं तो अकेले आदमी की तरह ही कहना चाहता हूं। जो मुझे ठीक लग रहा है,
वह मुझे ठीक ही लग रहा है। उसमें आप मेरे पास आते हैं कि नहीं आते हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। अकेले जंगल में बैठूंगा, तो वह उतना ही ठीक है, मेरे पास करोड़ आदमी इकट्ठे हो जाए, तो उतना ही ठीक है। उसमें रत्ती भर फर्क भीड़ से नहीं पड़ने का। इसलिए भीड़ की कोई साइकोलाजिकल डिमांड नहीं है, कोई मनोवैज्ञानिक कमी नहीं है भीतर मेरे मन में, कि उसको भीड़ से पूरा कर लेना है। इसलिए भीड़ इकट्ठी करने की कोई बात नहीं है। और आप भी भीड़ इकट्ठी करने के प्रयोजन को भी मत लेना अपने मन में। बात जो ठीक लगती है, उसे दूसरे से निवेदन कर देना। और निवेदन भी इसलिए नहीं कर देना है कि वह कनविंस हो जाए, वह राजी हो जाए। निवेदन इसलिए कर देना है कि यह हमारे मानवीय होने का हिस्सा है कि जो मुझे ठीक लगे, वह मेरे साथ मर न जाए, उसे मैं बांट दूं। हो सकता है, वह किसी के काम आ जाए। हो सकता है किसी के काम न आए। उसे मैं शेयर कर लूं, बस। उसे दूसरे को भी साझीदार बना लूं। मुझे ठीक लगी है एक बात, उससे मुझे आनंद मिला है। आप भी मेरे पड़ोस से गुजर रहे हैं, मैं आपसे कह दूं कि एक

बात से मुझे आनंद मिला है। हो सकता है, आपको मिल जाए। सोचना, बात खत्म हो गई। इससे ज्यादा कुछ लेना-देना नहीं है।
क्योंकि जैसे ही हमने बात की और शर्त रखी कि हमारी बात अगर ठीक लगे, तो हमारे संगठन में आओ। हमारी बात ठीक लगे, तो यह करो और यह मत करो। कि हमें बात से कम संबंध रह गया है, बात के पीछे कुछ और चीजों, और स्वार्थों से ज्यादा संबंध हो गया है उनको बिल्कुल नहीं लेना है। आज एक ईसाई दूसरे को ईसाई बना रहा है। यह मतलब नहीं है कि उसे ईसा से कोई आनंद मिल गया है, जो वह दूसरे को बांटने के लिए उत्सुक है। प्रयोजन बिल्कुल दूसरे हैं। न उसे कोई आनंद दिखाई पड़ रहा है, और यह दूसरे को ईसाई बनाए चला जा रहा है। प्रयोजन बहुत दूसरे हैं अब भीड़ बढ़ाने के, शक्ति बढ़ाने के, संगठन बढ़ाने के, राजनीति के, दुनिया की पॉलिटिक्स के पीछे हिस्से हैं। नहीं, किसी को अगर ईसा से आनंद मिला हो, तो उसे हक है कि दूसरे को कह दे कि आनंद मिला। लेकिन ईसाई क्यों बनाने की फिकर में पड़े? ईसाई बनाने से क्या संबंध है? ईसा से कोई आनंद बिना ईसाई बने लिया जा सकता है। ईसाई बनाने का क्या संबंध है?
इसलिए न तो कोई संप्रदाय खड़ा करना है, न कोई मत, न लोगों की भीड़। मेरी बात से अगर आपको लगता हो कि कोई आनंद आपको दिखाई पड़ता है, मुझे दिखाई पड़ता हो, तो भी आपको खबर नहीं। आपको भी मेरी बात में कोई आनंद अनुभव होने लगे तो यह मानवीय जिम्मेदारी है, यह मनुष्य होने का हिस्सा है कि मैंने कोई आनंद पा लिया हो तो वह मेरे साथ न मर जाए उसकी खबर मैं फैला दूं, वह किसी को शायद काम पड़ जाए। बेकार होगी तो काम नहीं पड़ेगी, बात खत्म हो जाएगी, हवा में खो जाएगी। काम पड़ेगी तो चल पड़ेगी लेकिन अनाम--न उसका नाम होगा बात का, न कोई संगठन होगा, न पीछे कोई बंधने का सवाल होगा, न हमारी कोई मांग होगी, न कोई सवाल होगा, न कोई संबंध होगा। कोई अनुयायी इकट्ठे नहीं करने हैं।
कैसे फिर इस बात को पहुंचाना है? तो अपने-अपने तईं सोचना चाहिए मैं क्या कर सकता हूं? अगर मुझे कोई बात आनंदपूर्ण लगी तो मैं क्या कर सकता हूं?
पहला तो काम यह है कि उसे मैं जीना शुरू करूं; क्योंकि जीने की सुगंध
ही उसे पहुंचाएगी। मेरे कहने से वह नहीं पहुंच जाएगी। मेरे जीने की सुगंध उसे पहुंचाएगी।
अगर आप उसे जीएं हैं तो आपकी पत्नी पूछेगी कि क्या हो गया है तुम आदमी दूसरे हो गए हो, तुम्हारा क्रोध कुछ और हो गया, तुम्हारा प्रेम कुछ हो गया। तुम पति कुछ और हो गए, तुम पिता कुछ और हो गए। क्या हो क्या गया है? जब एक व्यक्ति में थोड़े से भी फर्क आते हैं, तो उसके चारों तरफ पूछ शुरू हो जाती है कि हो क्या गया है। और अगर वह फर्क आनंदपूर्ण है, तो दूसरों में भी प्यास जगती है कि क्या हो गया है।
तो निवेदन कर देना है, किसी पर थोप नहीं देना है। निवेदन कर देना है--
यह कर रहा हूं, यह सोच रहा हूं। इससे कुछ हो रहा है। तुम भी सोचो, शायद कुछ हो सके। ठीक लगता हो, शायद पहुंचा देना है। ठीक लगता हो, हो सकता है कई बार आप न समझा सकते हों और ठीक लगती हों। क्योंकि समझाना एक अलग बात है, ठीक लगना बिल्कुल अलग बात है। जरूरी नहीं है कि जिसको ठीक लग जाए, वह समझा भी सके और यह भी जरूरी नहीं है कि जो समझा सकता हो, उसको कुछ ठीक लग गया हो। यह भी कोई जरूरी नहीं है। ये दोनों अलग बातें हैं। कभी एक आदमी में हो सकती हैं, अक्सर नहीं होती हैं।
बुद्ध से किसी ने पूछा था कि आपके साथ दस हजार भिक्षु हैं, इनमें से कितने लोगों को वह ज्ञान उपलब्ध हो गया है, जो आपको हुआ है? बुद्ध ने कहाः बहुतों को। पर उन्होंने कहाः वे पहचान में नहीं आते। तो बुद्ध ने कहाः फर्क इतना है कि मैं बोलता हूं, इसलिए तुम पहचान लेते हो, वे चुप हैं, इसलिए तुम नहीं पहचानते। मैं भी चुप होता, तुम मुझे भी नहीं पहचानते।
बहुतों को हुआ है। पृथ्वी पर बहुत लोगों ने सत्य जाना है। जितने नाम
हम गिनाते हैं, उतने ही नहीं, वह तो बहुत कम संख्या है। वह तो सिर्फ उन लोगों की संख्या है, जिन्होंने सत्य जाना है और साथ में टीचर होने की जिनकी संभावना थी, साथ में जो शिक्षक भी हो सकते थे, जो कह भी सकते थे, संवादित कर सकते थे, समझा सकते थे।

लेकिन जितने हम नाम जानते हैं, उतने में सबको हुआ भी नहीं है। कुछ तो उसमें ऐसे ही हैं जो सिर्फ समझा सकते थे। जिनको हुआ कुछ भी नहीं है। तो हमारे बड़े नामों में सब सच भी नहीं है। और हमारे बहुत छोटे नामों में जो खो गए हैं, बहुत सच हैं। जिनका कोई पता नहीं चलता। दुनिया में सत्य जानने वाले सभी लोगों का पता नहीं चलता है, क्योंकि हमें पता तो बोलने से चलता है, और कोई उपाय नहीं है।
तो जरूरी नहीं है कि आपको हो जाए ख्याल तो आप समझा भी सकें। बहुत बार ऐसा होता है कि गूंगे का गुड़ हो जाता है। लगता है कि कुछ समझ में पड़ रहा है, लेकिन कैसे कहो? और जब कहने जाते हो और दूसरा तर्क उठता है, तो बड़ी मुश्किल हो जाती है कि कैसे समझाओ उसको? पीड़ा होती है, लेकिन समझाना बहुत मुश्किल हो जाता है। तो मेरे टेप हैं, वह आप सुना दे सकते हैं; किताबें हैं, वह पहुंचा दे सकते हैं। लेकिन इतना ही ध्यान रख कर कि वह सुना देना है, आग्रह कोई भी नहीं है। सुना कर चुपचाप वापस लौट आना है। यह भी नहीं पूछना है कि कैसा लगा। यह पूछने में भी आग्रह शुरू हो जाता है। जानने का मन होता है हमारा कि किसी को हम कहें, तो पीछे पूछें कि कैसा लगा? इतना भी आग्रह गलत है। बात खत्म हो गई है। उसे कुछ लगा होगा, वह कहेगा उसके भीतर से आने दो। नहीं लगा होना, बात समाप्त हो गई है। यह पूछना क्यों है? हो सकता है इस पूछने में उसे कहना पड़े कि अच्छा लगा।
हम इतने शिष्टाचार से भर गए हैं कि असत्य भी शिष्टाचार बन गया है। और अधिक शिष्टाचार असत्य ही है। सुबह एक आदमी पूछता है, कहिए, कैसे हैं? हम कहते हैं, बहुत अच्छे हैं। उसको तो धोखा होता ही है, सुन कर हमको भी धोखा होता है। शिष्टाचार भर का हिस्सा है। वह भी जानता है कि कौन अच्छा है। वह भी जानता है। अगर शिष्ट हो तो पूछना ही नहीं चाहिए कि कैसे हो। क्योंकि दूसरे आदमी को क्यों दिक्कत में डालना है, अगर वह ठीक न हो तो कहने में मुश्किल पड़ती है।
जापान में छोटे-छोटे बच्चों को वह सिखाते हैं, किसी की तनख्वाह कभी मत पूछना, अशिष्ट है। क्योंकि हो सकता है, तनख्वाह बहुत कम हो। और तुमने पूछ लिया कि कितनी तनख्वाह है, तो तुम उसे दिक्कत में डाल दो। चार आदमियों के सामने कहने में उसे संकोच हो कि पचास रुपये महीना, दीनता लगे। और या उसे झूठ बोलना पड़े कि पांच सौ रुपये महीना है। तो अकारण उसको संकोच में क्यों डालना? ऐसा प्रश्न क्यों खड़ा करना?
हमारा मुल्क तो बहुत अदभुत है। हम तो न केवल यह पूछते हैं कि तनख्वाह कितनी है, यह भी पूछते हैं कि ऊपर से भी कुछ मिल जाता है कि नहीं? पूछते ही नहीं हैं, वह आदमी भी कहता है, हां, अजीब सा है सब। बुरा है, अशुभ है, अयोग्य है, लेकिन ख्याल में नहीं है, बोध में नहीं है।
किसी को टेप सुना दिया, किसी को किताब दे दी। यह भी नहीं पूछना है कि कैसा लगा। बात खत्म हो गई, आपका काम पूरा हो गया। उसे कुछ लगा होगा, कहेगा। नहीं कहेगा, नहीं कहेगा। कई बार लग भी सकता है और न कहे। कई बार तो ऐसा होता है कि जब बात कोई बहुत गहरी लग जाती है, तो कहने तक का मन नहीं होता है। कोई पूछता है, तो भी बुरा लगता है। कहने का भी मन नहीं होता।
तो खबर भर पहुंचा देनी है। टेप सुना देना है, किताब पहुंचा देनी है। खबर भर पहुंचा देनी है, कोई बांधना नहीं है किसी को। और एक-एक व्यक्ति को व्यक्ति की हैसियत से खबर पहुंचा देनी है। किसी संगठन के सदस्य की हैसियत से नहीं। निश्चित ही दस मित्रों को ठीक लगेगा और दस मित्र बैठ कर बात करेंगे, तो वह दस मित्र ही हैं, एक संगठन नहीं, यह ध्यान में रखना है, दस मित्र, एक संगठन नहीं। पचास मित्र, एक संगठन नही। और मित्र की एक मुक्ति है, मित्र की एक स्वतंत्रता है। उसे मेरी सब बातें ठीक नहीं भी लग सकती हैं। एक बात ठीक लग सकती है, उतनी मैत्री भी चल सकती है।
हमारा यह भी आग्रह होता है बड़े मन में कि राजी होंगे तो पूरे के लिए और
न राजी होंगे तो पूरे के लिए! यह भी बड़ी नासमझी है। यह बिल्कुल गलत है। एक आदमी मेरी एक बात से नाराज हो जाता है, तो मेरी सारी बातों से नाराज हो जाता है। और या एक आदमी मेरी एक बात से राजी हो जाता है, तो सबसे राजी हो जाता है। बुद्धिहीनता है यह। मेरी जिस बात से राजी नहीं है, उसमें दोस्ती

नहीं सही। चलेगा, इसमें हर्ज क्या है? छोड़ें उस बात को, उससे हमारा मेल नहीं पड़ता। जिस बात से राजी है, उसमें दोस्ती चल सकती है। एक छोटी सी बात में दोस्ती चल सकती है। और आग्रह ही नहीं करना चाहिए कि सबमें मेल होगा तभी दोस्ती चलेगी, यह आग्रह बहुत डिक्टेटोरियल है। यह आग्रह बहुत तानाशाही से भरा हुआ है। टोटेलिटेरियन है यह आग्रह, कि पूरा होगा तो।
तो गुरु भी कहता है कि पूरा राजी हो जाओ मुझसे। और शिष्य भी कहता है कि पूरे राजी होंगे तभी। मगर पूरे का सवाल क्या है? जिंदगी सब अधूरी है, यहां पूरा कुछ भी नहीं होता है। पूरा सब मोक्ष में होता है। यहां पूरा होती ही नहीं। पृथ्वी पर सब अपूर्ण है। यहां दोस्ती अधूरी है, प्रेम अधूरा है। यहां प्रेम भी पूरा नहीं, दोस्ती भी पूरी नहीं। यहां कोई चीज पूरी हो नहीं सकती पृथ्वी पर। पृथ्वी के होने में अपूर्णता है। यानी पृथ्वी पर अस्तित्व ही अपूर्ण का हो सकता है। पूर्ण जैसे ही कुछ हुआ, पृथ्वी के बाहर गया। इसीलिए हम पूर्ण को मोक्ष भेज देते हैं। फिर उसको वापस नहीं बुलाते, बुलाने का सवाल ही नहीं, बात खत्म हो गई, बुद्ध गए, महावीर गए, राम गए, वह गए। वह एकदम खो जाते हैं। जैसे ही कोई पूर्ण हुआ, वह छुटकारा पा जाता है, इस जगत से।
इस जगत में होना, अपूर्ण होना है। इसलिए किसी चीज में पूर्ण की जिसने मांग की, वह नासमझी में पड़ जाता है। पति ने अगर पत्नी से कहा कि पूरा प्रेम मेरी तरफ, तो मुश्किल शुरू हो जाएगी। खतरा हो गया, क्योंकि बात ही गलत है, असंभव है। और असंभव की चेष्टा में जो थोड़ा बहुत प्रेम हो सकता था, वह मर जाएगा। वह भी नहीं हो सकेगा। किसी मित्र से कहा कि पूरी मित्रता, दुश्मनी की शुरुआत हो गई। यह दुश्मनी का ही गेस्चर है, यह मांग है कि पूरी मित्रता चाहिए। यह पूरे का सवाल नहीं है, तो मुझसे पूरे होने, पूरे राजी होने की बात ही नहीं है जरा भी। जिस कण भर में भी आप राजी हों, और ठीक लगे, और आनंद मालूम पड़े, उसको पहुंचा देना दूसरे तक। वह आप तक खत्म न हो जाए, उसकी सुगंध, सुवास दूसरे तक पहुंच जानी चाहिए।
यह जीवन जागृति केंद्र है। यह सब मित्रों का मिलन भर है, कोई संस्था नहीं है। जिस मित्र की मौज हो, कभी भी खिसक जाए। इससे मुझसे लोग पूछते हैं कि फलां आदमी नहीं दिखाई पड़ता? यह कोई संस्था थोड़े ही है कि यहां आदमी दिखाई पड़ने ही चाहिए। वह उसकी मौज थी, तब तक दिखाई पड़ता था। अब मौज नहीं है, नहीं दिखाई पड़ता। इसमें क्या लेना-देना है? इसको पूछने कहां जाना है कि अब आप क्यों दिखाई नहीं पड़ते हैं? यह बात ही गलत है। जिसकी मौज थी, वह आता था, जिसकी मौज नहीं है, वह नहीं आता है।
तो ठीक है, कोई आएगा, कोई जाएगा। यह मित्रों का मिलन है, इससे ज्यादा नहीं है। दरवाजे सब खुले हैं, कहीं से कोई दीवाल नहीं है। कहीं से भी प्रवेश करे, कहीं से भी कोई विदा हो जाए। उससे जाते वक्त भी मत पूछना। हो सकता है संकोच में रुकना पड़े। पूछना ही मत। चला जाए, तो चले जाने देना। आ जाए, तो आ जाने देना। आ जाए, तब भी मत पूछना कि दो वर्ष कहां थे? यह सारी मांग गलत है। और सारी मांग संगठन की है। संगठन की मांग ही नहीं होनी चाहिए। मित्रों का मिलन है। दस मित्र आज हैं, कल बारह हैं, पंद्रह हैं, कल दो हैं। यह सब जिंदगी ऐसे ही बदलती है, ऐसे ही चलती है। गंगा कहीं बिल्कुल पतली है, कहीं बहुत भारी हो जाती है। कहीं सूख जाती है। कहीं रेत ही रेत दिखाई पड़ती है, कहीं सागर हो जाती है। जिंदगी ऐसे ही चलती है। इसमें कुछ आग्रह जरा भी रखने की जरूरत नहीं है।
एक आदमी आए तो दुख नहीं, सुख नहीं, एक आदमी जाए तो दुख नहीं, सुख नहीं। जितनी देर सहज था कि साथ चल सकें, साथ चल लिए। फिर रास्ते अलग हो गए हैं, वह अपने रास्ते चला गया है। हो सकता है, कल फिर रास्ते कट जाएं और फिर मिलन हो जाए, तो इसमें दुश्मनी क्या लेनी है कि बीच में कहां थे।
इसको ध्यान रखें और एक-एक व्यक्ति सोचे। मैं कुछ कहूं कि ऐसा-ऐसा करें, यह सवाल भी नहीं है। सोचें कि क्या कर सकता है। एक-एक आदमी इतनी बड़ी शक्ति है कि इतना कर सकता है, जिसका हिसाब नहीं।
लोग मुझसे कहते हैं कि आपके पास कोई संगठन नहीं, क्या होगा? मैंने कहाः यह सवाल ही नहीं है, संगठनों से ही क्या हो सका है? अकेला चिल्लाता

रहूंगा। कुछ और चिल्लाने वाले मिल जाएंगे। वह भी चिल्लाते रहेंगे। लाख दो लाख अकेले-अकेले भी चिल्लाएं, तो भारी आवाज पैदा हो जाएगी। कोई इकट्ठे ही चिल्लाने की जरूरत थोड़े है। और कोरस की जरूरत नहीं है। कोरस, इकट्ठे गाने की जरूरत नहीं है कि सब इकट्ठा ताल-पीठ ठोंके, और सब इकट्ठे गाएं। अकेला भी चलेगा। एक-एक गीत भी चल जाता है। और दुनिया में जो हिम्मतवर लोग थे, जिन्होंने जाना है, उन्होंने अकेले ही गीत गाया है। अकेले ही गा लेना काफी है। फिर प्रीतिकर लगे, आप भी अकेले गा लेंगे। सुगंध पहुंच जानी चाहिए, खबर पहुंच जानी चाहिए। कोई सत्य किसी भी व्यक्ति को दिखाई पड़ गया हो, और कोई आनंद किसी को भी मिल गया हो, तो वह संपत्ति उसके साथ नष्ट नहीं हो जानी चाहिए, इतना ही ध्यान रहे। बस इतना ही काफी है।
और बहुत से प्रश्न हैं, वह सब तो अभी नहीं हो पाएंगे। अभी दुबारा आ रहा हूं जल्दी, तो तीन-चार दिन ज्यादा से ज्यादा प्रश्नों पर ही बात करनी है।
बहुत काम के प्रश्न रह गए हैं। दुबारा जब मिलते हैं, तब उनकी बात होगी।

सम्बोधि के क्षण
दूसरा प्रवचन

मेरा दायित्व

आप जो कुछ कह रहे हैं, उसमें आप कहां तक पहुंचे हैं? और इतना कोई फल दिखाई दे रहा है?

इन सब बातों में इतने जल्दी फल दिखाई नहीं देते। और भारत जैसे मुल्क में जहां परंपराएं बहुत पुरानी और बहुत जड़ हो गई हैं, फल देखने की जल्दी भी नहीं करनी चाहिए। वैसे भी फल के प्रति मैं बहुत उत्सुक नहीं हूं। जो ठीक हमें दिखाई पड़ता है उसके लिए श्रम करना चाहिए। अगर वह ठीक है तो फल आएगा-- आज, कल हमारे न होने पर। यह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है। ठीक क्या है, उसकी दिशा में श्रम करना उचित है। लेकिन ऐसे कह सकते हैं कि फल दिखाई पड़ने भी शुरू हुए। क्योंकि उत्सुकता बढ़ी है और हजारों लोग उत्सुक हुए हैं। उस दिशा में चिंतन भी शुरू हुआ है, विचार भी शुरू हुआ है।
और मेरी दृष्टि में विचार ही महत्वपूर्ण है। कर्म को मैं विचार की छाया मानता हूं। अगर एक बार विचार में बदलाहट आई, तो कर्म में बदलाहट हो जानी सुनिश्चित है। वह आएगी ही। और मेरा लक्ष्य भी विचार की क्रांति से ज्यादा नहीं है; क्योंकि मेरी ऐसी समझ है कि भारत ने हजारों वर्ष से सोचना ही बंद कर दिया है। एक बार सोचने की धारा शुरू हो जाए, तो बड़ी से बड़ी क्रांति है वह। और सोचने की धारा शुरू करनी हो तो निगेटिव माइंड, वह निषेध करने वाला चित्त पैदा करना जरूरी है। उतना ही काम मैं कर रहा हूं। इनकार कर सके, नो कह सके, ऐसी वृत्ति पैदा हो जाए। क्योंकि हम हजारों साल से हां कहने वाली कौम हैं, जो हर बात में हां कहते हैं। स्वीकार हमारा भाव हो गया है।

सम पिपुल ऑर जस्ट ब्लाइंडली सेइंग यस आर नो।

अगर वे ऐसा कह रहे हैं, तो मैं उनसे भी लड़ रहा हूं पूरी तरह से। मेरी तरफ से तो नहीं कहने दूंगा उनको, अगर कहते हैं तो वे पुराने हैं।

दे ऑर जस्ट ब्लाइंडली फॉलोइंग यू।

हां, अगर कोई ऐसा कर रहा है, तो वह मुझे फॉलो ही नहीं कर रहा है। क्योंकि मैं कह रहा हूं कि नो कहने की हिम्मत ही और स्वयं सोचने की वृत्ति। और किसी को भी आंख बंद करके पीछे नहीं जाना है, किसी को भी। उसमें मैं भी सम्मिलित हूं। और अगर कोई आंख बंद करके मेरे पीछे जा रहा है, तो उससे ज्यादा मेरा दुश्मन दूसरा नहीं होगा। मैं उससे भी लड़ रहा हूं। वह जाएगा। क्योंकि हमारी जो पुरानी आदत है हां कहने की, तो हम उसमें भी हां कह सकते हैं। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। अगर अंधा होना हमारी प्रवृत्ति बन गई है, तो हम उसमें भी अंधे हो सकते हैं।

मोस्ट ऑफ दि पिपुल दे से जस्ट बीका.ज आउट ऑफ दिस हैबिट आर दे आर एनलाइटंड।

न, न, मुझे हां कहना बहुत मुश्किल है, आउट ऑफ हैबिट। क्योंकि मैं जो कह रहा हूं, मैं जो कह रहा हूं, वह एक समस्त पुराने चिंतन के विपरीत है। इसलिए मुझे हां कहना बहुत मुश्किल है, आउट ऑफ हैबिट। बहुत मुश्किल है। यानी मुझे तो सोचना ही पड़ेगा। सोचना इसलिए पड़ेगा कि पुराना जो पूरा मन है हमारा, जो मन की तैयारी है। मैं उसके बिल्कुल विपरीत हूं। अगर मैं उससे ही जुड़ा हुआ हूं, उसकी ही कंटिन्युटी हूं, तब तो हां कहना बहुत आसान है।

यह पुराने वाले तो यह ब्लेम करते हैं कि आप जो बोल रहे हैं वह तो वाममार्ग में था ही। जब आप कहते हैं कि आप उससे अलग बात बताते हैं, तो जो यहां के आचार्य नास्तिक हमने बोले तो वह भी बताते हैं कि ये अपने पुराने जमाने में जो वामपंथ था और उसका यह आचार्य जी तो...

होता क्या है, जब भी कोई परंपरा मरने के किनारे पहुंचती है, तो आखिरी उपाय बचने का, वह यह करती है कि जो नया है, वह हम में है ही। यह आखिरी उपाय है, किसी भी मरती हुई संस्कृति का, कि वह अंत में दावा यह करती है कि जो भी कहा जा रहा है उसके खिलाफ वह भी हमारे भीतर है। तो यह अंतिम उपाय है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, बिल्कुल ही, बिल्कुल ही उस जगह खड़ा होगा, जहां से उसको मिटना पड़ेगा। हिंदूइज्म का ही सवाल नहीं है। हिंदूइज्म का सवाल ही नहीं है, ओल्ड माइंड--वह चाहे जैन का हो, चाहे बौद्ध का हो, चाहे मुसलमान का हो, यह सवाल नहीं है।

हिंदूइज्म ने भी तो एक्सेप्ट किया है, जैसे बुद्ध...

नहीं, कभी नहीं। बुद्ध को एक्सेप्ट किया उसने उसी क्षण में जहां उसका बचना मुश्किल हो गया। और एक्सेप्ट करके हिंदूइज्म ने बुद्ध की पूरी की पूरी व्याख्या और व्यवस्था बदल दी। बुद्धिज्म तो मर गया हिंदुस्तान में। और बुद्ध ने जो कहा था उसकी सारी व्याख्या हिंदू-धर्म ने अपने अनुकूल कर ली। हिंदू-धर्म ने कभी कुछ स्वीकार नहीं किया है। सिर्फ व्याख्याएं बदलने में हिंदू-धर्म कुशल है। स्वीकार कभी नहीं किया है। व्याख्या बदल कर स्वीकार करना बड़ी कुशलता की बात है।

दे एक्सेप्ट इन सच ए वे दैट एवरीथिंग अप इन दि डेफिनेशन।

नहीं, असल में, सिर्फ हिंदूइज्म मरना नहीं चाहता किसी भी कीमत पर, जिंदा रहना चाहता है किसी भी कीमत पर।

वॉट्स रांग विथ दैट?

बहुत रांग है। क्योंकि असल में जो भी चीज पैदा होती है, उसे एक समय तो मरने की तैयारी दिखानी चाहिए, अन्यथा वह बोझिल हो जाती है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, कोई आइडिया गुड और बैड नहीं होता। कोई चीज हमेशा जिंदा नहीं रहती।
हर चीज जो पैदा हुई है, उसका एक वक्त है जिंदा रहने का और मरने का। जब वह मरने से इनकार करती है तब वह बोझिल हो जाती है। तब वह बोझिल हो जाती है।
अल्टीमेट ट्रूथ होगा, लेकिन अल्टीमेट ट्रूथ तुम्हें पता नहीं चल सकता।
तुम्हारे सारे ट्रूथ रिलेटिव होंगे और कोई रिलेटिव ट्रूथ कभी भी आखिरी तक जिंदा नहीं रहता। अल्टीमेट ट्रूथ क्या है, यह भी हमें पता नहीं है, किसी को कभी पता नहीं।

हिंदूइज्म हैज इट्स ओन फिलासफी अबाउट इट।

नहीं, नहीं, वह सबकी फिलासफी है। और सभी अल्टीमेट ट्रूथ का दावा करने वाले लोग हैं दुनिया में। अलग-अलग से तो हैं, दावे सबके हैं कि उनका जो ट्रूथ है वह अल्टीमेट है। किसी का ट्रूथ अल्टीमेट नहीं है, सबके ट्रूथ रिलेटिव हैं। जो भी आज मैं कह रहा हूं वह भी उतना ही रिलेटिव है। कल उसको

मरने की तैयारी दिखानी चाहिए। अगर वह जिद कर ले इस बात की, अगर मैं जिद कर लूं कि मैं जो कह रहा हूं वह अल्टीमेट है, तो मैं मनुष्य के विकास में बाधा बनूंगा। अल्टीमेट का दावा हमेशा विकास में बाधा बनता है। इसलिए विज्ञान कोई अल्टीमेट का दावा नहीं करता है, इसलिए विज्ञान निरंतर विकासमान है। और जो भी अल्टीमेट का दावा करते हैं, वह मनुष्य के ज्ञान में सबसे बड़ी बाधाएं खड़ी कर देते हैं।

हिंदूइज्म...

न-न, यह तो सभी कहते हैं, सभी, सारे लोग अलग-अलग कहेंगे, सब लोग अलग-अलग कहेंगे, लेकिन सबके पास अपनी अल्टीमेट कंसेप्शंस हैं। मैं जो कह रहा हूं वह यह हिंदूइज्म के विरोध का सवाल नहीं है। मेरा तो इज्म से ही विरोध का सवाल है। हिंदूइज्म का सवाल नहीं है।

हिंदूइज्म कोई इज्म नहीं है? हिंदूइज्म तो वे ऑफ लाइफ है।

वह सभी यह कहते हैं। यह जो बातें हैं न, यह तो सभी कहते हैं। क्रिश्चियन भी यह कहता है कि क्रिश्चियन जो है वह वे ऑफ लाइफ है। सूफी भी कहता है कि इस्लाम जो है वह वे ऑफ लाइफ है। जैन भी यही कहता है कि वे ऑफ लाइफ है, बुद्धिस्ट भी यही कहता है। यह सब तो बहुत कनिंगनेस के हिस्से हैं। यह तो जब इज्म मरने लगता है कोई तो वह अपनी व्याख्या बदलना शुरू करता है। वह कहता है कि यह वे ऑफ लाइफ है। यह फिलासफी ऑफ लाइफ है, इसका कोई इज्म से संबंध नहीं। इज्म का मतलब ही यह है कि जब भी कोई यह दावा करता है कि जो जाना गया है वह अल्टीमेट है; जो जाना गया है, यही सत्य है। जो जाना गया है, इसके विपरीत असत्य है, तब इज्म खड़ा हो ही जाता है। इज्म डाग्मेटिक मेनिफेस्टेसन का नाम है। तो सारी दुनिया के धर्म, सारी दुनिया के मत, इज्म हैं। और मेरा जो कहना है, वह हिंदूइज्म के खिलाफ नहीं है, इज्म के खिलाफ है। मेरा जो कहना है वह यह है कि मनुष्य का मन उस जगह पहुंच गया है जहां अब कोई इज्म उसे बांधने में समर्थ नहीं। और सब इज्म की धारणा टूट जानी चाहिए। और मनुष्य एक ऐसी जगह आ गया है, जहां वह वाद से, पंथ से, धर्म से मुक्त होना चाहिए। यह मनुष्य के विकास में बहुत बड़ी छलांग होगी।

बट दैट इ.ज वॉट हिंदूइज्म इ.ज एक्सप्लेनिंग, दे आर आलरेडी...

हिंदूइज्म को बीच में जो ले आते हो न बार-बार, हिंदूइज्म से मुझे कुछ मतलब नहीं है।

वी आर नॉट अगेंस्ट। आप इसके विरोध में क्यों हैं?

न-न, मैं इज्म के अगेंस्ट हूं। हिंदू से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है।
यह जो सवाल है हिंदू या मुसलमान या किसी इज्म से मेरा कोई संबंध नहीं है। विरोध में भी संबंध नहीं है। मेरा कहना सिर्फ इतना है कि इज्म में बंधने वाला जो चित्त है वह सीमित होता है, रुकता है। और यह जो रोकने की प्रक्रिया है, उसे तोड़ने की जरूरत है--सब तरफ तोड़ने की जरूरत है। न मार्क्स किसी को बांध पाए, न कृष्ण किसी को बांध पाए, न बुद्ध, न महावीर, कोई किसी को बांधने की कोशिश न करे और कोई बंधने की कोशिश भी न करे। व्यक्ति मुक्त हो सके। समस्त विचार की धाराओं से और स्वयं सोचने में समर्थ हो सके यह मेरी चेष्टा है।
अगर कोई कहता है कि यही हिंदूइज्म कर रहा है, तो ठीक है, वह मेरे साथ होकर मेरे काम में लग जाए। अगर कोई कहता है कि यही मुसलमान कर रहा है, तो ठीक है, वह मेरे साथ हो जाए। लेकिन वह यह कह कर भी मुझसे लड़ाई जारी रखेगा।

वेस्टेट इंट्रेस्ट के फायदे क्या हैं?

हमेशा, हमेशा जब भी इज्म खड़ा होगा तो वेस्टेड इंट्रेस्ट पैदा हो ही जाएंगे। क्योंकि पुजारी होगा, मंदिर होगा, आश्रम होगा, धन होगा, व्यवस्था होगी, गुरु होंगे, शिष्य होंगे तो वेस्टेड इंट्रेस्ट पैदा होने ही वाला है।

समथिंग वी आर अफ्रेड अबाउट यू।

अफ्रेड होना चाहिए। न-न, अफ्रेड तुम्हें होना चाहिए, अफ्रेड तुम्हें होना चाहिए। मैं भी अफ्रेड हूं, तुम ही नहीं हो, भयभीत मैं भी हूं, कि वह सब मेरे पास खड़ा हो सकता है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, हां, बिल्कुल ही मैं मानता ही हूं कि समस्त चिंतन इंडिविजुअल है।
और इसलिए न मेरा कोई अनुयायी है, न कोई संप्रदाय है, न मेरे कोई पीछे चलने का सवाल है, न मेरा कोई डिसाइपल है, न मैं किसी का गुरु हूं। तो मैं भी अफ्रेड तो हूं ही, इसलिए सारा इंतजाम कर रहा हूं कि मेरे साथ वह बात न बन सके। मैं किसी को बांधने वाला सिद्ध नहीं होना चाहिए।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह सवाल नहीं है। यह भी मैं कहां कह रहा हूं। न-न-न, अगर ऐसा तुम्हारा ख्याल हो, अगर तुम्हारा ऐसा ख्याल हो, तो मेरे साथ खड़े होना चाहिए। और जैसा जिन लोगों को भी यह लगता हो कि यह सब पुराना है, वही है; जिनको भी ऐसा लगता हो, उन्हें मेरे साथ खड़ा होना चाहिए।

आपके साथ क्यों?

मेरा मतलब यह है कि मैं जो कह रहा हूं न, मैं जो कह रहा हूं न, मैं जो कह रहा हूं अगर वह लगता है कि यही वेद में है, यही पुराण में है, यही कृष्ण कहते हैं, यही महावीर कहते हैं, यही बुद्ध कहते हैं, अगर ऐसा लगता हो, तो वह जो महावीर और बुद्ध को मानने वाला है, उसे मेरी दुश्मनी में खड़े होने का कोई कारण नहीं है। लेकिन वह मेरी दुश्मनी में खड़ा है, और इसलिए मैं कहता हूं कि जब वह यह कहता है कि यही पुराण कहते हैं, तो गलत कहता है। इन दो में से एक ही कोई बात ठीक होगी। और यही पुराण कहते हैं, तो मैं उसके पुराणों को ही सिद्ध कर रहा हूं। तब मुझसे दुश्मनी का कोई कारण नहीं है। मेरी बात दो हैं, अगर मेरी बात पुरानी ही है, अगर मेरी बात पुरानी है, तो मुझसे दुश्मनी का क्या कारण है किसी को, कोई कारण नहीं रह जाता। और अगर दुश्मनी का कारण है और फिर वह कहता है, मेरी बात पुरानी है, तो फिर उसमें चालाकी है।

व्यक्ति को रिस्पेक्ट तो मिलती ही है, जैसे कृष्ण को मिली है। दे रिस्पेक्ट सरटेन पिपुल, दे रिस्पेक्ट कृष्णा एंड...

अगर यह कह रहे हो, अगर यह कह रहे हो, तो मैं यही कह रहा हूं कि व्यक्ति
को रिस्पेक्ट करना गलत है। तो फिर मेरी बात नई हो जाएगी।

डोंट यू थिंक कृष्णा वा.ज अनएनलाइटंड सोल?

न, न, यह सवाल नहीं है, मैं यह कह रहा हूं कि आप जान ही नहीं सकते कि कौन एनलाइटन सोल है और कौन नहीं है। और न आप तय कर सकते हैं; क्योंकि उसी कृष्ण को जैनों ने नरक में डाला हुआ है। एनलाइटन सोल का तो सवाल ही नहीं है। उसका समझना चाहिए न कारण। जैनों के क्राइटेरियन सोचने के अहिंसा के हैं। तो

कृष्ण एनलाइटन नहीं हो सकता; क्योंकि कृष्ण लोगों को हिंसा में ले गया, तो उसको नरक में डाला हुआ है। मैं जो कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि अगर तुम कहते हो कि पुरानी धारणा कृष्ण को, महावीर को, बुद्ध को, व्यक्तियों को आदर देने की है, तो मैं कहता हूं, व्यक्तियों को आदर देने वाला, बांधने वाला सिद्ध हुआ है। व्यक्तियों को आदर देने की जरूरत नहीं है। तो फिर मेरी बात नई हो जाएगी, अगर तुम कहते हो। और अगर पुरानी है, तो मैं झगड़ा नहीं करता कि पुरानी होने में मुझे कुछ दर्द है उसके। मेरा कहना कुल इतना है कि जो लोग यह सिद्ध करना चाहते हैं कि जो मैं कह रहा हूं, वही हमारी किताब में कहा है, फिर मेरा उनसे क्या झगड़ा है? उनको क्या परेशानी है मुझसे? मैं यह कहता हूं कि अपने को रिस्पेक्ट करना पर्याप्त है।

क्या यह सच नहीं है कि आप एक बहुत अहम चीज को नजरंदाज कर गए कि सनातन परंपराओं में एक ही स्वयं ही प्रक्रिया है, जो हर नई चीज को आत्मसात करने की क्षमता रखती है। और उस दृष्टिकोण से आप देखें, तो आपकी विचार क्रांति जो उथल-पुथल लाएगी सोचने की दिशा में, यह आप विरोध नहीं, बल्कि एक समन्वयवादी प्रवृत्ति है आपकी।

यह सवाल ही नहीं है। उसको हम क्या व्याख्या करते हैं, यह सवाल नहीं है। उसको आप विरोध कहें, उसको आप समन्वय की प्रक्रिया कहें, यह सवाल नहीं है बड़ा। सवाल कुल इतना है कि निरंतर जैसा हमने सोचने के ढंग निकाले गए हैं, वे सोचने के ढंग विचार को उकसाते नहीं हैं। विचार को मारने की तरफ बल देते हैं। जैसे अगर किसी व्यक्ति ने यह मान लिया कि कृष्ण जो हैं वे उपलब्ध व्यक्ति हैं, परमात्मा को पा गए हैं, तो फिर कृष्ण जो कहते हैं उसे मानने का मन ज्यादा होता है। अगर मैं यह दावा करूं कि मैंने भगवान को पा लिया है, या मैं भगवान हूं, तो फिर मैं आपके विचार को नुकसान पहुंचाता ही हूं। अगर आप भी मुझे मान लें कि यह आदमी भगवान है, तो फिर मेरी बात पर शक और संदेह और विचार करने का उपाय कम हो जाता है। मेरा कहना कुल इतना है कि कोई व्यक्ति ऑथेरिटी नहीं है।
और जब यह हमारे ख्याल में होगा कि कोई ऑथेरिटी नहीं है तभी हम सोचने
को मजबूर होते हैं, तभी हम विचार करने को मजबूर होते हैं। अन्यथा विचार की कोई जरूरत नहीं रह जाती। अगर ऑथेरिटी है और पुराना सारा चिंतन ऑथेरिटेटिव है, वह यह मान कर चलता है कि एक आदमी तीर्थंकर है, एक आदमी भगवान है, एक आदमी सर्वज्ञ है, उसने पा लिया है, उसने जान लिया है। अब वह जो कह रहा है वह ट्रूथ है, और एब्सोल्यूट ट्रूथ है, तो फिर बाकी लोगों को सोचने की जरूरत नहीं है। बाकी लोगों को मानने का सवाल है। पुराना सारा मन मानने वाला मन है। तो उसे लड़ाई कहें, समन्वय कहें, यह सवाल नहीं है बड़ा, क्योंकि अंततः लड़ाई भी समन्वय ही लाती है। अगर हम दोनों विरोध भी करें एक-दूसरे का तो भी अंततः अगर हम जिद्दी और अहंकारी नहीं हैं, तो हम एक जगह पहुंच जाएंगे, जहां हमारा विरोध आत्मसात होगा और दोनों बातें एक हो जाएंगी। वह बात न आपकी होगी फिर, न मेरी होगी, बल्कि दोनों के संघर्ष का अंतिम फल होगी। तो सारा विरोध भी, थीसिस, एंटी-थीसिस की सारी प्रक्रिया भी, अंततः सिंथीसिस पर ले जाती है। तो समन्वय और विरोध का सवाल नहीं है बड़ा। लेकिन समस्त समन्वय विरोध से ही आते हैं। कोई समन्वय बिना विरोध के नहीं आता। और जो समन्वय बिना विरोध के आने की कोशिश करता है, वह हमेशा मरा हुआ समन्वय होता है, वह कभी समन्वयए सच्चा नहीं होता। क्योंकि समन्वय आने के लिए भी एंटी-थीसिस से गुजर जाना एकदम जरूरी है। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि मैं जो कहता हूं उससे नया मन पैदा हो जाएगा। मैं कह यह रहा हूं कि पुराने मन के साथ अगर एक संघर्ष चले, तो एक नया मन पैदा होगा, जो न पुराने जैसा होगा, न उन लोगों जैसा होगा जो लोग संघर्ष चलाएंगे।

तो रूप क्या होगा इसका?

हां, रूप बहुत तरह के हम सोच सकते हैं। जरूरी नहीं है कि वह वैसा ही होगा, लेकिन कुछ अनुमान हम लगा सकते हैं। जैसे कि पुराना पूरा का पूरा मन किसी न किसी रूप में प्रामाणिक, ऑथेरिटी, साक्षी, विश्वास, आस्था पर खड़ा हुआ था। नये मन की अब कोई संभावना नहीं है कि वह आस्था, शास्त्र, विश्वास इस पर खड़ा हो। नया मन संदेह पर, विचार पर खड़ा होगा।

क्या आप कुछ गाइड करेंगे?

नहीं, मैं किसी को गाइड नहीं कर रहा, बातचीत कर रहा हूं मित्रों से, गाइड किसी को नहीं कर रहा। क्योंकि मैं मानता ही नहीं कि कोई किसी का गाइड हो सकता है। हम मित्र हो सकते हैं, हम बात कर सकते हैं।

अभी आपने गीता का दृष्टांत दिया कुछ?

यह मैं मना कहां कर रहा हूं। यह तुम जो दूसरी बात उठा लेते हो उससे मुझे कोई झंझट नहीं है। गीता का दावेदार जो कृष्ण है, वह कहता है, आओ मेरी शरण में, और सब छोड़ दो, मेरी शरण में आ जाओ, तो तुम उपलब्ध हो जाओगे। यह मैं इनकार करूंगा।

यह तो साधन की सुगमता के लिए है।

उसको मैं साधन ही नहीं कह रहा हूं न। यही तो झगड़ा है। मैं यह कह रहा हूं कि जब भी कोई व्यक्ति किसी कि शरण में जाता है, तो आत्मघात कर लेता है। जो शरण में गया उसने आत्मघात किया, और जिसने शरण में बुलाया, वह आदमी दूसरे का मित्र नहीं है, वह दूसरे को मिटा ही रहा है। गीता मित्र हो सके, कृष्ण मित्र हो सके, यही मैं चाह रहा हूं। कृष्ण गुरु हैं, गाइड हैं, मित्र नहीं है। महावीर को कोई जैन हिम्मत नहीं करेगा मित्र कहने की, मित्र कहने की हिम्मत ही नहीं करेगा।

दैट डिपेंड्स, सम पिपुल हैव सेड दैट, मीरा...

बिल्कुल। मीरा कह सकती है सखा। मीरा कह सकती है सखा। पति भी कह सकती है। लेकिन मीरा का भी समर्पण भाव पूरा है। और मैं कह रहा हूं, समर्पण का भाव ही गलत है। कोई किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति के प्रति सरेंडर होने की बात ही गलत है।

व्यक्ति की बात छोड़िए। दि परसन हू वा.ज अचीव्ड?

फिर वही बात हो गई न। फिर तो यह आपको मान कर चलना पड़ेगा न कि अचीव किया। यह तो विश्वास की बात हो गई न आपके। तो वही मैं कह रहा हूं, वही मैं कह रहा हूं कि पुराना जो माइंड था, वह विश्वास पर खड़ा है। वह पुराना माइंड विचार पर खड़ा नहीं है, वह विश्वास पर खड़ा है। कृष्ण को एक आदमी मान सकता है कि पहुंच गए, दूसरा आदमी मान सकता है कि नहीं पहुंच गए। लेकिन विचार का कोई उपाय नहीं है कि पहुंचे कि नहीं पहुंचे। क्राइस्ट पहुंचे कि नहीं पहुंचे। एक मान सकता है कि पहुंच गए, दूसरा मान सकता है कि पागल हैं। यह बात विचार पर खड़ी हुई नहीं है। यानी इसके लिए कोई विचार निर्णायक नहीं हो सकता है कि कृष्ण पहुंच गए कि नहीं पहुंच गए।

दैट ओनली टाइम कैन प्रूव।

नहीं, नहीं टाइम कुछ प्रूव नहीं कर सका आज तक। जरा प्रूव नहीं कर सका,
एक जैन को नहीं समझा सका टाइम कि कृष्ण पहुंच गए हैं। एक हिंदू को नहीं समझा सका, महावीर का समय का गुजर जाना कि महावीर सर्वज्ञ हैं। एक बौद्ध को

नहीं... टाइम की तो बात दूर है। कितने ही करोड़ वर्ष बीत जाएं, तो कुछ तय नहीं होता, क्योंकि तय क्या होगा? विश्वास करने में तय कभी होना ही नहीं है। जिसको विश्वास करना है करना है, जिसको नहीं करना है नहीं करना है। टाइम सिर्फ साइंटिफिक ट्रूथ को प्रूव करता है, रिलीजस ट्रूथ को प्रूव नहीं करता। नहीं करता है इसलिए कि रिलीजस ट्रूथ विश्वास पर खड़ा हुआ है। विश्वास का टाइम से कोई संबंध नहीं है?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बिल्कुल है, बिल्कुल है। लेकिन विश्वास से वह नहीं जानी जा सकती है।
वह तो विचार का अतिक्रमण होगा तब जानिए। इतना कोई विचार करे कि उस जगह पहुंच जाए जहां विचार व्यर्थ हो जाए, तो ट्रांसेंडेंस होगी, लेकिन वह विश्वास से नहीं होती है। विश्वास तो विचार की बिल्कुल प्राथमिक प्रक्रिया है।

अगर विचार निरंतर है तो शाश्वत क्या है, और विचार का मकसद क्या है?

शाश्वत को खोजना ही विचार का मकसद है, और विचार निरंतर है। और एक सीमा आती है विचार की जहां कि विचार को पता चलता है कि और आगे जाना है, तो विचार छोड़ देना पड़ेगा। विचार की अंतिम प्रक्रियाओं से गुजर कर यह बोध होता है कि एक जगह विचार भी छूट जाता है। लेकिन तब विश्वास नहीं आता। विश्वास तो विचार के पहले है। जो आदमी विचार करता ही नहीं, वह विश्वास करता है। और जो व्यक्ति विचार को ट्रांसेंड कर जाता है, वह जानता है, ही नो.ज। विश्वास नहीं करता वह। और जानने में और विश्वास करने में जमीन-आसमान का फर्क है। और जानने का जहां संबंध है, वहां विश्वास बिल्कुल नहीं है। विश्वास की कोई बात ही नहीं है जानने से।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)देयर आर सरटेन पिपुल हू जस्ट कांट थिंक, देयर इ.ज ओनली थिंक, दे गो ऑन कांफिडेंस ओनली। दे फॉलो यू, दे फॉलोड कृष्णा...

हां, यह जो पुराना मस्तिष्क है इसको तोड़ना है। यह मस्तिष्क खतरनाक सिद्ध हुआ है। यह हितकर सिद्ध नहीं हुआ। क्योंकि मस्तिष्क ही नहीं है। जो आदमी सोच ही नहीं सकता, वह ठीक अर्थों में आदमी ही नहीं है। उसमें सोचना पैदा करना पड़ेगा। लेकिन पुराना धर्म उस आदमी को भी जगह देने का था जो नहीं सोच सकता। इसलिए पुराने धर्म ने मनुष्य को विकास में सहायता कम दी, मनुष्य के विकास को रोकने में सहयोगी बना। जो आदमी नहीं सोच सकता उसको मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। लेकिन उसको पुराना धर्म विश्वासी बना कर संत भी बना सकता है। तो इडियट भी परमहंस हो सकते हैं पुराने धर्म की दुनिया में। जो कुछ नहीं सोच सकता, बिल्कुल इंबेसाइल है, वह भी परमहंस हो सकता है। और परमहंस इसलिए हो सकता है कि वह सोच नहीं सकता। वह निपट गंवारी के काम कर रहा है। पाखाने के पास बैठा हुआ है, पेशाब पी रहा है, उसमें कोई भेद नहीं है। लेकिन हम परमहंस भी कह सकते हैं। मैं यह जो कह रहा हूं कि अगर रांग नहीं है... समझे न? मेरा कहना यह है कि विचार ही मनुष्य की लक्षणा है--तो फिर हैजिटेट करो, फिर कोई बात ही नहीं है। फिर तुम झाड़ हो जाओ, जानवर हो जाओ। फिर कोई सवाल ही नहीं है। मैं यह कह रहा हूं कि पत्थर हो जाओ, फिर कोई हर्जा नहीं है।
जिस आदमी को यह ख्याल है कि सब फॉर्म भगवान के हैं, ठीक है, हो जाए कुछ भी, मैं यह नहीं मान रहा हूं। और मैं मानता हूं कि मनुष्य के भीतर कोई घटना घटी है, जो पत्थर के भीतर नहीं घट रही। मनुष्य के भीतर कोई घटना घटी है जो परमात्मा को भी विकसित करने में, अविकसित करने में सहयोगी हुई है। और वह मनुष्य की जो चेतना है, उस चेतना को हम कितना बल दे सकें, कितनी गति दे सकें--दो रास्ते हो सकते हैं। या तो उस चेतना को हम रोकें, या उस चेतना को

गति दें! मेरा कहना कुल इतना है कि पुराना मन उसको रोकने वाला सिद्ध हुआ है।

अभी वह चेतना को हम इतनी गति दें कि वह अल्टीमेटली इट मर्जेस विद दि अल्टीमेट चेतना... ।

अभी यह अल्टीमेट का तो सवाल नहीं है। अभी तो अल्टीमेट का सवाल नहीं है। और मर्ज होती है कि नहीं होती है, यही मेरा कहना है। कि यह विचार करने की बात है। इसके लिए एग्री करता हूं। यह विश्वास करने की बात नहीं है। यह विचार करने की बात है कि मर्ज होती है कि नहीं होती। यही मैं कह रहा हूं। पुराना मन कहता है कि विश्वास करो कि मर्ज होती है। और विश्वास करो कि इस भांति मर्ज होती है। झगड़ा मेरा यह नहीं है कि मर्ज होती है कि नहीं होती। झगड़ा मेरा यह है कि जीवन के समस्त सत्य विचार करने के योग्य हैं, विश्वास करने के योग्य कोई सत्य नहीं है।

दैट इ.ज ए प्राइमरी थिंक।

अगर यह प्राइमरी है तो फिर मैं जो कह रहा हूं उसमें भेद है। फिर भिन्नता है। क्योंकि पुराना मन बिल्कुल दूसरी बात कहता है। वह यह कहता है कि विचार मत करो, विश्वास करो, विश्वास प्राइमरी है। और तुमने संदेह किया, संदेह किया, शक किया तो तुम भटक जाओगे। मेरा कहना यह है कि संदेह नहीं किया, तो कभी पहुंच ही नहीं सकोगे। अगर संदेह नहीं किया तो कभी पहुंच ही नहीं सकोगे। संदेह करोगे तो खोजोगे, प्रश्न करोगे, चिंतन करोगे, मनन करोगे, श्रम करोगे, अनुसंधान करोगे, तो कभी पहुंच सकते हो।

अल्टीमेट गोल ऑफ मर्जिंग विद दि एनर्जी कैन बी अचीव्ड बाइ कंप्लीट कांफिडेंस इन समथिंग।

आप रख ही नहीं सकते कंप्लीट कांफिडेंस बिना जाने हुए। इसको थोड़ा समझो। इसको थोड़ा समझा। कि जब हम कहते हैं कंप्लीट कांफिडेंस। जिस बात को मैं नहीं जानता हूं उसमें मैं कितना ही कांफिडेंस रखने की कोशिश करूं, वह इनकंप्लीट रहेगा। क्योंकि बेसिकली मैं यह जानता ही रहूंगा कि मैं नहीं जानता हूं। इसको भुलाया नहीं जा सकता।

दैट इ.ज बीका.ज वी कंटीन्यु टू थिंक।

तुम थिंक करो या न करो, क्योंकि कंप्लीट कांफिडेंस भी थिंकिंग है और क्या है। तुम यह सोचोगे न कि मुझे कंप्लीट कांफिडेंस रखना है तो क्या करोगे?

जस्ट गिव अप योर थिंकिग एण्ड गिव अप यू विश।

यह कैसे करोगे? सोचोगे न गिविंग?

दैट इ.ज ए वेरी सिंपल थॉट।

न, न, कितना ही सिंपल हो, इट इ.ज ए थॉट।

इट्स दि डिसीजन।

डिसीजन भी थॉट है। तुम डिसीजन लोगे न, जो कि नहीं जानता है। दि बेसिक इग्नोरंस रिमेंस। कितना ही कंप्लीट कांफिडेंस हो, यह तुम जानते ही रहोगे कि कांफिडेंस तुम्हारा लाया हुआ है।

आई डोंट थिंक इट इ.ज थॉट, इन माइ ओपिनियन, आई थिंक इट्स रियलाइजेशन।

रियलाइजेशन की जल्दी मत करो। अभी कंप्लीट कांफिडेंस जो कर रहा है, वह
तो बिल्कुल इग्नोरेंट आदमी है। रियलाइजेशन वाले को कांफिडेंस करने की जरूरत नहीं है, कांफिडेंस होता है।

इट इ.ज इनहेरेंट इन दि मैन, इट जस्ट कम्स, वन हैज नॉट टू मैक एनी एफर्ट, स्पेशियल फॉर दैट।

यह अगर जस्ट कमिंग की बात होती, तो फिर न गाइड की जरूरत है, न गीता की जरूरत है, न धर्म की, न मंदिर की, न मूर्ति की। नहीं, इसकी कोई जरूरत नहीं है।

यस, देयर इ.ज नो नीड। आइ कंटीन्यु टू रिमेन ए हिंदू, इवन इफ आइ डोंट रीड, आइ डोंट गो टू टेंपल, आइ जस्ट डोंट डू एनीथिंग, आइ रिमेन।

तुम्हारे रिमेन होने का क्या मतलब है? क्या मतलब है तुम्हारे हिंदू रिमेन होने का? हिंदू रहने की जरूरत ही नहीं है, अगर यह इनहेरेंट बात है तो। हिंदू होने की क्या जरूरत है? नहीं है न जरूरत। बिलीफ करते हो न। तुम तो कुछ करते हो न? अगर तुम हिंदू हो, तो हिंदू होने में बिलीफ करते हो न? जब हम कहते हैं कि मैं हिंदू हूं, तो मैं हिंदू होने में बिलीफ कर रहा हूं कि नहीं? तो बिलीफ तो तुम कर रहे हो। और अगर कुछ भी नहीं करना है तो इतना करना भी बेमानी है कि मैं हिंदू हूं।

नो, मैं हिंदू नहीं हूं। दिस इ.ज हाउ इट हैज बीन सेड ऑल दीज ईयर्स।

हां, हां, तो और इसको तुमने बिलीव कर लिया है, और क्या किया है?

नो, आइ जस्ट वॉट आइ एम। दिस इ.ज दि पीपुल डब देम एज हिंदू।

हां, हां, यही न। तो यह पीपुल डब जो कर रहे हैं हजारों साल से, मैं उसके खिलाफ हूं। मैं कहता हूं, तुम जो हो, हो। न तुम हिंदू हो, न तुम मुसलमान हो। यह हिंदू होना और मुसलमान होना, सिखाई हुई बात है। और तुम्हें सिखा कर विश्वास दिलाया जा रहा है बचपन से कि यह आदमी हिंदू है, यह मुसलमान है, यह ईसाई है। और तुम जो हो, वह हो। तुम जो हो, अगर उसको खोजना है, तो इस प्रोपेगेंडा से मुक्त होना पड़ेगा जो सोसाइटी तुम्हें सिखा रही है कि तुम हिंदू हो, तुम मुसलमान हो, तुम ईसाई हो, तुम फलां हो, तुम ढिकां हो। ये बिल्कुल झूठी बातें हैं।

ये बहुत एलीमेंट्री बातें हैं?

एलीमेंट्री ही बातें कर रहा हूं। एलीमेंट्री ही बात करने की जरूरत है।

दिस फॉर्म इ.ज गिवन दैट यू आर सेइंग समथिंग न्यू, एज इफ यू इनवेंटेड सम थ्योरी।

यह मैं कहां कह रहा हूं, यह मैं कह ही नहीं रहा हूं, यह मैं कह ही नहीं रहा हूं।

इट इ.ज देयर, इट हैज बीन सेड, यू आर नॉट दि फर्स्ट मैन टु से दैट।

यह जो तुम बार-बार कहते हो न इट हैज बीन सेड? जैसे ही इसको हम कहते हैं
कि यह कही गई है, फॉलो की गई है, तो फिर मुझसे विरोध क्या है? फिर मुझसे बात क्या कर रहे हो? फिर तो तुम्हें बिल्कुल चुप पहले से होना था। बात ही खतम हो गई है। मेरा मतलब नहीं समझे? मेरा मतलब नहीं समझे। अगर जो मैं कह रहा हूं वही कहा गया है, वही माना गया है, तब तो तुम्हें मुझसे बात करने का सवाल ही नहीं उठता। बात ही खतम हो गई। हां, अगर सवाल उठता है...

हिंदूइज्म शूड इग्नोर यू।

हां, हां, बिल्कुल ही। यही अगर हिंदूइज्म कर ले तो बड़ा काम हो जाए। इतना तो कम से कम नया मानोगे न, इतनी सरुडनेस, तो यह तो पुरानी नहीं है न। यह तो पुरानी नही है न। यह तो पहले नहीं कही गई।

एक सवाल है मेरा। आपने कहा कि विचारों का जो चरम लक्ष्य है, वह शाश्वत
की खोज है। तो क्या यह संभव नहीं है कि युगों की विरोधी विचारधारा के पश्चात शाश्वत सत्य, चिरंतन सत्य खोज निकाला गया है जो हमारे सामने है, गीता और वेद के रूप में आया है। इसके पीछे भी हजारों साल की चिंतन की प्रक्रिया रही है, जिसके लगातार प्रयास के बाद यह फल निकला है। तो शाश्वत की खोज हो गई, और हम उसको विश्वास कर कर रहे हैं। सो वॉट वी गॉट डुप्लीकेशन ऑफ एफर्टस। हम उसको, प्रयासों को दोहराने के बजाय जो समय जाया होगा उसको बचाने की कोशिश हम कर रहे हैं। हम उसमें और कुछ एड करने की कोशिश करें बजाय इसके...

हां, इसको था.ेडा समझ लेना जरूरी है। असल में शाश्वत की जो खोज है-- शाश्वत कोई ऐसी चीज नहीं है कि किसी ने मुट्ठी में बांध ली हो और आपको दे दे। शाश्वत को पाने में खोज उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितना शाश्वत को पाना है। सच तो यह है कि खोज और पाना दो चीजें नहीं हैं। खोजने की प्रक्रिया में ही पाना है। तो अगर कृष्ण को मिल गया हो शाश्वत और आप खोज नहीं करते, सिर्फ कृष्ण को मान लेते हैं, तो आपको कभी नहीं मिल सकता। क्योंकि खोजने में ही मिलने की प्रक्रिया है। वह जो खोजने की वेरी प्रोसेस वही आपको रुपांतरित करती है, और उस जगह पहुंचाती है जहां शाश्वत के दर्शन होते हैं। आप तो कृष्ण को मानेंगे। मिला है कृष्ण को शाश्वत या नहीं, यह आप जान नहीं सकते। मिला भी हो सकता है, नहीं भी मिला हो सकता है। आपके लिए तो यह सिर्फ मानना होगा। यह विज्ञान के बाबत बिल्कुल सच है, कि डुप्लीकेशन की कोई जरूरत नहीं है विज्ञान में। क्योंकि जो मिल गया है वह आब्जेक्टिव है।
एक आदमी ने बिजली के बाबत खोज कर ली है, तो अब मुझे और आपको बिजली के बाबत फिर से पुनः खोज करने की कोई जरूरत नहीं है, नासमझी है वह। बिजली चूंकि ऑब्जेक्टिव है, बाहर है। आपने भी खोज ली हो, तो पचास लोगों के सामने आप प्रयोग करके बता देते हैं कि यह रही बिजली।
शाश्वत सत्य, जिसे हम धर्म का शाश्वत सत्य कहते है, चूंकि सब्जेक्टिव है, और चाहे कृष्ण को मिला हो, चाहे किसी को भी मिला हो--सामने रख कर बताया नहीं जा सकता है बीस लोगों के सामने कि यह मुझे मिल गया है। और तुम पहचान लो कि इसे पाकर मैं आनंदित हो गया हूं। कृष्ण इतना ही कह सकते हैं कि जो मुझे मिला है, उसकी शब्दों में बात कर सकते हैं। वह मिलना तो बहुत आंतरिक है, और इतना आंतरिक है कि दूसरे व्यक्ति के लिए आब्जेक्ट हो नहीं पाता कभी भी। इसलिए धर्म की दुनिया में, विज्ञान का अर्थ काम नहीं करेगा। धर्म की दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति को खोज से गुजरना ही पड़ेगा। वह अनिवार्य है खोज से गुजरना। और कृष्ण जिस तरह पहुंचते हैं उसी तरह उसे भी पहुंचना पड़ेगा अपनी ही खोज से। कृष्ण का दिया हुआ, क्योंकि कृष्ण को जो मिला है या कृष्ण जो कह रहे हैं, तो बुद्ध को कोई जरूरत नहीं हैं खोजने की--कृष्ण को मिल गया है, बुद्ध उसको पकड़ लें, मामला खत्म हो गया। लेकिन बुद्ध कितना ही पकड़ते हैं, उससे कुछ हल नहीं होता, बुद्ध को खोजना पड़ता है। बुद्ध को मिल गया है, महावीर को कोई जरूरत नहीं है खोजने की, महावीर को पकड़ लें, बात खत्म

हो जाती है। अब तक जितने लोगों को चरम सत्य मिला है, वह व्यक्तिगत खोज की निष्पत्ति है, सामूहिक खोज की निष्पत्ति चरम सत्य नहीं है!
और दो तरह के सत्य हैं, जिसको हम आब्जेक्टिव ट्रूथ कहें। जो हमसे बाहर है, वह तो विज्ञान खोज रहा है। और एक जो हमसे भीतर है, जो धर्म खोज रहा है। विज्ञान के मामले में आप कहते हैं कि बिल्कुल ही ठीक है। डुप्लीकेशन बिल्कुल बेमानी है, एब्सर्ड है, कोई जरूरत नहीं है। हम आगे जोड़ते चले जाएं। इसलिए विज्ञान में तो एडीशन होता है और धर्म में कभी एडीशन नहीं होता। धर्म में आपको फिर से रिवीलेशन होता है। और वह रिवीलेशन उतना ही ओरिजिनल है, जितना कभी किसी को हुआ हो, वह कभी डुप्लीकेट नहीं। क्योंकि आप किसी को मान कर कभी वहां पहुंचते नहीं। आप खोजते हैं, खोजते हैं, खोजते हैं और पहुंचते हैं। यह जो पहुंचना है, इतना आंतरिक है कि यह कभी सोशल प्रॉपर्टी बन नहीं पाता और बन ही नहीं सकता।
मेरा जो कहना है वह कुल इतना ही है कि हम इसको सोशल प्रॉपर्टी बना कर नुकसान में पड़े हैं। पुराने चित्त ने यह कह दिया है कि एक दफा मिल गया वेद को सत्य, तो अब बाकी लोगों का काम है कि वेद को मान लें। मोहम्मद को मिल गया सत्य, बाकी लोगों का काम है कि मोहम्मद को मान लें। मेरा कहना ही यह है किसी को भी सत्य मिल गया हो, बाकी लोगों के मानने से नहीं मिल जाएगा। बाकी लोगों को भी उस प्रक्रिया से खोजने को गुजरना ही पड़ेगा, जो एकदम आंतरिक और व्यक्तिगत है, जिसमें किसी से ट्रांसफरेबल नहीं है ट्रूथ।
परम सत्य कभी भी हस्तांतरित नहीं होता है। न हो सकता है। इसका कोई उपाय ही नहीं है। अगर मुझे मिल गया है, तो मैं लाख उपाय करूं तो भी आपको नहीं दे सकता हूं। या आपको मिल गया हो तो मुझे नहीं दे सकते हैं। अगर यही संभव हो गया होता तो दुनिया में एक धर्म बच जाता और कोई जरूरत न थी पचास धर्मों की। और दुनिया के सारे लोग, जैसा विज्ञान को स्वीकार कर लिए हैं, क्योंकि कोई सवाल नहीं झगड़े का कि हिंदू की केमिस्ट्री अलग हो, मुसलमान की केमिस्ट्री अलग हो। केमिस्ट्री के बाबत हम राजी हो जाएंगे, चाहे मैं हिंदू हूं, चाहे आप मुसलमान हैं। एक एक्सपेरीमेंट करते हैं, ऑब्जेक्ट ट्रूथ है, हम राजी हो जाते हैं।
रिलीजन के साथ जो उपद्रव है, वह यह है कि ट्रूथ सब्जेक्टिव है और इनर है।

तो आपकी भी यह कहना है कि एक धर्म हो सारे देश में?

नहीं, यह मैं नहीं कहता, मैं यह नहीं कह रहा। हो ही नहीं सकता, हो ही नहीं सकता। है तो एक ही, दो नहीं हैं, क्योंकि दो कैसे हो सकते हैं? और एक भी नहीं हो सकता है, इस अर्थों में कि हम सब एक पर राजी हो जाएं। लेकिन जब भी कोई व्यक्ति उपलब्ध होता है तो उसी एक को जान लेता है जिसको बहुत बार जाना गया हो। लेकिन फिर भी यह डुप्लीकेशन नहीं है। फिर भी हर व्यक्ति के लिए यह अनुभव बिल्कुल ओरिजिनल है। क्योंकि उसके लिए बिल्कुल नया है, और किसी के हाथ से नहीं मिला है। इसलिए धर्म के अनुभव की नौवेलिटी हमेशा कांस्टेंट रहेगी, वह कभी पुराना नहीं पड़ेगा। जब आपको होगा, तो वह ऐसा ही होगा, जैसे पहली दफा आपको हो रहा है और किसी को नहीं हुआ। आपके लिए वह बिल्कुल पहली दफा है।

तो आपको कार्य क्षेत्र बड़ा सीमित हुआ इस माने में कि सिर्फ विचारों
की उथल-पुथल पैदा करके आप तो शांत हो जाएंगे। उसके बाद जो नई रूप-रेखा, नई प्रवृत्ति, नई धारणा जो होगी उसकी बनावट कैसी होगी?

न, मैं उसमें बहुत उत्सुक नहीं हूं। मैं उत्सुक इसलिए नहीं हूं कि मेरा मानना यह है कि वह जो हम बनावट की, रूप-रेखा की, पाजिटिव प्रोग्रेम की बहुत चिंता करते हैं। वह इसलिए करते हैं कि समाज के पास थिंकिंग बहुत कम है। समाज के पास विचार की शक्ति अगर तीव्र हो जाए, तो उस विचार से सहज ही क्या करना है, वह निकलना शुरू होता है। अगर समाज के पास विचार की शक्ति

ज्यादा न हो, तो प्रोग्रेम देना पड़ता है। कोई आदमी तय करेगा कि यह करो, और समाज करेगा। अब तक यही हुआ है। अब तक यही हुआ है कि एक आदमी तय करता है, दस आदमी तय करते हैं कि यह करने योग्य है, पूरा समाज फॉलो करता है। मैं मानता हूं यह गलत ही है। हमें फिकर यह करनी चाहिए कि वह विचार-शक्ति समाज में जन्म पा जाए, जिससे पाजिटिव प्रोग्रेम अपने आप निर्मित होंगे। हमें उसकी चिंता नहीं करनी चाहिए। यानी मेरा वह काम नहीं है। मेरा काम इतना है कि हम किसी तरह मुल्क को सोचने के लिए राजी कर लें और एक-एक चीज संदिग्ध हो जाए, और एक-एक चीज के संबंध में चिंतन शुरू हो जाए। मैं भी संदिग्ध रहूं। कोई मैं विश्वास का आधार बन जाऊं यह सवाल नहीं है। मैं भी संदिग्ध रहूं, चिंतन चले, विचार चले, लोग सोचें। सोचने की प्रक्रिया से प्रत्येक के भीतर चेतना उस जगह आनी शुरू होती है, जहां से दर्शन संभव है, जहां से चीजें दिखाई पड़नी शुरू होती हैं और वह दिखाई पड़ना पाजिटिव प्रोग्रेम को जन्म देता है।

चिंतन की जागृति के लक्ष्य को उपलब्ध करने के लिए क्या कोई आप संगठन
या संस्था बना रहे हैं?

नहीं, जरा भी नहीं। क्योंकि मेरा मानना है कि सब संगठन नव-चिंतन के लिए बाधा बनते हैं। सब संगठन। मेरा संगठन भी। मैं मानता हूं कि व्यक्तिगत कम्युनिकेशन के अतिरिक्त कोई माध्यम नहीं है। यह सवाल नहीं है कि कितनों तक पहुंच पाता हूं। लेकिन संगठन को मैं मानता हूं--कि चूंकि संगठन फौरन ही स्वार्थ बन जाता है। और संगठित होते ही जिस चिंतन के आधार पर वह संगठित होता है वह चिंतन पुराना पड़ जाता है। और उस पुराने चिंतन को वह संगठन पहुंचाने की कोशिश में लग जाता है। यही तो उपद्रव हमेशा से चल रहा है। तो मैं जरा भी उत्सुक नहीं हूं--कितने लोगों तक पहुंचेगा--दस तक, पांच तक, यह महत्वपूर्ण नहीं है मेरे लिए।

इससे वैचारिक अराजकता आ जाएगी?

मैं चाहता हूं। मैं चाहता हूं। एक बार दुनिया में वैचारिक अराजकता आ जाए, तो ही दुनिया में विचार की शक्ति की पूरी ऊर्जा प्रकट होगी, नहीं तो नहीं पैदा होगी। होगी ही नहीं। पैटर्न जब तक है, व्यवस्था जब तक है, सिस्टम जब तक है, ट्रेडीशन जब तक है तब तक विचार की ऊर्जा पैदा होने वाली नहीं। तो मैं एकदम अराजक हूं। मैं चाहता हूं कम से कम विचार के तल पर तो अराजकता आ जाए। अराजकता का मतलब यह नहीं है कि सड़क पर मैं किसी को कहता हूं कि तुम बाएं मत चलो, दाएं चलने लगो, कि बीच सड़क पर चलने लगो। जिंदगी की फिजूल बातों में मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि पुलिसवाले को मत मानो, कि जज को मत मानो, कि पति-पत्नी को मत मानो, इससे मुझे मतलब नहीं है। मेरा प्रयोजन है कि वह जो हमारा भीतर चित्त है वह बिलिविंग न रह जाए। वह सोचने की इतनी क्षमता जुटा ले कि कभी बिलीफ करने को राजी न हो, सोचने को तैयार रहे, चाहे किसी कीमत पर भी। यह भी हो सकता है कि वैसा आदमी खो जाए चित्त में, उसको कहीं कोई मार्ग न मिले, और कहीं कोई द्वार न मिले, तो भी कोई फिकर नहीं। क्योंकि जितना ही वह खोएगा और जितनी चुनौती खड़ी हो जाएगी, संकट जितना, क्राइसिस भीतर खड़ी होगी, उतनी बड़ी उसकी सोई हुई चेतना के जगने का मौका होगा। जितनी बड़ी चुनौती उतना बड़ा जागरण। तो मैं एक अराजक मन, एक अनार्किस्ट माइंड तो चाहता ही हूं, अनार्किस्ट सोसाइटी नहीं।

आपकी विचारधारा उस वर्ग-संघर्ष की ओर ले जाएगी जहां की पुरानी आस्थाएं, उन पर विश्वास करने वाले और नव-चिंतक, इन दोनों में आपस में संघर्ष होगा।

अनिवार्य है, अनिवार्य है, लेकिन संघर्ष बहुत लंबा नहीं हो सकता। क्योंकि पुराने चिंतन के नीचे से आधारशिलाएं खिसक गई हैं। वह मर गया है, धक्का मारा कि वह गया।

यह आप सोचते हैं न?

हां, यही सोचता हूं। और यह नहीं कहता कि आप मानें। आपको भी सोचने को ही कहता हूं।

आप इस... सांस्कृतिक क्रांति जो हो रही है, उसको कुछ इंटरप्रीट कर सकते हैं?

नहीं, मैं उसको बहुत सांस्कृतिक क्रांति नहीं मानता हूं। क्योंकि फिर
वह एक पंथ की दृष्टि से हो रही है। एक पक्के विचार की दृष्टि से हो रही है। कम्युनिज्म नये से नया धर्म है, और नये से नया संप्रदाय है, और नये से नया उपद्रव है। कम्युनिज्म अराजक नहीं है। उसके पास अपनी पाजिटिव सिस्टम है। कम्युनिज्म निगेटिव भी नहीं है और कम्युनिज्म भी विचार में विश्वास नहीं करता है। बहुत गहरे में वह भी बिलीफ में ही विश्वास करता है।

पुरातनवादी है न?

हां, पुरातनवादी है, एकदम पुरातनवादी है। इसलिए चीन में जो हो रहा है
वह एक तरह के मूल्य को दूसरे मूल्य से बदलने की जबरदस्त चेष्टा चल रही है। लेकिन वह कोई सांस्कृतिक क्रांति नहीं है। उससे पुराना मन खतम नहीं होगा। यह होगा मोहम्मद की जगह मार्क्स बैठ जाएगा। बाइबिल की जगह कैपिटल बैठ जाएगी। वह रिप्लेसमेंट है।

क्या आपको भारत में नव-चिंतन प्रक्रिया के लक्षण नहीं दिखाई दे रहे हैं--राजनीति में, समाज में?

अभी तो नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। नहीं, कहीं भी नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। यहां सब रिप्लेसमेंट चल रहा है।

राजनीति में तो आ ही गए वामपंथी लोग।

मजा यह है कि भारत के वामपंथी से भी मैं बहुत परिचित हूं निकट से। तो
भी उसके भीतर अराजक चित्त नहीं है। विद्रोह है, बगावत है; रेवोल्यूशन नहीं है। उसमें तोड़-फोड़ भी है, जल्दबाजी भी है, और उसको लगता भी है कि यह गलत है, वह गलत है। लेकिन मैं सही हूं और गलत की जगह इसको बिठा दू, यह आग्रह परिपूर्ण है। यानी बहुत नया नहीं है वह। जब तक यह आग्रह है कि गुरु बदल कर मैं गुरु बन जाऊं, तब तक गुरूडम से मेरा विरोध नहीं है। गुरु से विरोध हो सकता है। यह गुरु गलत है, दूसरा गुरु चाहिए। मैं कह रहा हूं, गुरूडम गलत है। उसमें मार्क्स भी गलत हैं और महावीर भी गलत हैं।

आप जो बोलते हैं कि अनुभूति के सिवाय आप कुछ मानते नहीं हैं। तो आपने
आए दिन तक सेक्स के बारे में बहुत बताया है, तो यह क्या आपकी अनुभूति से... ।

बिल्कुल। मैं अपनी अनुभूति के बिना कुछ भी नहीं कहता हूं। हां, अभी एक लंबी पूरी बात करनी पड़ेगी। क्योंकि मेरी समझ और मेरे अनुभव आपको विश्वास करने को नहीं कहता हूं। विश्वास करने का सवाल ही नहीं है। आप उनको सोचेंगे, समझेंगे, ठीक लगेंगे, नहीं लगेंगे। मेरा मानना यह है कि आदमी के अनंत जन्म हैं। और सारे जन्मों का सार, निचोड़ आपकी स्मृति का हिस्सा है। वह कभी मिटता नहीं है। और उसका जो पूरा का पूरा क्लेक्टिव अनुभव है आपके

भीतर, आज भी मौजूद है। और ध्यान के रास्ते हैं कि अपने सारे पुराने अनुभवों में आप उतर सकते हैं। और अपनी पुरानी पूरी स्मृतियों को जगा सकते हैं, जो आपने जन्मों-जन्मों में कभी भी की हों, और उन सारे सार अंश का आज आप उपयोग कर सकते हैं। उस तरह के ध्यान के प्रयोग का नाम जाति-स्मरण है। बुद्ध और महावीर ने उस प्रयोग पर बहुत मेहनत की है। बल्कि उन दोनों का दान ही वही है, और कोई खास दान नहीं है--रिमेंबरिंग ऑफ दि पास्ट लाइफ।

बोथ ऑफ देम वर मैरिड। वे तो दोनों परिणीत ही थे?

महावीर तो परिणीत नहीं थे, बुद्ध परिणीत थे। महावीर परिणीत नहीं थे। महावीर की तो सारी की सारी चिंतना, जीवन के ब्रह्मचर्य के बाबत पिछले जन्मों के अनुभव से संबंधित थी। मेरी भी इधर निरंतर चेष्टा रही है कि पीछे के जन्मों में उतरने की। और निश्चित किसी को भी उतरने की संभावना है। थोड़े से प्रयोग करने की बात है कि कोई भी व्यक्ति पिछले जन्मों में उतर जाए। इस जन्म का मेरा सेक्स का कोई अनुभव नहीं है। कोई जरूरत भी नहीं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, उस तरफ ही सारी मेहनत पर मैं लगा हुआ हूं। मेरी सारी भीतरी चेष्टा उसी तरफ है।

हैव यू ऑलरेडी हैव बीन इन योर पास्ट बर्थस्।

हां, बिल्कुल ही। अब यह तो लंबी बात करनी पड़े। और यह बात ऐसी होगी जो आपके लिए सिर्फ विश्वास का कारण बने, इसलिए बेमानी होगी, मैं कितनी भी कहूं।
वह तो जैसे भी आप अपने भीतर जाएंगे, आप अपनी इस स्मृति को आज की स्मृति
की मेमोरी में उतरेंगे, तो आपके भीतर की परतें जगनी शुरू हो जाएंगी अनिवार्यरूपेण। जो आदमी भी भीतर जाएगा, जितना भीतर प्रवेश करेगा, जितने अनकांशस में उतरेगा, उतनी स्मृतियां उठनी शुरू हो जाएंगी, जो पहले बिल्कुल बेमानी होंगी। क्योंकि पहले समझना मुश्किल होगा कि वे क्या हैं?

तो पुनर्जन्म और ईश्वर की आस्था पर आपकी चुनौती नहीं है न?

आस्था पर चुनौती है, प्रयोग पर चुनौती नहीं है। आस्था पर, सब पर चुनौती है। मैं नहीं कहता आपसे कि आप आस्था करें कि पिछले जन्म हैं।

आप पुनर्जन्म में क्यों इतना विश्वास करते हैं?

विश्वास बिल्कुल नहीं करता, मैं अपने अनुभव की बात कह रहा हूं। मेरी बात आप नहीं समझे। विश्वास पर मेरी बिल्कुल दुश्मनी है। जब तक मुझे नहीं हुआ मैंने विश्वास नहीं किया। मैंने, जब तक मुझे नहीं हुआ तब तक मैं मानने को राजी नहीं हूं। जिस दिन मुझे हुआ उस दिन से मैं मानता हूं।

आपका हम सब्जेक्टिव रियलाइजेशन ले लें कि आपको पिछले जन्म का पता चला, उससे अवगत हुए, तो पुनर्जन्म पर आपको विश्वास हुआ?

विश्वास नहीं, अब यह मेरा जानना है। वह विश्वास शब्द को ही मैं उपयोग नहीं करना चाहता। मेरा मतलब समझे न आप?

यू बिलीव इन पास्ट बर्थस्।

न, न, न, बिलीव का सवाल ही नहीं है, आई नो। आई हैव कम टु नो इट। सो नाउ इट इ.ज नॉट ए बिलीफ विथ मी, इट इ.ज ए सरटेन नालेज। अगर आप विश्वास करते हैं और नहीं जानते हैं--नहीं जानते हैं, तो विश्वास होता है। अज्ञान में ही विश्वास है। ज्ञान के साथ विश्वास का कोई संबंध नहीं है। जिस दिन मुझे पता नहीं था, मैं विश्वास कर सकता था। वह विश्वास होता, वह मैंने नहीं किया।

नहीं-नहीं, मेरा सवाल यह है, आपको जब यह ज्ञान हो गया पिछले जन्म का, तो फिर ईश्वर की सत्ता से आपका विरोध क्यों है?

सत्ता से कहां विरोध है? सिर्फ विश्वास से है। आप मेरा फर्क नहीं समझ
पा रहे हैं। मैं ईश्वर के विरोध में नहीं हूं। मुझसे ज्यादा ईश्वर के पक्ष में आदमी खोजना मुश्किल है। ईश्वर पर आस्था के विरोध में हूं। मेरा कहना इसलिए विरोध में है कि आस्थावान कभी ईश्वर को जान ही नहीं सकता। मेरा डिस्टिंक्शन आप ख्याल में ले रहे हैं।

यह तो आप शब्दों की बारीकी बात कर रहे हैं?

नहीं, नहीं, बारीकी शब्दों की नहीं बता रहा हूं। बिल्कुल ही डिस्टिंक्ट अनुभव की बात है दोनों। ईश्वर पर विश्वास करने वाला आदमी... मेरा कहना है कि ईश्वर को कभी नहीं जान सकता; क्योंकि विश्वास करने वाला कुछ जान ही नहीं सकता। विश्वास करने वाला जानने की चेष्टा ही नहीं करता।

ज्ञान के बाद भी नहीं?

ज्ञान के बाद तो विश्वास का सवाल ही नहीं है। ज्ञान के बाद विश्वास का सवाल ही नहीं है।
एक मुझे घटना याद आती है, एक जर्मन विचारक अरविंद को मिलने आया। और उसने अरविंद को पूछाः डू यू बिलीव इन गॉड? अरविंद ने कहाः नो, एब्सल्यूटली नो। तो वह तो बहुत घबड़ा गया। उसने कहा कि आप ईश्वर में विश्वास नहीं करते? मैं तो यही सोच कर आया था कि ईश्वर को जानने वाले आदमी के पास जा रहा हूं। तो अरविंद ने कहा, कि तुम पूछते ही गलत हो! तुम्हें पूछना चाहिए, डू यू नो गॉड? तुम पूछते हो, डू यू बिलीव? आई नो, बट आई डोंट बिलीव।
असल में नोइंग से बिलीविंग का कोई संबंध ही नहीं है। उलटी चीजें हैं। हमेशा नॉट नोइंग में बिलीविंग आती है। जब हम नहीं जानते हैं तो बिलीव करते हैं। जब जानते हैं तो बिलीव का सवाल ही नहीं है। मैं इसमें बिलीव थोड़े ही करता हूं कि वृक्ष है। मैं इसमें बिलीव करता हूं कि भूत है। वृक्ष है, यह मैं जानता हूं। यह बात खत्म हो गई। इसमें बिलीव करने की कोई जरूरत नहीं। सूरज है, यह मैं जानता हूं। इसमें कोई बिलीव करने की जरूरत नहीं है। जितना सूरज और वृक्ष मालूम हो रहे हैं कि हैं। जिस दिन आप भीतर के अनुभव में उतरते हैं, परमात्मा इनसे बहुत ज्यादा सत्यतर है। यह सारी चीजें उसके सामने बिल्कुल ही ड्रीमलैंड मालूम होती हैं। ईश्वर विरोधी मैं नहीं हूं, धर्म विरोधी मैं नहीं हूं। मेरा कहना यह है कि धर्म पर जो आस्था का आवरण है, उसका मैं विरोधी हूं। ईश्वर पर आस्था का जो भाव है उसका मैं विरोधी हूं।

आप जो पुराने जन्म से सेक्स की बातें समझ कर अभी बोल रहे हैं, तो वह तो बहुत पुरानी होगी। अभी मैं, एक दूसरी बात यह है कि अभी आप यह माडर्न इंटरप्रिटेशन लाकर, अभी क्या करना चाहिए और कैसे रहना चाहिए यह बताते हैं। हाउ कैन यू...

समझा, समझा। असल में, असल में अनुभव कभी भी पुराना नहीं होता। मेरा मतलब समझ रहे हैं आप? अनुभव कभी भी पुराना नहीं होता। अनुभव क्योंकि आपने चाहे पिछले जन्म में सेक्स जाना हो, चाहे कल रात जाना हो, चाहे आज जाना हो।

और जब आपकी स्मृति जगती है, तो वह दो सौ वर्ष पुरानी जैसी नहीं होती। जब आपकी स्मृति जगती है, जब आप भीतर प्रवेश करते हैं, तो जो स्मृति आपकी अनुभव होती है, वह तो इतनी ही प्रेजेंट में होती है। स्मृति तो, स्मृति पास्ट की होती है। बट होती इन प्रेजेंट में ही है वह, अभी होगी, अभी होगी आपको। आज आप जब अनुभव से पीछे लौटेंगे स्मृति में, अतीत स्मृति में, तो आप उन अनुभवों को फिर से रिपीट कर रहे हैं स्मृति में जो आपके गुजर चुके हैं और आप उनको फिर से जान रहे हैं।

नहीं, इसमें ऐसा नहीं हो सकता है कि आपने सिर्फ सेक्स प्लेजर क्या है
वह पूनर्जन्म में से सीखा और समझा, और वह कैसे होना चाहिए यह अब आप इंटरप्रीट कर रहे हैं?

न-न, यह तो इंटरप्रीट ही हम करेंगे। यह तो सवाल ठीक ही है। अनुभव जब हमें होगा और जब हम बात करेंगे, तो इंटरप्रिटेशन शुरू होगा। मैंने क्या जाना, उसको तो कहने का कोई उपाय नहीं है। सिर्फ उसकी व्याख्या ही कर सकता हूं, जो भी हम जानते हैं। आपने प्रेम जाना, फिर आप किसी को समझाने गए, जब आप किसी को प्रेम के संबंध में समझाएंगे, तो आप व्याख्या ही कर रहे हैं। आप विचार ही कर रहे हैं। जो आपने जाना है, वह आपके विचार के पीछे खड़ा है; लेकिन जब आप किसी को कह रहे हैं, तब तो आप व्याख्या ही कर रहे हैं। अपने ही अनुभव की व्याख्या आप कर रहे हैं, इस भाषा में, इस स्थिति में, कि दूसरा समझ सके। जोर मेरा सिर्फ इतना है कि मेरी व्याख्या को आप अगर पकड़ लेंगे, तो आप अनुभव को उपलब्ध नहीं होते। मेरी व्याख्या अगर आपको सिर्फ इतनी प्रेरणा दे सके, इतनी उथल-पुथल दे सके कि आप भी अनुभव की दिशा में जाना शुरू करें, तो कुछ हो सकेगा। तो मेरी व्याख्या अगर आपका विश्वास का आधार बन जाती है, तो आपकी मैं हत्या कर रहा हूं, आपको मैं मारे डाल रहा हूं। क्योंकि आप इसी व्याख्या को प्रेम समझ लेंगे जो कि प्रेम नहीं है। प्रेम कुछ और ही है। व्याख्या बिल्कुल ही बात और है।

यह प्रेम और सेक्स प्लेजर है और दोनों आब्जेक्टिव और सब्जेक्टिव मिक्सचर हो जाता है, तो आप इसमें बता रहे हैं कि इस तरह से होना चाहिए, हम लोग यह सोचते नहीं हैं, यह करते ही नहीं हैं। हम तो सिर्फ ड्यूटी समझ कर सेक्स को कर लेते हैं, तो जब आप बताते हैं, तो आपका ऐसा नहीं है कि आप लोगों को गाइड कर रहे हैं?

नहीं, बिल्कुल भी नहीं। सिर्फ कम्युनिकेट कर रहा हूं जो मुझे ख्याल में है, जो मेरे अनुभव में है। गाइड बिल्कुल नहीं कर रहा हूं।

आपका अनुभव तो वह पुराना ही था?

मैं कहता हूं, अनुभव पुराना-नया होता ही नहीं। अनुभव जो है न, इसको अगर ठीक से समझेंगे, तो अनुभव कभी पुराना और नया नहीं होता, अनुभव सिर्फ अनुभव है। और जिस अनुभव से आप गुजर गए हैं, वह सदा नया है। अनुभव उसका कभी पुराना नहीं होता है; क्योंकि वह आपकी कांशसनेस का हिस्सा हो गया है। पार्ट एंड पार्सल है आपका। वह कभी पुराना नहीं होता। वह कहीं आप से अब दूर नहीं रह गया है। जो आपने जान लिया है, वह आपका हिस्सा हो गया है। वह आप ही हो। आप अपने जानने का ही जोड़ हो। वह सब का सब आपके भीतर मौजूद है, बिल्कुल इतना ही ताजा और नया, जैसे पहले क्षण में था। वह कहीं पुराना हुआ नहीं। अनुभव की खूबी यह है कि बासा नहीं होता, पुराना नहीं होता। सदा ताजा। और जब मैं कह रहा हूं आपको, तब मैं आपका गाइड नहीं हूं। और जब मैं आपको कह रहा हूं, तो इस ख्याल से नहीं कह रहा हूं कि आप मेरी बात मानें। सिर्फ इसी ख्याल से कह रहा हूं कि जो मुझे लगा है, वह मैं आपसे निवेदन कर देता हूं, कम्युनिकेट कर देता हूं और कारण उसका मेरा अपना आंतरिक है। जब भी कोई अनुभव किसी को मिल जाए, तो उसके साथ ही यह दायित्व भी मिल जाता है कि वह उसको साझीदार बना ले।

मैं यह इसलिए पूछ रहा हूं कि पुराने जमाने में यह प्रेम की बातें कम थीं। और मैरिज तो अरेंज मैरिज होती थी। और लोग ऐसे मैरिज करने के बाद भी, जो फैमिली, ज्वाइंट फैमिली से, उसमें भी दबे हुए वह कंट्रोल में रहते थे। और उसमें कुछ, बहुत से बंधन थे, सामाजिक और कुटुंबी। तो वह लोग इस तरह उसको नहीं इंजॉय कर सकते थे। और यह समझ भी नहीं सकते थे। तो आप तो वही जमाने के ढांचे में से...

यह जो, यह जो, हमारी बात है न, हां, बिल्कुल ठीक कहते हैं आप। हमारे सारे ढांचे बांधते हैं, लेकिन कोई भी अगर प्रयोग करना चाहे, तो कोई ढांचा बांधता नहीं है। आज भी हम सब एक ही समाज के ढांचे में जीते हैं, फिर भी हमारे अनुभव अलग-अलग होते हैं, और हमारे बीच भी कोई आदमी डी.एच. लारेंस का अनुभव भी करता है। सेक्स पर गहरे से गहरे प्रयोग करता है, जो साधारण आदमी नहीं करता। हमारे बीच भी, हमारे समाज में भी कोई आदमी सेक्स पर गहरे प्रयोग करता है। कोई आदमी रंगों पर गहरे प्रयोग करता है तो पेंटर हो जाता है। हम भी रंग देखते हैं, लेकिन हम सब पेंटर नहीं हैं। और शायद हम जब देखते हैं हरा रंग, तो हमें हरा रंग ही दिखाई पड़ता है। जब एक पेंटर देखता है तो हरे में पचास शेड दिखाई पड़ते हैं, पचास हरे दिखाई पड़ते हैं। उसके हरे का अनुभव हमारे हरे के अनुभव से बहुत भिन्न है। उसके हरे का बोध भी हमसे बहुत भिन्न है। उसका हरे का पैनीट्रेशन भी हमसे बहुत भिन्न है, उसके हरे की अनुभूति और स्मृति भी हमसे बहुत भिन्न है। वह जैसा हरे को जानता है, हम नहीं जानते हैं, क्योंकि हम हरे के पास से सिर्फ गुजर जाते हैं। वह हमारा जानना नहीं है। हरे में हम न कभी डूबे हैं, न कभी हम जीए हैं, न कभी हमने कोई प्रयास किया है कि हम हरे की गहरी अनुभूति में उतर जाएं। रंग से हमारा कोई वास्ता नहीं, वह कभी कोई चित्रकार उतरता है। ऐसे ही सेक्स से भी हमारा कोई वास्ता नहीं है। कभी कोई साधक उतरता है। सेक्स भी कोई साधना की तरह ले, तभी उतरता है, नहीं तो नहीं उतरता है।

भारत के धर्म-निरपेक्ष हो जाने पर क्या विचार-क्रांति में कोई मदद मिलेगी?

बिल्कुल मदद मिलेगी, बिल्कुल मदद मिलेगी।

लेकिन इससे यह भी तय है कि एक धर्म के प्रति अन्याय और दूसरे की मदद की
जा रही है।

अगर ऐसा है, अगर ऐसा है तो धर्म-निरपेक्ष राज्य पूरा नहीं है। यह धर्म-निरपेक्षता की गलती न हुई तो फिर राज्य धर्म-निरपेक्ष नहीं है। यानी मेरे हिसाब से राज्य को किसी को हिंदू-मुसलमान नहीं मानना चाहिए, अगर वह धर्म-निरपेक्ष है। उसे तो व्यक्ति के हित और सुख के लिए सोचना चाहिए। अगर एक स्त्री के हित में एक पति है, और एक पति के हित में एक स्त्री है, तो सवाल हिंदू-मुसलमान का नहीं है। यह बिल्कुल बेमानी की बात है। कानून स्त्री के लिए होना चाहिए।

तो आपकी परिभाषा में...

भारत ठीक धर्म-निरपेक्ष नहीं है। वह धर्मों को स्वीकार करके चलता है,
तो धर्म-निरपेक्ष कैसे है? वह कहता है, मुसलमान के लिए अलग नियम, हिंदू के लिए अलग नियम। रिकग्नीशन भी देने की जरूरत नहीं है। आदमी का रिकग्नीशन होना चाहिए कि यह हमारा नागरिक है, यह भी हमारा नागरिक है। हम दोनों के हित में सोचना चाहिए। नहीं, अभी हमारा मुल्क धम-निरपेक्ष नहीं हैं। धर्म-निरपेक्षता की आड़ में ढेर बेईमानी हैं। ढेर बेईमानी हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मेरा कहना आपके लिए विश्वास ही होगा। हां, मैं तो कहता हूं कि हां, लेकिन आपके लिए विश्वास ही होगा। इसलिए मेरी बात मानने की कोई जरूरत नहीं है।

नहीं, आपकी जो यह पुनर्जन्म की बात है, वह आपको अभी आपको भगवान बना देगी। जो यह पेपर में आएगी वह और लोग समझेंगे कि वह तो बहुत बड़े आदमी हैं, वह अपने पूर्वजन्म की बातें समझते हैं। उसको समझ कर इंटरप्रीट कर रहे हैं।

आप अपने पेपर में यह भी देना कि वह बड़े आदमी नहीं हैं और भगवान भी नहीं हैं। और आदमी को सावधान रहना चाहिए कि ऐसी भूल न हो। यह भी देना चाहिए।

दैट इ.ज नॉट लेफ्ट टु दि कामननेस ऑफ दि पर्सन हू रीड्स इट?

मैं लड़ाई जारी रखूंगा, कामनसेंस ही तो लड़ाई है सारी की सारी। वह लड़ाई जारी रखूंगा।

जो मत परिवर्तन में विश्वास रखते हैं ऐसे धर्म, और जो मत की स्थिरता
पर विश्वास रखते हैं ऐसे धर्म, इन दोनों में कोई ऐसा संबंध होना चाहिए, ताकि एक की आबादी न घटे और दूसरे की न बढ़ जाए, एक-दूसरे की...

इसको राज्य को चिंता नहीं करनी चाहिए, इन दोनों के विचारकों को चिंता करनी चाहिए। राज्य से कोई मतलब नहीं है।

लेकिन जब एक विचारक बेईमान हो।

तो दूसरे को बेईमान होने की तैयारी करनी चाहिए, और क्या करिएगा आप? आप... सवाल यह है, सवाल यह है कि ईसाइयत है वह कनवर्टिंग है। राज्य कहता है कि हम किसी को स्वीकार नहीं करते हैं कि कौन ईसाई है, कौन मुसलमान है। लेकिन यह हक तो हर आदमी को है कि वह अपनी बात किसी को, दूसरे को समझाए। इसको तो राज्य नहीं रोक सकता। और अगर दूसरा आदमी राजी होता है ईसाई होने को, तो राज्य नहीं रोक सकता। अगर दूसरा धर्म कहता है कि इस भांति हमारी संख्या कम होती है, तो इसका कारण तुम्हारा मत स्थिरता का सिद्धांत है--उसको तुम बदलो, तुम कनवर्ट करो। और अगर तुम समझते हो तुम्हारा सिद्धांत ठीक है, तो संख्या कम करने को राजी रहो। इसमें झगड़ा क्या है? लेकिन राज्य को बाधा देना गलत है। अगर राज्य किसी तरह रुकावट डालता है ईसाई को कि वह किसी को ईसाई बनाने से रोके, तो फिर राज्य ठीक अर्थों में धर्म-निरपेक्ष नहीं है।

तो यह जो आप संघर्ष की बात कर रहे हैं, तो अब यह और संघर्ष होगा तो यह फैमिली में ही संघर्ष होगा?

होना ही पड़ेगा, असल में होना ही पड़ेगा। फैमिली हमारी बहुत जड़ता का हिस्सा है। वहां संघर्ष जरूरी है, वहां जरूरी है। और बेटा जब बाप से लड़ना बंद कर देता है विचार के तल पर, तो समाज गतिमान नहीं होता है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वह बाप यही करता रहा है, लेकिन बेटे को डिक्टेशन देना बंद करना पड़ेगा। नहीं तो बेटा बिल्कुल आदमियत खो रहा है। उसके लिए बेटे को मैं तैयार करने की कोशिश में लगता हूं कि वह बेटा डिक्टेशन लेना बंद करे। हां, जो ठीक लगे तो ठीक है, गलत लगे तो इनकार करे।

आप तो जो यह अराजकता फैलाने की बात करते हैं, उसमें कोई यह फिलिंग्स होते हैं, और यह सब हंगामा होता है और यह मर्डरस होते हैं, ये कंट्रोल करने, बंद करने के लिए तो नही है न?

न, मेरा मनाना यह है कि यह हंगामा, यह मर्डर, यह जो ईविल है, यह बहुत दिन
तक समाज को सप्रेस करने का परिणाम है, रोकने का परिणाम है। यह अराजकता का परिणाम नहीं है। जैसे एक आदमी को हम बीस दिन खाना न दें, उपवास पर रख दें। और फिर मैं कहूं कि भई इसको खाने के लिए मुक्त करो। और वह आदमी किचन में पहुंच कर एकदम खाने पर टूट पड़े, और बर्तन तोड़ दे, और चीजें पटक दें, और खाए-- इतना खाए कि बेहोश होकर गिर जाए, तो आप कहेंगे कि यह देखो, खाने का क्या दुष्परिणाम हुआ! मैं कहूंगा, यह खाने का दुष्परिणाम बीस दिन के पीछे के उपवास का परिणाम है। जो तोड़-फोड़ होती है, वह अराजक चित्त का परिणाम नहीं है। वह अराजक चित्त के विपरीत, जो हजारों साल का परंपरागत चित्त है, उसमें जो रुकावटें लगाई थीं, उनका परिणाम है। यह होगा संक्रमण के काल में। एक ट्रांसफार्मेशन का पीरियड होगा। यह होगा।
लेकिन अगर दुनिया राजी हो गई, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे मनुष्य का चित्त
इस बात के लिए राजी हुआ कि बहुत बंधन, बहुत नियम, बहुत रूढ़ियां नहीं चाहिए, तो एकदम तोड़-फोड़ मिट जाने वाली है, क्योंकि वह उनकी प्रतिक्रिया में पैदा होती हैं, वह सीधी पैदा नहीं होती हैं। मेरी अपनी समझ यह है कि पश्चिम में जो इतने जोर से सेक्सुअलिटी बढ़ी है, वह क्रिश्चियनिटी का जिम्मा है। क्योंकि क्रिश्चियनिटी ने सेक्स के खिलाफ इतना सख्त रुख लिया उसको सिन मान लिया।

अभी तो वे सेक्स क्या होमोसेक्सुअलिटी तक पहुंचे हुए हैं, और उसको लीगल भी बना रहे हैं...

मैं भी मानता हूं कि गलत नहीं है। मैं भी मानता हूं गलत नहीं है। क्योंकि किसी आदमी को अगर होमोसेक्सुअलिटी से सुख मिलता हो, तो समाज को रोकने का हक क्या है? और अगर दो आदमी राजी हैं, तो हक क्या है किसी को?

वाय बी सो क्रिएटिव? फॉर प्रोक्रिएशन ऑर फॉर प्लेजर?

प्रकृति का तो हिसाब प्रोक्रिएशन के लिए है।

दैन होमोसेक्सुअलिटी इ.ज रांग?

न, लेकिन आदमी हर प्रकृति की चीज में विकास कर रहा है, हर प्रकृति की चीज में। हां, मैं कह रहा हूं न, मैं यह कह रहा हूं, जहां तक प्रकृति का, बायोलाजी का संबंध है, सेक्स प्रोक्रिएशन के लिए है, लेकिन आदमी ने हर चीज में कल्चर ले आया है, और लाना चाहिए, और उसने सेक्स को प्लेजर भी बनाया है। यह आदमी की खूबी है, जानवर की खूबी नहीं।

इट इ.ज नॉट आर्टीफिशियल?

आर्टीफीशियल नहीं है। क्रिएटेड नहीं है यह। एवोल्यूशन है, यह विकास है। आदमी के माइंड ने सेक्स की बायोलाजी से मुक्ति पाई है और ऊपर उठाया है सेक्स को। जानवर भी खाना खा रहा है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

जो, उसका नुकसान जिनको हो रहा है वे मुल्क की चेतना को जगाने की कोशिश करें। उसके पीछे पॉलिटिक्स है। राज्य को बाधा देने की जरूरत नहीं है।

लेकिन वह शक्ति को संचित कर लेते हैं न?

न, न, यह सवाल नहीं है। तो जैसे समझ लो कि ईसाई अगर लोगों को कनवर्ट कर रहे हैं, इसके पीछे कोई राजनीति है तो हिंदूओं को इसके लिए मुल्क को आगाह करना चाहिए कि राजनीति! लेकिन राज्य क्यों बाधा दे? और फिर राजनीति भी बुरी क्या है? सवाल यह है न, मेरा कहना यह है कि अगर ईसाई संख्या बढ़ा कर मुल्क को एक और ढंग का मुल्क बनाना चाहते हैं तो इसमें बुरा क्या है? यह हक तो हर आदमी को है कि मैं अपनी नजर से मुल्क को ढालने की कोशिश करूं।

रिलीजन बिगाड़ता है न उसमें। जैसे क्रिश्चिएनिटी में कोई साधना नहीं है, कोई विशेष चीज नहीं है, उसका विज्ञान विकसित नहीं है।

नहीं, यह तुम्हारा गलत, नहीं-नहीं, क्रियानंद बिल्कुल गलत ख्याल है। एकदम गलत ख्याल है। तुम हैरान होओगे कि क्रिश्चिएन मिस्टिक्स ने इतना काम किया है कि तुम्हारे योगी पीछे पड़ जाएं। लेकिन हम परिचित नहीं होते न, क्योंकि हम परिचित ही नहीं होते। हम तो क्रिश्चिएनिटी का मतलब समझते हैं बाइबिल। जैसे कोई समझ ले कि हिंदू धर्म का मतलब, वेद। तो वेद को पढ़ कर बेवकूफ मालूम होगा वह बिल्कुल। क्योंकि है क्या वेद में? बाइबिल तो सिर्फ ओरिजनल है। लेकिन इधर पिछले दो हजार साल में इतनी साधना की है क्रिश्चिएन मिस्टिक्स ने, जिसकी तुम कल्पना ही नहीं कर सकते कि किस तरह की साधनाएं की हैं। कितनी डीप मोनेस्ट्री.ज बनाई हैं, जहां कि अभी भी ऐसी मोनेस्ट्री.ज हैं जहां आदमी एक दफा प्रवेश करता है फिर कभी बाहर वापस नहीं लौटता, वह कभी आता ही नहीं।

वह फिर ईसा को क्यों मानते हैं? ऑर्थाडाक्स क्यों हैं?

उसके भीतर भी सेक्ट हैं जो नहीं हैं ऑर्थाडाक्स। यह तो सवाल ऐसा है न,
यह तो सवाल ऐसा है कि पूरी ईसाईयत तो ऑर्थाडाक्स होगी। उसके भीतर लोग पैदा होंगे, जैसे इकहार्ट है, पोह्म है, बिल्कुल ही अनऑर्थाडाक्स व्यक्ति हैं। और बड़े अदभुत लोग! ये सही कीमत के लोग हैं। इनको कोई दिक्कत नहीं है ईसा- विसा की। मगर होता क्या है कि एक धर्म दूसरे धर्म से परिचित ही नहीं होता न।

लेकिन क्रिश्चिएनिटी के पीछे तो ईसा खड़े हुए हैं, वे वैज्ञानिक नहीं हैं?

ईसा का बहुत विज्ञान है और ईसा बड़े महासाधकों में से एक हैं। साधारण साधक नहीं हैं ईसा। साधारण साधक नहीं है। बल्कि मेरे मानने में बुद्ध और महावीर से किंहीं मामलों में कीमती हैं। क्योंकि न केवल साधक हैं बल्कि क्रांतिकारी भी हैं। ये दोनों आदमी सिर्फ साधक हैं, क्रांति बिल्कुल भी नहीं हैं। ईसा बड़ा कीमती सिंबल का आदमी है।

वे तो मॉस के लिए केवल एक बिलिफ को ही प्रचारित करते हैं न, वे साधना
को तो प्रचारित नहीं करते।

वह ईसाईयत का धंधा है। वह ईसाईयत का धंधा है। वह ईसाईयत का धंधा है। ईसा का नहीं। तो सवाल यह है कि जो इसको बुरा मानते हों, वे जगाओ लोगों को, तुमको भी नहीं रोकेगी, उनको भी नहीं रोकेगी। यानी मेरा कहना यह है न कि समझ लो, जैसे कि मैं एक विचार फैलाता हूं, जिससे तुमको डर है कि नुकसान होगा।
तो तुम मेरे खिलाफ विचार फैलाओ, इसकी स्वतंत्रता तुमको भी है। लेकिन राज्य न मुझे रोके, न तुम्हें रोके। यह राज्य का सवाल ही नहीं है इससे। निरपेक्षता का मतलब यह होगा; नहीं तो बदमाशी है। नहीं तो जैसा कि तुम कहते

हो कि ईसाई हो सकता है पॉलिटिक्स फैलाए, तो हो सकता है हिंदू यह जो खबर फैला रहा है कि ईसाई पॉलिटिक्स फैलाए, यह बिल्कुल पॉलिटिक्स है। लेकिन यह हिंदू की है, इसलिए दिखाई नहीं पड़ती। यह जनसंघी की है, इसलिए दिखाई नहीं पड़ती। और ईसाई के साथ तुम नुकसान पहुंचा सकते हो कि तुम्हारी मैजारिटी है मुल्क में। तुम उसकी मिशनरी को रोक सकते हो, और अभी दुर्व्यवहार हुआ है, ईसाई मिशनरियों के साथ, जो बुरा है। तुम भी तो पॉलिटिक्स कर सकते हो न, कर रहे हो पूरी तरह से। हिंदू नहीं कर सकता, वह भी कर रहा है।
मेरा कहना है, न राज्य हिंदू को रोके, न ईसाई को, न जैन को, न नास्तिक को, न आस्तिक को, राज्य को इससे प्रयोजन नहीं है, राज्य का इससे संबंध नहीं है। निरपेक्षता का यह मतलब है। राज्य कहे कि जो हिंदू को ठीक लगता है, वह समझाए। जो मुसलमान को ठीक लगता है, वह समझाए। अगर मुसलमान ठीक समझ कर हिंदू मुसलमान हो जाए, तो हो जाए। इसमें राज्य को क्या लेना-देना है। सारा मुल्क मुसलमान हो जाए तो राज्य को क्या मतलब है। राज्य इस मामले में कोई प्रयोजन नहीं रखता। यह निरपेक्षता का मतलब है। लेकिन हिंदू घबड़ाता है, और हिंदू की मैजारिटी है। समझे न? तो हिंदू अपनी राजनीति चला सकता है।

जो क्रिश्चिएन रिलीजन प्रचारित हो रहा है, वह तो बिलीफ पर आधारित है?

न, न, न, तो तुम बिलीफ से लड़ो न। वह हो रहा है इसलिए, वह हो रहा है प्रचारित इसलिए कि तुम भी बिलीफ पर खड़े थे। और तुमने हिंदुस्तान को बिलीफ सिखाई थी। ईसाइयत उससे भी बढ़िया बिलीफ सिखा रहा है उसको। इसलिए वह आदमी ऐसा ही हो रहा है। तुम्हारा ही हाथ है उसमें।

अच्छा, उसकी उस प्रोपेगेंडा के पीछे उसकी शक्ति है।

यह सवाल नहीं है भाई। तो तुम लगाओ, सवाल यह है कि... तुम लगाओ, तुम पूरी शक्ति लगाओ। तुमने शूद्र के साथ जो दुर्व्यवहार किया है, वह शूद्र ईसाई हुआ जा रहा है। इसमें तुम्हारा दुर्व्यवहार कारण है। ब्राह्मण तो नहीं ईसाई हो रहा? अगर शक्ति से ही हो रहा है, तो ब्राह्मण तो ईसाई नहीं होता दिखाई पड़ता, जैन तो ईसाई नहीं होता; होता है गरीब शूद्र आदिवासी! तुमने उसके साथ दुर्व्यवहार किया है हजारों साल। और मैं मानता हूं, वह नासमझ है अगर ईसाई न हो जाए।

तो क्रिश्चिएनिटी के पीछे अभी कोई गलत छपता हो।

तो जो तुमको गलत दिखता है तो तुमको प्रचार करने का हक है, तुम प्रचार करो। करोगे क्या? यानी मेरा कहना है, इसमें राज्य का इंटरफियरेंस नहीं चाहिए कोई तल पर भी। नहीं तो जैसे कि मैं हूं अब, मैं अकेला आदमी हूं। मैं जो कह रहा हूं, सारा मुल्क यह तय करे कि भई इस आदमी को बोलने नहीं देना है, राज्य को दबाव डाले, वह मुझे रोके। आखिर अदालत में ले जाने और खींचने का प्रयोजन क्या है? प्रयोजन यह है कि किसी तरह मुझ पर प्रैसर पड़े और मैं कुछ बातें बोलना बंद करूं। राज्य को निपट इनकार करना चाहिए। अगर राज्य धर्म-निरपेक्ष है, तो इसका मतलब यह है कि हर आदमी को बोलने का हक है जब तक वह आपको कोई नुकसान नहीं पहुंचाता, आपकी जेब नहीं काटता, आपको छुरा नहीं मारता। बोलने का तो हक है। और अगर आपको गलत लगता है, तो आपको बोल कर उत्तर देने का हक है। बात खत्म होती है, इससे ज्यादा क्या सवाल है?

श्री अरविंद ने सरेंडर करने को ही कहा था न?

हां-हां, साधना इनकी भी है। सरेंडर साधारण बात नहीं है। हो ही नहीं सकता है। लोग तो समझ लेते हैं साधारण मामला है कि सरेंडर कर दिया है। ऐसा थोड़े ही है इतना आसान मामला। तुम सरेंडर हो ही नहीं सकते, जब तब अहंकार शेष है। तो इसलिए मैं सरेंडर की बात ही नहीं करता। मैं कहता हूं, अहंकार को

जाने दो, सरेंडर हो जाएगा। तुम्हें करने की जरूरत नहीं है। और बहुत ठीक से समझोगे, तो सरेंडर किया जा ही नहीं सकता है। क्योंकि जब तक तुम करने वाले हो, तो सरेंडर हो कैसे सकता है? तुम्हीं करोगे न? और कल तुम्हारा दिल बदल गया, तो वापस ले लोगे। मगर तुम तो हमेशा पीछे मौजूद हो कि हमने सरेंडर किया, अब नहीं करना है, तो खत्म। लेकिन सरेंडर वापस थोड़े ही हो सकता है। लेकिन वह तो तभी हो सकता है, जब तुम मिट गए हो। वापस लेने वाला ही नहीं है अब कोई, वापस होगा कहां?

लेकिन एक मिटना विश्वास के स्तर पर भी हो सकता है। कि सोचना छोड़ दिया, करना छोड़ दिया, वह जो डेड सरेंडर है।

नहीं, नहीं, वह कभी नहीं हो सकता। कभी नहीं हो सकता। एक हिस्सा तुम्हारे भीतर मौजूद रहेगा, जो कहेगा कि तुमने विश्वास किया है, तुम जानते नहीं हो। यह जो मेरा जिद्द है वह इसीलिए है कि यह असंभव है। यानी यह संभव ही नहीं है।
मैं एक कमरे में बैठा हूं, जहां अंधेरा है। मैं आंख बंद कर के पक्का विश्वास करता हूं कि उजाला है। लेकिन क्या यह संभव है कि मेरे मन के एक कोने से यह बात खत्म ही हो जाए कि अंधेरा नहीं है? क्योंकि जानता तो मैं अंधेरे को हूं और मान रहा हूं उजाले को। और जानना मानने से हमेशा बलवान है। कोई मानना जानने से बलवान नहीं हो सकता, यह इंपासिबल है। जानते तुम हो कि अंधेरा है, मानते तुम हो कि उजाला है। मानते रहो, मानते रहो, कितना ही मान लो, एक हिस्से में तुम जानते ही रहोगे एक कोने पर कि अंधेरा था और उजाला माना है। वह हिस्सा मिट नहीं सकता। चाहे तुम भूल भी सकते हो उसको, लेकिन वह रहेगा। और इसलिए टोटल कभी नहीं होगा सरेंडर किसी हालत में भी। टोटल तो तब होगा जब तुम जानोगे, और मिट जाओगे, जानने से मिट जाओगे। मानने से नहीं। अब तुम मिट ही गए तो सरेंडर है ही।

नहीं, जैसे अब किसी ने सिखाया सरेंडर मान्यता वाला सरेंडर सिखाया। अब साठ-सत्तर साल का जीवन निकल गया, व्यर्थ चला गया।

हां, व्यर्थ तो जाएगा ही, व्यर्थ तो जाएगा ही। जो मान कर सरेंडर करेगा, उसका तो व्यर्थ जाना ही है। वह चाहे क्रिश्चियनिटी करवाए चाहे हिंदू करवाए, चाहे मुसलमान, इसका सवाल नहीं उठता। इसलिए मेरा झगड़ा हिंदू, मुसलमान, ईसाई का नहीं है। मेरा झगड़ा तो मान कर करवाने वाला किसी से भी है। यह सवाल ही नहीं है कौन करवा रहा है।

मेरा यह कहना था कि जो विकास तो... तारीफ कर रहे हैं क्रिश्चिएनिटी वाले और...

वह तो सभी कर रहे हैं। न-न, सभी कर रहे हैं, वह तो सभी कर रहे हैं। हिंदू कैसे फैल गए राज्य की शक्ति के बिना? बौद्धों को कैसे उखाड़ दिया? और बौद्ध कैसे फैले थे? राज्य की शक्ति से यह तो सवाल ही नहीं है, इसमें कोई क्रिश्चियनिटी कर रही है, वह तो थोड़े ही सवाल है। बौद्ध फैल गए, क्योंकि राजाओं की शक्ति मिल गई। फिर हिंदुओं को राजाओं की शक्ति मिल गई, तो बौद्धों का सफाया कर दिया। जैनियों को राजाओं की शक्ति मिल गई, तो फैल गए। जब से नहीं मिली, तब से मर गए। क्रिश्चिएनिटी को मिल रही है, वह फैल रहा है। अब इसमें कसूर क्या है? यानी मेरा मतलब यह है कि बेवकूफी बिना राजाओं की शक्ति के फैलती नहीं; क्योंकि उसमें खुद की तो कोई जान नहीं होती, उसमें ताकत तो--धन की, पद की प्रतिष्ठा की। वह तो फैल जाती है। तो सभी बेवकूफियां उसी तरह फैलती हैं। इसमें ईसाई का क्या सवाल है? जो आज हिंदू बना बैठा है, उसका बापदादा किसी न किसी राजा के प्रभाव में, चक्कर में हिंदू बन गया था। और होना क्या था, अब उसका बेटा किसी दूसरे राजा के प्रभाव में ईसाई बन रहा

है, तो इसमें मैं नहीं समझता उसमें कोई भेद पड़ रहा है, बात वही की वही है, लेबल बदल रहा है बस। कभी-कभी लेबल बदलने में भी अच्छा रहता है।

तो हमको भी उसका विरोध करना चाहिए, उस शक्ति का जो कि विश्वास को प्रचारित कर रही है।

न-न, सभी शक्तियां विश्वास का प्रचार कर रही हैं। सभी धर्म, कोई कम-ज्यादा हो सकता है। सब वही कर रहे हैं। इसलिए लड़ाई किसी एक से नहीं है। लड़ाई सभी विश्वासियों से है। और ऐसी लड़ाई कभी नहीं थी, यानी जिस लड़ाई की मैं बात कर रहा हूं। हमेशा लड़ाई ऐसी थी कि एक विश्वास करने वाले वर्ग की दूसरे विश्वास करने वाले वर्ग से लड़ाई थी। मैं जिस लड़ाई की तुमसे बात कर रहा हूं, यह कोई वर्ग नहीं है, और समस्त विश्वास करने वालों से लड़ाई है। यह लड़ाई बिल्कुल ही नये ढंग का मोर्चा है, इसलिए उसमें दिक्कतें भी नये तरह की हैं। इसमें कठिनाइयां हैं। हम किसी को कनवर्ट नहीं कर रहे हैं, किसी को कह नहीं रहे कि तुम यह हो जाओ, कि तुम वह मत रह जाओ। मगर अगर उसे हमारी बात समझ में पड़ती है, तो वह न हिंदू रह जाएगा, न मुसलमान रह जाएगा। असली लड़ाई हमारी तो मुसलमान से भी है, हिंदू से भी है। एक मुसलमान अगर मेरी बात समझता है, तो वह मुसलमान नहीं रह जाएगा। और एक हिंदू मेरी बात समझता है, वह हिंदू नहीं रह जाएगा। तो मेरा तो हिंदू भी दुश्मन हो जाएगा, मुसलमान भी दुश्मन हो जाएगा। अब यह पुरानी लड़ाई ऐसी थी कि जो हिंदू को मुसलमान बना रहा था, तो कम से कम मुसलमान तो उसके साथ थे। हिंदू दुश्मन होता था, कोई फिकर नहीं थी।

राज्य की शक्ति लगती है तो साइंस का एक्सपांशन अधिक होता है, उसी प्रकार साधना प्रद्धति के लिए यदि राज्य की सत्ता का उपयोग हो तो वह ठीक नहीं है?

नहीं-नहीं, इसके लिए बिल्कुल उपयोग की जरूरत नहीं है। बिल्कुल उपयोग
की जरूरत नहीं है। साइंस का मामला बहुत भिन्न है। साइंस का मामला ऐसा है कि कोई, कोई दो तरह की साइंसें नहीं लड़ रही हैं, सारी दुनिया में साइंस एक है। चाहे अमेरिका ताकत लगाए, चाहे रूस। आज नहीं कल सब साइंस की एक ही बॉडी को ताकत मिलने वाली है। चाहे अमरीका पहुंच गया, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। आदमी चांद पर पहुंच गया। और आदमी का ज्ञान चांद पर पहुंचने वाला हो गया। कल रूस पहुंचे, परसों कोई पहुंचे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अब तो हालतें यह हुई जा रही है कि अभी एक रूस के वैज्ञानिक ने कहा कि अब हालतें यहां पहुंच गई हैं कि अब अमेरिका और रूस को साथ हुए बिना आगे साइंस विकसित नहीं होने वाली। अब कोई एक राज्य भी नहीं बढ़ा सकता, उसको इतनी बड़ी शक्ति की जरूरत पड़ गई है। लेकिन धर्म का मामला बिल्कुल उलटा है।
इधर मुसलमान बढ़ता है; उससे हिंदू को कोई फायदा नहीं, नुकसान होता है। उधर ईसाई बढ़ता है, तो हिंदू को नुकसान होता है, मुसलमान को नुकसान होता है। और इनके जो विश्वास हैं वह न तो वैज्ञानिक हैं, न विचार को बल देते हैं, बल्कि विचार को रोकते हैं। इसलिए सारी दुनिया के राज्यों को धर्म से तो छुटकारा हो जाना चाहिए। और यह भी ध्यान रहे, कि जब तक राज्य का धर्म से छुटकारा न हो, तब तक वह साइंस के ठीक साथ खड़ा नहीं होता। क्योंकि धर्म और साइंस की प्रक्रिया में विरोध है।
इंग्लैंड पिछड़ रहा है साइंस के मामले में। और उसका कुल कारण इतना है
कि इंग्लैंड एक ईसाई मुल्क है, ऑर्थाडाक्स है, और वह ऑर्थाडाक्सी उसकी जान लिए ले रही है। और वह पिछड़ गया। बुरी तरह पिछड़ गया। रूस ने पचास साल में साइंस में इतनी गति की जितनी कि कोई दूसरे मुल्क को कम से कम नहीं तो पांच सौ साल लगने चाहिए। और उसका कुल कारण इतना है कि रूस धर्म से बिल्कुल मुक्त हो गया है। वह झंझट ही खत्म कर दी उसने, तो सारी ताकत एकदम लग गई इस तरफ। वह तो हिंदुस्तान इसलिए पिछड़ा है साइंस के मामले में... ऐसा नहीं होता जब तक धर्मों से मुक्त न हो जाए।

अपने आपको जानने के लिए और शांति पाने के लिए क्या करना चाहिए? एक शिविर में आएं तो अच्छा होगा। ज्यादा विस्तार आगे...

सम्बोधि के क्षण
तीसरा प्रवचन

असुरक्षा--प्रवाह--स्वीकार

यह स्वभाव क्या? और हमारे मस्तिष्क की जो गहरी पकड़ है, वह विपरीत स्थिति में भी मौजूद रहती है। कठिनाई तो यह है, क्योंकि जब मैं किसी से कहूं कि तुम प्रयास मत करना, तो नींद आ जाएगी। तो वह कहे कि न प्रयास करने से नींद आ जाएगी, यह पक्का है? यानी अब न प्रयास करना भी उसके चित्त में प्रयास का ही एक हिस्सा है। यानी ऐसे तो वह कहता है, मैं नहीं प्रयास करूंगा। अगर पक्का हो कि नींद आ जाएगी तो मैं प्रयास नहीं करूंगा। लेकिन करने का भाव उतना का ही उतना शेष है जितना कि प्रयास करने में शेष था, उतना न करने में भी शेष है। वह कह रहा है कि पक्का है न, नींद आ जाएगी, तो मैं प्रयास नहीं करूंगा। हां, वह यही कह रहा है कि मैं नहीं करूंगा पयास, तो लग तो रहा है कि उलटी बात कह रहा है। लेकिन वह, लेकिन उसका करने वाला जो चित्त है वह अब भी इतना ही है जैसा कि कल प्रयास करने में मौजूद था, अब वह न कहने में मौजूद होगा। यही जब तक वह यह भी कह रहा है कि मैं प्रयास न करूंगा अब, तब तक भी गड़बड़ है। वह इतना ही समझ ले कि प्रयास व्यर्थ है और चुप हो जाए और बात खत्म हो जाए।
वह तो जिस स्थिति की हम बात कर रहे हैं क्योंकि वह जो दूसरी स्थिति
है। वह इस स्थिति के विपरीत नहीं है। वह इस स्थिति का पूर्ण अभाव है। ऐसा नहीं है कि जब हम कह रहे हैं कि प्रयास करने से नींद न आएगी, तो हम यह कह रहे हैं न करने से आ जाएगी। हम यह नहीं कह रहे हैं। और भाषा कठिनाई पैदा करती है। प्रयास करने से नींद न आएगी--तब हम सिर्फ इतना ही कह रहे हैं कि प्रयास करने से नींद न आएगी। कि हम यह नहीं कह रहे हैं कि वह हम नहीं कह रहे हैं प्रयास न करने से नींद आ जाएगी।
मेरे खीसे में पैसा न कम पड़ जाए। यह डर उतना ही डर है जितना कि मैं डरा रहा कि मेरा पैसा खीसे का निकल न जाए। इस फियर में फर्क नहीं है जरा भी। और इसलिए सिक्योरिटी, निगेटिव सिक्योरिटी और इन सिक्योरिटी, इन तीन शब्दों पर ध्यान देना चाहिए। असल में सिक्योरिटी और इनसिक्योरिटी से बात नहीं करनी चाहिए, नहीं तो इनसिक्योरिटी का मतलब निगेटिव सिक्योरिटी हो। हां, अगेंस्ट नहीं है वह। और इसलिए आप इनसिक्योरिटी को मैनेज नहीं कर सकते। इनसिक्योरिटी का मतलब यह है कि हम कुछ भी मैनेज नहीं कर सकते, जो है वह।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, मैं नहीं कह रहा हूं कि वह आदत की स्थिति है। क्योंकि आदत की स्थिति
तो बिना प्रयत्न के कभी आएगी ही नहीं। अगर आपने आदत की बात की, तो वह तो बिना प्रयत्न के कभी आने वाला नहीं है। आदत में तो, न आदत में तो अनिवार्य, आदत में तो अनिवार्य प्रयत्न मौजूद है।

जब हम कहते हैं, आदत, स्थिति में उसमें तो अनिवार्य प्रयत्न होगा।

न, मैं यह नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि हमारी जिंदगी के सब प्रयत्नों को समझने का फल, नया प्रयत्न नहीं। हमने जिंदगी में जो-जो प्रयत्न किए हैं, अगर हम उनको समझे और पाएं कि वह विफल हो जाते हैं, और सुरक्षा उपलब्ध नहीं होती। हमारे सारे प्रयत्नों की विफलता का बोध, नया प्रयत्न नहीं है। हमारे प्रयत्नों की सारी, सारे प्रयत्नों की विफलता अंततः हमें अप्रयत्न में, नो एफर्ट में ले जाती है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, यह मैं कह ही नहीं रहा हूं कि आप जाएं। आप गए तो, आप तो प्रयत्न करेंगे ही। जब हम पूछते हैं कि हम जाएं कैसे, तब तो प्रयत्न होगा ही।

वह प्राप्त कैसे हो?

नहीं, प्राप्त का प्रश्न ही नहीं है। न, मैं जो कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि आप जब प्राप्त की, पाने की और आदत की भाषा में सोचेंगे, तो प्रयत्न से कभी मुक्त हो नहीं सकते, क्योंकि प्रयत्न पीछे रहेगा। न, मैं तो यह कह रहा हूं कि मैंने हजार बार प्रयत्न करके सोने की कोशिश की है और हर प्रयत्न पर मैंने पाया कि प्रयत्न असफल हुआ और नींद नहीं आई। मेरी हजार प्रयत्नों कि विफलता मुझे किसी नये प्रयत्न में नहीं ले जाती, मुझे अप्रयत्न में ले जाती है। अब सवाल यह नहीं है कि अब मैं क्या करूं सोने के लिए, अब सवाल यह है कि जो भी मैंने किया उससे नींद नहीं आई। यह जो मेरा बोध है कि जो भी मैंने किया उससे नींद नहीं आई। यह मेरा बोध अब मुझे और कुछ न करने देगा नींद लाने के लिए, और ऐसी स्थिति में नींद आएगी। यानी नींद लाना मेरे प्रयत्नों की असफलता मुझे अप्रयत्न में छोड़ देगी।
तो मैंने सुरक्षा का इंतजाम किया, जिसको प्रेम किया, चाहा कि उससे जन्म भर प्रेम रहे, लेकिन पाया कि वह विदा हो गया। फूल सुबह खिला, मैंने सोचा कि जिंदगी भर खिला रहे, लेकिन कि तो सांझ कुम्हला गया। तो मैंने प्रयत्न किए कि फूल को तोड़ कर मैंने तिजोरी में बंद कर लिया ताकि वह कुम्हला न पाए, लेकिन तब मैंने पाया कि जो सांझ कुम्हलाता वह सुबह ही कुम्हला गया। तो मेरे सारे प्रयत्न जब विफल हो जाएं।
यानी मेरी अपनी दृष्टि में मेरे प्रयत्नों कीविफलता अंततः मेरे अहंकार की विफलता है कि मैं कुछ न कर पाया। और अगर इसमें पीड़ा भी रह गई थोड़ी सी कि मैं कुछ न कर पाया, तो अभी विफलता पूरी नहीं हुई है। अगर इसमें थोड़ी पीड़ा का दंश है और ऐसा लग रहा है कि शायद मैं ऐसा करता तो हो जाता, वैसा करता तो हो जाता, तो अभी मैं कुछ और करूंगा, अभी मैं करने के बाहर नहीं जा सकता। नहीं, लेकिन एक ऐसी घड़ी आती है जिंदगी में कि जब आप सब कर चुके, सब कर चुके, सब कर चुके, अब अंततः आप अचानक पाते हैं कि करने का कोई फल नहीं, सब करना निष्फल हो गया। यह टोटल, यानी अब ऐसा भी न रहा कि मुझे दुख है कि निष्फल हो गया। क्योंकि दुख का मतलब है कि सफलता की आकांक्षा अभी भी कहीं शेष है। न, अब ऐसा हो गया है कि मैंने इसे सहज जाना कि मैं पागल था, कि मैं प्रयत्न कर रहा था, यह प्रयत्न सफल हो ही नहीं सकता है। यह जान कर मैं एक शांति की अवस्था को उपलब्ध हुआ। उसकी मैंने कोशिश अलग से कुछ न की। जो कोशिश चलती थी वह कोशिश विफल हो गई।
मैं दौड़ रहा था, दौड़ते-दौड़ते थक गया और मैंने पाया कि दौड़ने से कहीं नहीं पहुंचा और मैं खड़ा हो गया। यह खड़ा होना एक तरफ से नहीं है, यह सिर्फ दौड़ने की असफलता का फल है। इस खड़े होने को भी आपने पूछा है कि आप कैसे खड़े हो गए हैं, तो प्रयत्न की भाषा शुरू हुई। तो अगर कोई आदमी खड़ा हुआ है, तो अभी दौड़ेगा। क्योंकि जिसने कोशिश करके खड़ा हुआ है उसमें भी दौड़ने की गति मौजूद थी। अभी वह थोड़ी-बहुत देर में फिर दौड़ेगा। नहीं, लेकिन जिसका दौड़ना विफल हो गया है, जो इसलिए खड़ा नहीं हुआ कि खड़े होने से सफलता मिल जाएगी, जो इसलिए खड़ा हुआ कि अब दौड़ने का कोई अर्थ न रहा। दौड़ना ही फिर व्यर्थ हो गया है। खड़े होने में कोई सार्थकता है, ऐसा नहीं, लेकिन दौड़ना व्यर्थ हो गया है, इसलिए ख.ड़े हो जाना पड़ा। यह जो खड़े हो जाने की स्थिति है इसे हम किसी भी प्रयास से नहीं ला सकते। हां, हम सब प्रयास करते रहे और सब प्रयासों में झांकते रहें कि सब प्रयास असफल हो जाते हैं, तो वह असफलता का बोध अंततः... इस असफलता के बोध को मैं वैराग्य कहता हूं। यह मेरी दृष्टि मैं वैराग्य का जो अर्थ है, वह राग की असफलता का बोध है। वैराग्य राग का विपरीत नहीं है, वह उलटा नहीं है, वह सिर्फ राग असफल हुआ इसका सम्रग बोध है। इसमें अब वह दौड़ न रही। ऐसा नहीं है कि नई दौड़ शुरू हो गई और अगर नई दौड़ शुरू होती है तो वह वैराग्य नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह भी मैं नहीं कह रहा हूं, इसे भी मैं नहीं कह रहा हूं। गुड और बैड का अगर सोचेंगे तब बात बिल्कुल बदल जाएगी। न, यह जो भीखा जी ने कहा यही एक कंडीशंस है, गुड और बैड का सवाल नहीं है। यही जीवन की अवस्था है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, यह दूसरी बात। मैं आपसे बात कर लूं एक मिनट। जब हम सोचते हैं कि क्या यह अनिवार्यरूप से अच्छी अवस्था है, तब हम सोचते हैं कि दो तरह की अवस्थाएं हो सकती हैं, अच्छी और बुरी। मेरा मानना है कि अच्छी और बुरी, ऐसी दो अवस्थाएं नहीं होती हैं। गलत और सही, गुड और बैड नहीं, राइट और रांग। राइट और रांग में सोचेंगे तो आसानी पड़ेगी। क्योंकि गुड और बैड में एक वैल्यूएशन है, राइट-रांग में वैल्यूएशन नहीं है। न, वैल्यूएशन नहीं है। वह हमें गुड और बैड से ही जोड़ते हैं, इसलिए वैल्यूएशन है। राइट और रांग का कुल मतलब इतना है कि मैं इस दरवाजे से निकला, यह गुड नहीं है। न, मेरा मतलब, मेरा मतलब यह मैं दरवाजे से निकला और मैं दीवाल से निकला, तो दीवाल से निकलने से मेरा सिर टकराया और दरवाजे से निकलने से नहीं टकराया।

गुड और बैड मे मॉरल वैल्यू रही है, राइट और रांग में मॉरल वैल्यू नहीं होती?

हां, वही कह रहा हूं, वही कह रहा हूं, तो अगर, अगर हम गुड और बैड की भाषा में सोचें, हां, तो राइट और रांग की भाषा सोचना अच्छा है, सीधा और साफ है। न, वैल्यूएशन इसीलिए है कि वह गुड और बैड हमसे भारी है, वह राइट-रांग में भी घूस जाता है। वह वैल्यूज अलग नहीं रह पाती है। असल में राइट और रांग का कुल मतलब इतना है कि मैंने दो-दो जोड़े पांच। इसको बैड नहीं कह सकते, सिर्फ रांग कह सकते हैं। यानी इसमें कोई बैड का सवाल ही नहीं है। मैंने कोई न पाप किया है, न कुछ बुरा किया है। न मैं कोई इम्मॉरल एक्ट कर लिया हूं, सिर्फ मैं गलत जोड़ा हूं। और दो-दो चार जोड़े तो गुड नहीं है यह कुछ, यह सिर्फ राइट है। राइट का मतलब है यह है कि बस, जितना जोड़ना था उतना मैंने जोड़ा और जितना नहीं जोड़ना था उतना मैंने जोड़ा। कोई मॉरल वैल्यू साथ नहीं जोड़ता हूं मैं। यह जो मैं कह रहा हूं कि जिंदगी की अगर सारे प्रयत्न विफल गए हों सुरक्षा के, सिक्योरिटी की सारी कोशिश विफल हो गई हो, तो जो स्थिति रह जाएगी वह गुड नहीं है, राइट है। राइट--मतलब वैसी जिंदगी है।

एक्सेप्टेंस।

हां, एक्सेप्टेंस आ जाएगा उसमें, एक एक्सेप्टेंस होगा। फूल सांझ कुम्हलाएगा तो मैं उसे स्वीकार करूंगा, उसी तरह जैसे सुबह उसका खिलना स्वीकार किया था। और मैं यह जानूंगा कि उसके खिलने में उसका मुरझाना छिपा था। और यह भी धन्यभाग है कि वह सुबह खिला और सांझ मुरझाया, इतना फासला भी कुछ कम नहीं है। इसके लिए मैं ग्रेटिट्यूट और अनुग्रह अनुभव करूंगा। तब उसका मुरझाना मेरे लिए पीड़ा नहीं है। बल्कि इतनी देर से मुरझाया यह मेरे लिए आनंद है। क्योंकि यह भी हो सकता था कि सुबह खिलता और मुरझाता, और यह भी हो सकता था कि खिलता ही न, यह सब संभव था, तब मैं अपनी आकांक्षा नहीं थोपूंगा। यानी जो मैं कह रहा हूं वह यह, सुबह फूल खिलता है वह सांझ मुरझाएगा। मैं अपनी आकांझा थोपता हूं कि वह कभी न मुरझाए, तब मेरी आकांक्षा और यथार्थ में तालमेल टूट जाता है।
मेरा आपसे प्रेम हुआ, अब मैं कहता हूं कि विवाह कर लूं, जिंदगी भर हम साथ रहें। यह विवाह प्रेम का सहज फल नहीं है, यह किसी और आकांक्षा का फल है। क्योंकि प्रेम से विवाह का क्या लेना-देना, प्र्रेम काफी हो सकता था, लेकिन मुझे डर है कि कल टूट जाए, परसों टूट जाए, तो कल और परसों की सुरक्षा आज कर लेनी है कि टूट न पाए। इस समाज को गवाह बना लेना है, कानून को गवाह बना लेना है कि हम यह... करते हैं कि जिंदगी भर साथ रहेंगे। प्रेम कुल इतना

कह रहा था कि अभी साथ रहना आनंदपूर्ण है और विवाह कहता है हम जिंदगी भर साथ रहें और जिंदगी भर आनंदपूर्ण ढंग से साथ रहेंगे। अब हम आकांक्षाएं थोप रहे हैं। यह आकांक्षाएं फूल को न कुम्हलाने देने की आकांक्षा है। इनका यथार्थ से तालमेल टूट गया है। अब हम एक तरह के आदमी होंग, और जिंदगी एक तरह की होगी और उसमें कभी तालमेल होने वाला नहीं है और वह दुख और वह पीड़ा, उसको मैं रांग कह रहा हूं, बैड नहीं। वह दुख और पीड़ा और मैं कहता हूं, किसी को अच्छी लग रही हो तो झेले, इसमें कुछ हर्जा भी नहीं है, कुछ पाप नहीं है। उसमें कुछ पाप नहीं है कि उसको हम कंडेम करें कि तुम गलत कर रहे हो, उसे अच्छा लग रहा है, वह झेल रहा है। लेकिन किसी को अच्छा लग नहीं सकता। क्योंकि दो और दो को पांच जोड़ लेना, एक भीतरी दंश और पीड़ा है जो कांटे की तरह चुभती रहेगी।
यह जो मैं कह रहा था प्रताप, वह मैं यह कह रहा था कि सुरक्षा की खोज है और। और यह इनका ख्याल यह था कि सुरक्षा की खोज के कारण सुरक्षा पैदा हो रही है, वह मैं नहीं मानता हूं। मेरी अपनी समझ यह है कि असुरक्षा है। वह जीवन का तथ्य है। असल में जीवित होने का लक्षण वही है। सिर्फ मृत सुरक्षित हो सकते हैं। जीवित तो कभी सुरक्षित नहीं हो सकते हैं और जितना जीवंत व्यक्तित्व होगा उतना असुरक्षित होगा। क्योंकि जितने जोर से मैं जीऊंगा उतने ही जोर से मरने की संभावना उपस्थित हो जाएगी।
... ने एक छोटा सा वाक्य लिखा है। उसने लिखा है कि मुझे सदा ऐसा लगा कि अगर जीना ही है तो ऐसे जीना चाहिए जैसे मशाल सब तरफ से जला दी गई हो। एक तरफ से नहीं जला दी गई है, सब तरफ से जला दी गई है, सब दोनों छोरों पर आग लगा दी गई है। सब तरफ से जला दी गई है। उसके किसी मित्र ने उसको कहा, लेकिन तब मशाल बड़ी जल्दी जल जाएगी। जो रात भर जल सकती थी, वह हो सकता है सांझ ही जल जाए। तो उसने कहा कि अगर ठीक से जलने का मजा लेना है तो बुझने की उतनी ही शीघ्रता की तैयारी भी कर ले। वह जो तीव्रता से जीना है उसमें तीव्रता से बुझने की... है। लेकिन मजा यह है कि जो तीव्रता से जलने का मजा ले ले, वह तीव्रता से बुझने का भी मजा ले सके, क्योंकि तीव्रता का मजा है... सवाल बुझने और जलने का नहीं है। धीरे-धीरे बुझना भी दुखद है, धीरे-धीरे जलना भी दुखद है। मरे-मरे जलना हुआ न, धीरे-धीरे जलने का मतलब और मरे-मरे मरना भी हुआ। और इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि अगर जवान आदमी मरे तो शीघ्रता से मर जाता है और नब्बे वर्ष तक जिंदा रह जाए तो फिर लंबा बहुत धीमा होगा, फिर मरना बहुत धीमा होता है। क्योंकि मर एकदम वही सकता है जो एकदम जी रहा था।
...

ज्योति तो बहुत जोर से जली थी, वह बहुत जोर से बुझ भी सकती है। वह जोर
से एक ही शक्ति का लक्षण है। मैंने कहाः आदमी नब्बे या सौ साल तक जिंदा रह जाए तो फिर उसका मरना भी क्रमिक होता है। फिर वह दस-पंद्रह साल के लंबे अरसे में फैल कर मर पाता है क्योंकि मरने की तीव्रता की क्षमता भी उसमें नहीं रह जाती।
तो सुरक्षा की खोज बहुत गहरे में जीवन का भय है। यानी हम जीना नहीं चाहते इसलिए हम सुरक्षा खोजते हैं। अगर इसे इस भाषा में समझो की सुरक्षा की खोज स्युसाइडल है तो बहुत आसानी हो जाए। इस भाषा में अगर हम सोचें तो सुरक्षा की खोज आत्महत्या का आग्रह है। जैसा मैं आज जी लिया हूं, मैं वैसा ही सदा जीने के लिए कष्ट कर लेता हूं। नहीं तो मैं कल को मरा जा रहा हूं, कल के लिए जिंदा रहने की बात नहीं। मैंने बच्चुभाई को कहा कि मैं आपको प्रेम करता हूं तो बच्चुभाई और मैं दोनों तय करते हैं कि हम कल भी प्रेम करेंगे। उसका मतलब यह हुआ कि मेरा आज कल को तय करेगा। और आज तो कल मर चुका होगा और कल को तय करेगा मरा हुआ। जीवित को तय करता रहेगा सदा। दस साल पहले मैंने किसी से तया किया था कि मैं प्रेम करूंगा और वह दस साल से मुझे प्रेम करना पड़ रहा है क्योंकि वह मैंने तय किया था। तो दस साल मेरे मर गए। दस साल मैं प्रेम नहीं कर पाया, वह पुराना आश्वासन ही मुझे पकड़े है। वह डैड जो है वह मेरे ऊपर भारी है और वह मुझे पकड़े हुए चला जा रहा है। कल का अगर हम आज इंतजाम करते हैं तो हम कल के लिए एक अर्थ में मर रहे हैं और बहुत गहरे में अर्थ भी यही है कि कल के लिए हम इंतजाम ही इसीलिए करते हैं कि हमें पक्का

भरोसा नहीं है कि कल हम इतने जीवित होंगे तो कल के लिए हम आज इंतजाम कर लेते हैं। आज ही पक्का कर लेते हैं कल के लिए कि कल कैसे जीएंगे? कैसे मिलेंगे? किस मकान में रहेंगे? कितना धन होगा? कैसे कपड़े होंगे?
यह सारा का सारा इंतजाम हमारा आत्मघाती रूख है। और दूसरी बातः इस इंतजाम से हम इंतजाम कर नहीं पाते, बड़ा मजा यह है कि इंतजाम भी हो जाता तो भी ठीक था। इंतजाम भी हो जाता तो भी ठीक था, वह हो नहीं पाता। तो जिंदगी की अड़चन, जिंदगी के जीने की अड़चन अलग बनी रहती है, वह है, और यह इंतजाम की अड़चन अलग हो जाती है। यह दोहरी अड़चन उसके ऊउपर खड़ी हो जाती है। इन दोहरी अड़चनों के बीच मनुष्य के चित्त का तनाव है, वह सारी एंग्विश इस दोहरे तनाव में है। इतना तनाव जो मनुष्य के भीतर है, वह उस तनाव का कारण ही यह है कि जिंदगी एक ढंग से बहती है और हमारी आकांक्षा जिंदगी को दूसरे ढंग पर ढालना चाहती है। बस, तब खिंचाव शुरू हो जाता है।
इनसिक्योरिटी में जीने का कुल मतलब यह है कि जिंदगी जैसी है हम उसे जीते हैं। और हमारा उसमें कोई ऊपर से थोपने का भाव ही नहीं है, क्योंकि थोप कर हमने देखा और इम असफल हुए हैं। और असफलता पूर्ण हो गई है। इसलिए मैं मानता हूं कि गलत जीने का भी एक फायदा है कि वह गलत जीने को असफल कर जाता है, विफल कर जाता है। और जो लोग अगर ठीक से, गलत ढंग से नहीं जीए हैं, ठीक से गलत ढंग से नहीं जीए हैं, तो वे बहुत कठिनाई में पड़ जाते हैं। उनको अभी विफल तो हुआ नहीं, अभी उनको ख्याल तो यह है कि कोशिश करने से नींद आ जाएगी और किसी की बात सुनने चले गए हैं, जो कहता है कि कोशिश करने से नींद न आएगी। अब वे और कठिनाई में पड़ गए हैं। यह उनको अनुभव से ही जानना होगा कि कोशिश करने से नींद नहीं आती है, प्रयत्न व्यर्थ है। और तब वह ऐसा नहीं पूछेंगे कि फिर क्या करें क्योंकि फिर क्या करना है, पूछने का मतलब है कि वह अभी प्रयत्न की भाषा उनके मन में जारी है! वह इतना समझ लेंगे कि प्रयत्न व्यर्थ है और चुपचाप उठ जाएंगे।

चुपचाप जीने से आपका क्या मतलब है?

अगर मतलब खोजेंगे तो फिर कठिनाई शुरू होती है क्योंकि चुपचाप जीने का मतलब है जिंदगी आई हुई है, जिंदगी मिली हुई है, जिंदगी जैसी आ रही है, जिंदगी जैसी आ रही है उसे वैसा ही जीएं और उतना ही जीएं। आप मेरे पास बैठे हैं, और मैं प्रीतिकर लग रहा हूं आपको, तो अच्छा है कि मेरे इस प्रीतिकर होने की जीएं। नहीं, लेकिन आप इसको जीने की फिकर नहीं करते। आप यह कहते हैं कि कल भी इसी वक्त मिलेंगे न। आप कल की फिकर कर रहे हैं। आप कह रहे हैं, परसों भी इतना ही प्रेम देंगे न? अभी जिंदगी मिली है, कोई पास खड़ा है, वह आपको प्रेम दे रहा है, आप सुख में हैं, एक आनंद का अनुभव हो रहा है। लेकिन मन आपका अपेक्षाओं में भाग गया है, जीने में नहीं है। वह कहता है, कल, परसों का भी इंतजाम कर लो।

यह स्वभाव है क्या?

नहीं, स्वभाव नहीं है। स्वभाव नहीं है। स्वभाव नहीं है। असल में हमारे मन में चारों तरफ असुरक्षा तो है ही। यह तो पक्का ही है कि कल का भरोसा नहीं है कि कल मैं आपको मिलूंगा, यह पक्का नहीं है। इसको हम पक्का कर लेना चाहते हैं। भूल इसलिए है कि जो पक्का नहीं है, उसे पक्का किया ही नहीं जा सकता, जो भूल है वह यह, भूल यह नहीं है कि स्थिति तो यह है ही। अगर मैंने आज आपको प्रेम किया है तो कल पक्का नहीं है कि कल मैं आपको प्रेम कर सकूं। और अगर इसको हमने पक्का किया तब तो बिल्कुल ही पक्का नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, असल में, असल में, जब हम इसे ऐसा पूछते हैं कि क्या यह सत्य है? क्या यह संभव है? क्या यह हो सकता है कि आदमी असुरक्षा में जी सके? तो मैं

इसे दूसरी तरफ से लेना चाहूंगा। मैं यह कहना चाहूंगा कि सुरक्षा में रहने की कोशिश सत्य हुई है? नहीं, मैं इसको इस तरह नहीं लेता। मैं इस तरह पूछना चाहता हूं कि इसको उलटा सत्य हुआ है जिसे हम कह रहे हैं? सुरक्षा की जो हमने इंतजाम और व्यवस्था की है क्या उससे जीना सत्य हुआ है? क्या हम जी पाए हैं? अगर वह असत्य हो गया है, तो यही जो मैं कह रहा हूं उसकी सत्यता है। इसकी अपनी अलग से सत्यता नहीं है। अगर आपके प्रयत्न से आप नींद नहीं ला पाए हैं, आप मुझसे पूछते हैं क्या मैं बिना कोशिश करे सो जाऊंगा, यह सत्य है? तो मैं कहता हूं, यह, यह इसकी सत्यता मत पूछें। इसकी सत्यता का सवाल ही नहीं है। क्योंकि सत्यता का सवाल सदा प्रयत्न का होता है। प्रयत्न सत्य और असत्य हो सकता है। अप्रयत्न, नो-एफर्ट में सत्य और असत्य का प्रश्न नहीं है। क्योंकि जिसे हमने किया ही नहीं, वह हो सकेगा कि नहीं हो सकेगा, हम कैसे पूछें? जो हमने किया है, उसके संबंध में रिलवेंट है यह बात पूछना कि यह होगा कि नहीं होगा? तो मैं यह कह रहा हूं कि वह जो हम कर रहे हैं क्या वह असत्य हो गया है? हमें दिखाई पड़ा है कि वह असत्य है, अगर वह असत्य दिखाई पड़ गया है, उसकी असंभावना, उसकी एब्सर्डिटी हमें दिखाई पड़ गई है।
झेन में वे कोआन का प्रयोग करते हैं। उस कोआन का जो आप पूछ रहे हैं वह, उसमें बड़ा सार्थक बात है। वह एक एब्सर्ड पहेली दे देंगे किसी को, जो सत्य ही नहीं है। जैसा उन्होंने कह दिया है कि एक साधक को कहा है कि तू इस पर ध्यान कर कि एक हाथ की ताली कैसे बजेगी? तू समझ कर आ कि एक हाथ की ताली कैसे बजेगी? अब वह ध्यान करता है तो वह सोचता है कि पैर पर हाथ को मारने से बज जाएगी। वह भागा हुआ गुरु के पास आता है, वह कहता है कि पैर पर हाथ मार देंगे। तो वह कहता है, पागल, वह पैर तो दूसरा हाथ हो गया। हम तो कहते हैं एक हाथ की ताली। उसमें दूसरे का उपाय ही नहीं है। अब तू दुबारा यह सोच कर मत आना, दूसरे की मौजूदगी का उपाय ही नहीं है। एक हाथ की ताली ही बजानी है, अकेले हाथ की, जहां दूसरा कोई भी नहीं है, अकेला हाथ ही है और ताली बजानी है। तो वह फिर सोचता है और कुछ उत्तर खोज लाता है, फिर कोई उत्तर खोज लाता है, यह चलता है। लेकिन एक क्षण में पूरे-पूरे प्राणों में उसे लगता है कि यह असत्य है, यह एक हाथ की ताली बज नहीं रही। यह जो है, असंभव है, यह एब्सर्ड है। तब वह यह भी कहने नहीं आता है कि नहीं बज सकती। क्योंकि यह कहना भी तभी तक अर्थपूर्ण है, जब तक बज सकती हो। तब वह आते ही आते गुरु के सामने हंसने लगता है या चुप बैठ जाता है। और गुरु उससे पूछता है क्या हुआ उस एक हाथ की ताली? वह चुप ही बैठा रहता है। वह यह भी नहीं कहता कि नहीं बज सकती है। क्योंकि नहीं बज सकती है, कह कर अर्थ तभी होता है कुछ जब बज सकती होती। नहीं, वह असत्य ही है।
और अगर हम जिंदगी को समझने जाएं, तो हमने जिंदगी में बहुत से कोण खड़े
कर लिए हैं। जैसे सुरक्षा। सुरक्षा एक हाथ की ताली है जो इतनी ही असत्य है जितनी एक हाथ की ताली असत्य है। सुरक्षित हम हो नहीं सकते। क्योंकि जन्म के साथ मृत्यु खड़ी है। वह हम जन्में नहीं कि मरना शुरू हो गया है। इधर जन्में नहीं कि उधर मरना शुरू हो गया है। शायद मरना और जन्मना एक ही साथ हो गया है।
वह जो पहले दिन का बच्चा पैदा हुआ है, वह भी एक दिन मर चुका है। घंटा भर
मर चुका है, घड़ी भर मर चुका है। इधर वह जी रहा है, इधर वह मर रहा है। इधर से गिने तो जन्मदिन मालूम पड़ता है, उधर से गिने तो मृत्यु की यात्रा मालूम पड़ती है। अब अगर हमने सोचा कि हम मरेंगे न, तो हम असत्य को सोच रहे हैं। तो मैं यह कह रहा हूं कि जिसे हम जिंदगी कह रहे हैं, जो हमें सत्य मालूम पड़ती है, वह बिल्कुल असत्य है। और अगर यह हमें असत्य दिखाई पड़ जाए तो वह जो दूसरा जिसकी मैं बात कर रहा हूं, उसके बाबत हम यह नहीं पूछेंगे कि वह सत्य है या असत्य है, वह है ही। उसके अलावा उपाय ही नहीं। यानी मरना मरने से बचना असत्य है तब फिर मरने के साथ ही जीना होगा। उसको सत्य पूछने का सवाल नहीं है, उपाय ही नहीं है कोई, वही है। यानी हमें ऐसे जीना होगा जहां कि मरना स्वीकृत रहेगा। हम, हमारा मन होता है कि हम कैसे स्वीकार करके जीएं मरने को, यह सत्य कहां है कि हम मरने को... कि मैं आपको प्रेम करूं और यह मान कर चलूं कि यह प्रेम का फूल भी कुम्हला सकता है, क्योंकि सब फूल कुम्हला

जाते हैं। असल में फूल ही कुम्हलाते हैं, कांटे तो बहुत देर टिक जाते हैं। तो अगर यह प्रेम है, फूल है और कांटा नहीं है, तो यह कुम्हलाएगा ही। और जितना बड़ा फूल है और जितना कोमल है और जितना सुगंधित है और जितना खिला है उतना जल्दी कुम्हला जाएगा। मन तो मानने को राजी नहीं होता, मन तो कहता है, प्र्रेम। और कुम्हलाएगा? नहीं, हम ऐसा मान कर फिर प्रेम ही नहीं कर पाएंगे। फिर सत्य ही नहीं कि हम प्रेम कर पाएं। लेकिन सत्य हो या नहीं, यह सवाल नहीं, ऐसा है।...
सच, नहीं यह सवाल नहीं है कि हम ऐसा कर पाएंगे कि नहीं कर पाएंगे, ऐसा
है ही। अब आप कुछ करें या न करें, फूल कुम्हलाएगा, यह फूल कुम्हलाएगा। आप चाहें आंख बंद करें, चाहे पीठ फेरें, चाहे भागें फूल से, चाहे कुछ भी करें। आपके कुछ भी करने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। फूल खिला है, फूल कुम्हलाएगा, और हमें यह स्वीकार करके जीना पड़ेगा। फूल को जब वह खिला है तो उसके खिले होने में हमें उसके कुम्हलाने को स्वीकार करके जीना होगा। और इस स्वीकृति में अगर जरा सी भी अस्वीकृति छिपी है, तो हम फूल के खिलने को भी न जी पाएंगे और फूल कुम्हला ही जाएगा। जो मैं कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि जिंदगी ऐसी है। आपकी स्वीकृति, अस्वीकृति से कुछ फर्क नहीं पड़ता, सिर्फ आपके जीने की कठिइयां कम और ज्यादा हो सकती हैं।

परंतु फूल के खिलने से आपको आनंद आया होगा तो यह बिल्कुल मुमकिन है कि बिल्कुल वही है, रियलिटी, यानी कि उसके कुम्हलाने से आपको दुख होगा। उससे जो आप प्रेम करेंगे तो प्रेम का वास्तव ही ऐसा है आपके दिल में ऐसा होगा कि यह प्रेम चालू रहे, उससे जो वीतराग की स्थिति कहते हैं, वह कहते हैं, प्रेम भी वह न करो तो दुख भी न होगा, पर आपकी जो है वह उससे अलग बात है?

बिल्कुल ही अलग बात है, बिल्कुल ही अलग बात है, वह तो बिल्कुल ही अलग बात है। ठीक है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

ठीक है न, ठीक है न, मैं दुखी न हूं यह नहीं कह रहा हूं। अगर मैं यह कहूं
तो गड़बड़ हो जाएगी। मैं तो यह कह रहा हूं कि जब मैंने फूल के खिलने से सुख लिया है तो मेरी दुख की पूरी तैयारी है, उसके कुम्हलाने पर मैं दुख लूंगा। और यह तो बड़ी एब्सर्ड बात होगी कि सुख मैं ले लूंगा तो दुख कौन लेगा? मैंने जब फूल के खिलने से सुख लिया है तो मैं फूल के कुम्हलाने पर दुखी होने को तैयार हूं, इसकी स्वीकृति को मैं यह कह रहा हूं। यानी हम क्या करते हैं, हम कहते हैं, या तो हम सुख को ही स्वीकार करेंगे कि फूल के खिलने से सुख मिले और तब हम उसके मुरझाने को इंकार करेंगे ताकि हमें दुख न मिले। और या फिर दूसरा उपाय जो आप कह रहे हैं वह हमारी समझ में आता है कि फिर यह कि फूल कि फिकर ही छोड़ दो, ताकि न सुख मिलेगा, न दुख मिलेगा। या तो हम हां, या तो हम सुख ही लेंगे और कुम्हलाने न देंगे फूल को, या तो मैं किसी स्त्री को प्रेम करूंगा और उसे छूटने न दूंगा अपने से, उसको कुम्हलाने न दूंगा और या फिर मैं, ...

वह असंभव ही है वह होना कि दुख न हो?

हां, वह तो असंभव है, असंभव है, वही मैं कह रहा हूं। वह अगर असंभव है तो फिर जो, जो संभव है जो है, संभव भी क्या है? कहना चाहिए जो है, है यह कि फूल खिलेगा और सुख देगा और फूल कुम्हलाएगा और दुख देगा, मैं दोनों को स्वीकार करता हूं। जिस तरह सुख को स्वीकार करता हूं, उस तरह दुख को स्वीकार करता हूं। न मेरा दुख का इंकार है, न मेरा सुख का इंकार है। जिसको हम भोगी कहते हैं वह दुख का इंकार कर रहा है और जिसको हम त्यागी कहते हैं वह सुख का इंकार कर रहा है। वे दोनों चुनाव कर रहे हैं। दोनों की च्वाइस है। और इसीलिए दोनों में बहुत बुनियादी फर्क नहीं है, वह आधा-आधा स्वीकार करते

हैं। वे कहते हैं कि हम यह, हम यह सुख के साथ डर है दुख का। तो मेरी अपनी दृष्टि में जिसको हम त्यागी कहते हैं वे भोगी से भी ज्यादा भयभीत आदमी हैं। वह उस दुख के डर के कारण जो सांझ फूल के कुम्हलाने से होगा, सुबह फूल के खिले होने को इंकार कर रहा है। सांझ के डर से कि सांझ फूल कुम्हला जाएगा, वह सुबह ही कहता है हम खिले हुए फूल को ही न देखेंगे क्योंकि सांझ कुम्हलाने का डर है। वह मेरी दृष्टि में भोगी से भी ज्यादा डरा हुआ आदमी है, उसका डर और भी भविष्य का है। यानी यह भोगी कम से कम अभी फूल का सुख ले रहा है, सांझ रोएगा। लेकिन सांझ को त्यागी खुश होगा कि हम सुबह से ही रो रहे हैं, तुम गलती किए, तुम सांझ को रो रहो हो, हम सुबह से रो रहे हैं। और अगर रोने से बचना हो तो सुबह से ही रोने की स्थिति में होना चाहिए। मगर मैं जो कह रहा हूं, मैं यह नहीं कह रहा कि...

सुख की जो खोज है वह तो यह है कि यह जो सुख है वह दुख में मिलता है। वह सुख और दुख, वह दोनों का त्याग करे। जिसमें सुख पाने, जिसमें कभी दुख होता ही नहीं।

समझ गया हूं आपकी बात। ऐसा सुख जो कभी दुख में परिणित नहीं होता, असंभव है, सत्य नहीं है। और अगर ऐसा कहीं कोई सुख है तो उसमें सुख का बोध ही नहीं हो सकेगा। सुख का बोध ही दुख की पृष्ठभूमि में है। अगर ऐसा कोई स्वास्थ्य है कहीं जहां बीमारी न होती हो, तो वहां स्वास्थ्य का कोई बोध न होगा। अगर ऐसा कहीं कोई जगत है जहां प्रकाश और अंधकार नहीं है, तो वहां प्रकाश का कोई पता न होगा। यानी उससे तो गहरे से गहरे अंधकार में भी प्रकाश का पता होगा, उतना भी वहां पता नहीं होगा। यह जो ख्याल है त्यागी का कि हम ऐसे सुख की खोज में हैं, वह असल में वह यही कह रहा है कि हम उस फूल की खोज में हैं जो खिलता तो हो लेकिन मुरझाता न हो। लेकिन प्लास्टिक का ही फूल हो सकता है फिर। फिर बिल्कुल प्लास्टिक का फूल होगा और एकदम कल... वह खिलता भी नहीं एक अर्थ में। वह तभी मुरझाने से बच सकता है जब खिलता न हो। हमारी कठिनाई क्या है कि खिलने की ही प्रक्रिया का हिस्सा है मुरझाना। खिलना और मुरझाना दो घटनाएं नहीं हैं। हां, दो घटनाएं नहीं हैं, एक ही घटना को दो तरफ से देखने के ढंग हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

एक ही... दूसरा चालू है ही, यानी कभी भी ऐसा नहीं है कि एक मौजूद है, दूसरा उसके साथ तत्काल मौजूद है ही। वह साइमलटेनियस है। वे एक ही साथ युग-पथ हैं। हां, हम घटनाएं अलग... मुश्किल हो जाती है। जन्मते हैं हम एक दिन और मरते हैं सत्तर साल बाद। तो जन्म को, मृत्यु को हम सुविधा से अलग कर लेते हैं। लेकिन सच्चाई ऐसी नहीं है। सच्चाई ऐसी है कि जिस दिन हम जन्में उस दिन से ही मरना शुरू। और जिस दिन हम मर रहे थे, उस दिन भी जन्मना जारी था। वह दोनों एकसाथ घटनाएं घट रही थी। वह एक ही साथ चल... वह दोनों पैर थे दायां- बायां। वह जो हम चल रहे थे, वह न हम बाएं पैर से चल रहे थे, न दाएं पैर से चल रहे थे। और जो हम रुक गए हैं, वह न हम दाएं पैर से रुक गए हैं, न बाएं पैर से रुक गए हैं। वे दोनों पैर चलते थे, वे दोनों पैर रुक गए हैं। वह जन्मना और मरना चलता था और जन्मना और मरना रुक गया है। मृत्यु के दिन जन्मना और मरने की जो क्रिया थी वह दोनों क्रियाएं रुक गई हैं। और जन्म के दिन वह दोनों क्रियाएं शुरू हुई थीं। ऐसा नहीं था कि यह एक क्रिया थी और वह दूसरी क्रिया थी।
जब हम जीवन को ऐसा देख पाएं तो सुख और दुख भी ऐसे ही हैं। असल में जब फूल खिला था तभी दुख भी शुरू हो गया था। मैं किसी के घर में रुकता हूं तो इधर मुझे बहुत हैरानी हुई। एक घर में मैं रुका, तो उस घर की गृहिणी, जिस दिन मैं पहूंचा तो उसने उसी दिन से वह उसने रोना शुरू कर दिया, तो मैंने पूछा कि बात क्या है? तुम दुखी क्यों हो? उसने कहाः आप जब आते हैं, तभी से मुझे आपके जाने का भय शुरू हो जाता है कि बस अब जाना है--कल चले जाएंगे, परसों

चले जाएंगे, तो जाने का भय शुरू हो जाए। तो उसके पति ने कहा कि तू बिल्कुल नासमझ है, जब जाएंगे तब जाएंगे, जब आए जब आए। पर मैंने उनको कहा कि नहीं, वह कहती तो वही ठीक है, कि आना जो है वह जाने की शुरुआत है। लेकिन उसकी भूल इसमें नहीं है। उसकी भूल इसमें है कि जब मैं चला जाता हूं तब तुझे मेरा आना भी दुबारा दिखाई पड़ता है कि नहीं? वह मुझे दिखाई नहीं पड़ता। तो फिर मैंने कहाः फिर तेरी भूल है। भूल यहां नहीं है, भूल वहां है, क्योंकि अगर आने में जाना छिपा है तो जाने में किसी न किसी गहरे अर्थ में आना छिपा होगा। वे दोनों क्रियाएं अलग नहीं हो सकतीं।
जो मैं कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि ऐसी जिंदगी है, सत्य या असत्य नहीं है, ऐसा है। और यह जो होना है, यह जो सचनेस, यह जो जिंदगी का ऐसा होना है इसकी प्रतीति है। हां, इसकी प्रतीति, इसकी प्रतीति। एक्सेप्टेंस में भी कहीं न कहीं हमारा... छिपा रहता है। वह शब्द थोड़ा अच्छा नहीं है। उसमें जब हम कहते हैं एक्सेप्टेंस, तो कहीं कोई दंश है पीछे कि हमें स्वीकार करना पड़ा है। हां, कहीं कुछ है बात उसमें। वह शब्द बहुत अच्छा नहीं है। इसलिए, इसलिए बुद्ध ने बहुत अच्छा शब्द प्रयोग किया है। उन्होंने जो शब्द प्रयोग किया है वह है तथाता। थिंग्स आर सच। न, ऐसा नहीं है कि स्वीकार करते हैं, न, ऐसा है ही। ऐसा है कि जन्म में मृत्यु छिपी है, ऐसा है कि सुख में दुख छिपा है, ऐसा है कि मिलने में बिछुड़ना छिपा है, ऐसा है। इसकी स्वीकृति और अस्वीकृति का भी जिम्मा हम पर कहां है? स्वीकार तो हम तब करें जब हम अस्वीकार कर सकते होते। यानी इसमें स्वीकार में भी कहीं हम कुछ कर रहे हैं, वह गलती हो जाएगी। नहीं, कुछ करने का उपाय ही नहीं है, ऐसा है और ऐसे होने का जो बोध हमें घेर ले वह एक्सेप्टेंस है। वह बहुत गहरे में एक्सेप्टेंस है, किया गया नहीं, हुआ, दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। दूसरा रास्ता ही नहीं है। ऐसी स्थिति में सुरक्षा-असुरक्षा, सुख और दुख, जन्म और मृत्यु, इन्हें हम अलग-अलग नहीं तोड़ते। ये सब इकट्ठी हो जाती हैं।
और हमारी जिंदगी का सारा कष्ट ही यह है कि हम सब चीजों को तोड़-तोड़ कर देखते हैं और दो हिस्से कर लेते हैं। जो दो हिस्से जिंदगी में एक हैं उन्हें हम विचार में दो कर लेते है, और इसलिए विचार जिंदगी के करीब कभी नहीं पहुंच पाता। वह पहुंच ही नहीं सकता। उसकी सारी उपद्रव यह है वह चीजों को दो हिस्सों में तोड़ लेता है। चीजें दो हिस्सों में टूटी हुई नहीं हैं, और विचार में सदा टूट कर आती है। सुख अलग आता है, दुख अलग आता है। मित्रता अलग आती है, शत्रुता अलग आती है। अंधेरा अलग आता है, प्रकाश अलग आता है। विचार दो खंड कर लेता है। और इसलिए विचार में जीने वाला खंडित जीएगा कि अखंड नहीं जी सकता। और इसलिए जो आप कहते हैं... कि इंटेलेक्चुअली समझ में आ जाता है। नहीं, इंटेलेक्चुअली जो समझ में आता है, वह बड़ा ही खतरनाक है। क्योंकि इंटेलेक्चुअली समझ में ही तब आता है जब वह दो में तोड़ लेता है। इसलिए इंटेलेक्चुअल समझ, नासमझी से भी खतरनाक है।

उससे ही मैं कहता था कि हम समझ लेते हैं कि नींद नहीं आती है, इतने प्रयत्नों के बाद भी, तो आप कहते हैं कि बिना प्रयत्न की स्थिति...

मैं यह नहीं कह रहा हूं। हमारी कठिनाई क्या है? न, न, वही, वही तो वह कह रहे हैं, वही वह कह रहे हैं, सवाल फर्क नहीं हुआ। वही... जी कह रहे हैं, वह यह कह रहे हैं कि आदमी कुछ न कुछ प्रयत्न तो करता ही रहेगा। नहीं-नहीं, हां, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि प्रयत्न छोड़ दे, अगर मैं ऐसा कहूं तो मैं तथाता की बात नहीं कर रहा हूं फिर। मैं अगर ऐसा कहूं कि आदमी प्रयत्न छोड़ दे, ऐसा मैं नहीं कह रहा हूं। क्योंकि प्रयत्न और अप्रयत्न फिर उसी बड़े डवेलिज्म के दो हिस्से हैं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि प्रयत्न छोड़ दें। मैं यह कह रहा हूंं कि उसे यह समझ में अगर आ जाए कि प्रयत्न कुछ भी नहीं लाता है, तो वह अगर प्रयत्न भी करेगा तो भी फिर लाने की आकांक्षा में नहीं करेगा। और अगर नहीं आएगा तो दुख नहीं भोगेगा क्योंकि वह जानेगा कि प्रयत्न नहीं लाता है। मैं यह कह रहा हूं कि प्रयत्न वह छोड़ दे, प्रयत्न जारी रहेगा। वह भी जीवन का हिस्सा है, वह भी जीवन का हिस्सा है। लेकिन तब प्रयत्न की

असफलता भी स्वीकृत है, वह भी स्वीकृत है, वह भी स्वीकृत है। और उन चीजों पर प्रयत्न की असफलता पूरी तरह स्वीकृत है जो जीवंत है। जैसे यह तो हो सकता है कि प्रयत्न से मैं धन कमा लाऊं, यह हो सकता है। क्योंकि धन बिल्कुल मरी हुई चीज है। और इसलिए प्रयत्न करने वाले लोग अक्सर धन की दिशा में चले जाते हैं। क्योंकि... हां, वे, मैं जो यह कह रहा हूं कि प्रयत्न की दिशा में जाने वाला चित्त अक्सर धन की दिशा में चला जाता है, क्योंकि धन प्रयत्न से आ सकता है। एकदम मरी हुई चीज है। लेकिन प्रयत्न अगर प्रेम की दिशा में चला जाए, तो मुश्किल में पड़ जाता है, क्योंकि बहुत जीवंत चीज है।
अगर मैं प्रेम की खोज में निकल पडूं कि मैं प्रेम पाकर रहूंगा, तो मैं मुश्किल में पड़ जाऊंगा। अगर मैं धन की खोज में निकलूं, तो सफल हो भी सकता हूं। सफल हो भी सकता हूं क्योंकि धन मरी से मरी चीज है।

आप क्यों ऐसा कहते हैं--धन मरी हुई चीज है?

मेरा मतलब, मेरा मतलब यह है कि धन मरी चीज का मतलब यह है कि तिजोरी में बंद की जा सकती है, मुट्ठी में बंद की जा सकती है, जमीन में गड़ाई जा सकती है, मरती नहीं।... जिंदा चीज को तिजोरी में बंद करो, मुट्ठी में बंद करो, जमीन में गड़ाओ तो मर जाएगी। यानी मेरा मतलब यह है कि धन जो है, धन जो है, वह दी गई वैल्यू है। रुपये को आप मार नहीं सकते। मरना बहुत मुश्किल है रुपये को, क्योंकि रुपये में वस्तुतः कोई जीवंत वैल्यू नहीं है, हमने मिल कर वैल्यू दे दी है, दी गई वैल्यू है। प्रेम में एक जीवंत वैल्यू है, हमारी दी गई वैल्यू नहीं है। यानी प्रेम का कोई हमने सिक्का पैदा नहीं कर लिया है, प्रेम जीवन से ही आ रहा है। प्रेम क्योंकि जीवन से ही आ रहा है, वह जीवन की जड़ों से ही आता है, वह कभी खिलता है, फैलता है और इसलिए हवा के तूफान उसको डराते भी हैं। सूरज की गर्मी से वह भयभीत भी हो जाता है। कोई उसे तोड़ भी लेना चाहता है। अब वह सब भय वहां खड़े होते हैं। तो आदमी ने जीवन की चीजों में जब पाया कि प्रयत्न से बहुत मुश्किल है उनको पाना, तो उसने ऐसी चीजें ईजाद कर ली हैं जो प्रयत्न से पाई जा सकती हैं। लेकिन उनसे तृप्ति नहीं होती। क्योंकि वह धन इक्ट्ठा करके फिर धन से भी प्रेम ही खरीदने जाता है। उनसे तृप्ति नहीं होती, क्योंकि मुर्दा चीज तृप्ति नहीं नहीं दे सकती।

धन की जो वैल्यू है वह एक सिंबालिक वैल्यू है?

सिंबालिक का मतलब ही यह होता है, सिंबालिक का मतलब ही यह होता है कि डाली गई है। प्रेम की कोई सिंबालिक वैल्यू नहीं है। न, सिंबालिक वैल्यू नहीं है, आपने डाली हुई है।

प्रेम का भी कोई मीनिंग है तुम्हारा?

न, न, मीनिंग बहुत अलग बात है। मीनिंग बहुत अलग बात है। रुपये में मीनिंग बिल्कुल नहीं है सिर्फ सिंबालिक वैल्यू है। सिंबालिक वैल्यू है। यानी हम कहते हैं कि यह एक रुपये का नोट है और हम पचास आदमी कहें कि एक रुपये का नोट है, कल हम... इंकार करे दें, तो यह एक रुपये का नोट नहीं रह जाएगा। लेकिन प्रेम को आप कल इंकार नहीं कर सकते हैं। आपके बस की बात नहीं है इंकार करना और थोपना। यानी मैं यह कह रहा हूं कि एक रुपये का नोट है यह हमारी स्वीकृति है, तो हम इसको एक रुपये का नोट कहते हैं लेकिन प्रेम आपकी स्वीकृति पर निर्भर नहीं है। क्या आप इसको प्रेम कहते हैं इसलिए प्रेम है? यह प्रेम है इसलिए आपको प्रेम कहना पड़ता है, यह रुपया नहीं है।... आप सोचा करें।

हम सबसे प्रेम करें, वे हमसे प्रेम करें, या न करें, वह प्रेम कैसे मुरझा जाएगा?

आप जब भी कहें कि हम करें, तो आप अभिनय ही कर सकते हैं। आप अभिनय ही कर सकते हैं। प्रेम का अभिनय कभी नहीं मुरझाएगा, क्योंकि वह सिंबालिक वैल्यू है। जो मैं कह रहा हूं वह रुपये की तरह है। अगर प्रेम का अभिनय करते हो, वह कभी नहीं मुरझाएगा। मुरझाने का कोई सवाल ही नहीं है, क्योंकि वह कभी खिला ही नहीं। वह प्लास्टिक का फूल है जो हमने बनाया था, वह खिला-विला नहीं था, कभी कहीं से आया नहीं था, जोड़ा गया था। कंस्ट्रक्टिड है, क्रिएटिड नहीं है, तो वह नहीं मुरझाएगा। आप जिंदगी भर कर सकते हैं। इसलिए मनुष्यता को प्रेम करना बहुत आसान है, एक मनुष्य को प्रेम करना बहुत मुश्किल है। क्योंकि मनुष्यता कहीं भी नहीं है। इसलिए मजे से आप अभिनय कर सकते हैं कि मैं मनुष्यता को प्रेम करता हूं, मैं सारे जगत को प्रेम करता हूं, वसुधेवकुटुम्भकम, सारी वसुधा मेरी कुटुम्भ है। और एक पड़ोसी को कुटुंभ में बनाना बहुत मुश्किल मामला है, क्योंकि जिंदा आदमी है। वसुधा तो कहीं है नहीं, उसका आप अभिनय कर सकते हैं।
तो हमने अभिनय के वैल्यूज पैदा किए हैं और वह बचाव है जिंदगी के। प्रेम तो करना पड़ेगा एक जीवंत आदमी को। और जीवंत आदमी को प्रेम करना बहुत कठिन है, क्योंकि वह हजार बाधाएं भी खड़ी करता है। प्रेम लेने में भी बाधा है, देना तो मामला दूसरा है। अगर मैं आपके द्वार पर प्रेम देने आऊं, तो भी आप स्वीकार करेंगे, यह भी कहां पक्का है। वही फिर आप मेरा स्वीकार ही कर लें यह थोड़े ही है कि आपसे मैं कहूं कि देने की फिकर मत करिए, सिर्फ मेरा प्रेम ले लीजिए। यह जरूरी नहीं है कि आप लेंगे। आप कह सकते हैं, जाइए, मुझे नहीं चाहिए। कैसे चले आए हो बिना पूछे प्रेम देने! लेकिन मनुष्यता को दिया जा सकता है, क्योंकि मनुष्यता कहीं भी नहीं है। और मनुष्यता के प्रेम का अभिनय किया जा सकता है। इसीलिए जो एक-एक आदमी के प्रेम से भाग गए, वे सारे जगत के प्रेम की बातें करते रहे हैं। संन्यासी हो, भाग गया। एक आदमी को प्रेम करने से डर गया है, क्योंकि प्रेम बड़ी जोखिम है और प्रेम बड़ा उपद्रव है, और प्रेम बड़ा संकट है। सभी जिंदगी की चीजों में वह बात छिपी है। वह एक से तो भाग गया है प्रेम करके लेकिन वह सबसे प्रेम कर रहा है। सबके साथ प्रेम में कोई जोखिम नहीं है क्योंकि सबके साथ... न टूटने का डर है, वह जो आप कहते हैं ठीक कहते हैं। न टूटने का डर है, न कुम्हलाने का डर है। लेकिन ध्यान रखना यह है कि वह कुम्हलाने का डर इसीलिए नहीं है कि फूल खिला ही नहीं है, नहीं तो और कोई उपाय नहीं है। अगर कुम्हलाने से बचना है तो खिलने से बचना पड़ेगा और बीच में दोनों के जो है वह सिंबालिक वैल्यू है, वह डाली गई वैल्यू है। वह हमारी अपनी डाली हुई है, वह अभिनय का हिस्सा है। और बहुत सुखद है प्रेम का अभिनय करना। प्रेम करना तो दुखद भी हो सकता है। प्रेम में दुख आएगा ही। प्रेम की अपनी सफरिंग होगी। और शायद इतनी सफरिंग किसी और चीज की नहीं होती। प्रेम का आनंद चूंकि गहरा है इसलिए पीड़ा भी गहरी होगी। वह हमेशा अनुपात में होती है।

यह अगर एक्सेप्ट कर लें, जब हंसी का वक्त आएगा जी भर कर हंस लें और होने का वक्त तो मन भर कर रो लें।

नहीं मैं कहां कह रहा हूं। मैं यही कह रहा हूं, मैं यही कह रहा हूं कि
जो आए उसको पूरी तरह जी लें। न जीने की... लेकिन अगर यह भी आपका कंसेप्ट है। न, उतना ही सब कर लेने की जरूरत है। यह भी मेरी धारणा और फिलासफी है कि जब रोने का वक्त आएगा तब मैं पूरा रो लूंगा और जब हंसने का वक्त आएगा तब मैं पूरा हंस लूंगा। अगर यह मेरी फिलासफी है तो मैं न पूरा रो पाऊंगा और न पूरा हंस पाऊंगा। यह मेरी जिंदगी होना चाहिए। जिंदगी का मतलब यह है कि तीसरा कोई उपाय ही नहीं है, जब रोने का वक्त आएगा तो रोऊंगा, इसमें रोने का सवाल क्या है।
मैं पीछे कह रहा था, एक झेन फकीर मरा, उसका शिष्य जो बहुत प्रसिद्ध था, गुरु से भी ज्यादा प्रसिद्ध, वह दरवाजे पर बैठ कर रो रहा है मंदिर के। और लाखों लोग आए हैं, तो वे बहुत बेचैनी में पड़ गए हैं, क्योंकि उसको वे समझते थे कि यह ज्ञान को उपलब्ध हो गया। और यह रो रहा है! तो जो निकटतम थे

उन्होंने आकर कहा कि आप ऐसा मत करिए, इसका बड़ा बुरा असर पड़ेगा। हम लोग तो यही सोचते थे कि आप तो ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं और आप रो रहे हैं? तो उसने कहाः ज्ञान ने कब कहा कि रोओ मत। मुझे पता नहीं ऐसे ज्ञान का। तो उन्होंने कहा कि लेकिन आप तो कहते थे कि आत्मा अमर है, फिर अब रोना क्या? उसने कहाः मैं अब कब कह रहा हूं कि रोकर कि आत्मा मर गई है। लेकिन क्या मुझे रोने का भी हक नहीं? तो फिर किसलिए रो रहे हो?
उसने कहा कि मुझे रोना आ रहा है इसलिए रो रहा हूं। क्या रोने के लिए भी कारण चाहिए? कि मुझे पक्का कारण मिल जाए तब मैं रोऊं? न, मुझे रोना आ रहा है तो मैं रो रहा हूं। और मुझे पीड़ा हो रही है तो मैं पीड़ा झेल रहा हूं। और फिर जिसको प्रेम किया था, उसकी विदा में मैं नहीं रोऊंगा तो कौन रोएगा? और मैं उसकी आत्मा के लिए नहीं रो रहा--आत्मा की आत्मा जाने। वह शरीर भी बहुत प्यारा था और वैसा शरीर अब दुबारा नहीं होगा। और अभी थोड़ी देर में हम इसे जला आएंगे। लेकिन मैंने उनसे प्रेम का आनंद लिया था, अब प्रेम विदा हो गया है, तो अब उसकी काली छाया कौन भोगेगा? तुम? मुझे भोगनी पड़ेगी। लेकिन तुम यह मत सोचना कि मैं दुखी हूं। असल में अगर हम बहुत ख्याल से देखें तो खुद दुख में दुख नहीं है। दुख के अस्वीकार में ही दुख है। स्वयं दुख में क्या दुख हो सकता है। मैं रो रहा हूं, यह उतना ही रिलैक्सिंग हो सकता है जितना हंसना भी न हुआ हो। स्वयं दुख में कोई दुख नहीं है। और दुख का अपना सुख है, सुख का अपना दुख है। लेकिन हम स्वीकार नहीं करते। सुख को हम स्वीकार कर लेते हैं इसलिए दुख नहीं मालूम पड़ता। और दुख को हम अस्वीकार करते हैं इसलिए दुख मालूम पड़ रहा है। वह जो अस्वीकृति है, वह दंश ले आती है। लेकिन अगर जीवन स्वीकृत है...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

स्वीकार करे लें तो सुख मिल सकता है। लेकिन जब तक हम चुनाव कर रहे हैं;
हम कहते हैं, यह हां और यह नहीं, तब तक हम पूरी जिंदगी को जीने के लिए राजी नहीं है। हम कहते हैं, हम जिंदगी में चुनाव करेंगे। इतनी जिंदगी को जीएंगे, इतनी जिंदगी को इंकार करेंगे। इसलिए मेरा कहना है कि टोटल की स्वीकृति नहीं है। और जहां समग्र की स्वीकृति नहीं है, वहां हम कभी समग्र को उपलब्ध भी नहीं हो सकते, और समग्र के साथ भी पूरे नहीं हो सकते। वहां हम खंड-खंड... और जब समग्र की स्वीकृति बाहर न होगी तो हमारे भीतर भी खंड हो जाएंगे। इसको ध्यान में रखना जरूरी है। अगर मैंने कहा कि मुझे प्रकाश स्वीकार है अंधेरा स्वीकार नहीं है, तो ऐसा नहीं है कि बाहर की पृथ्वी पर जहां प्रकाश होगा वह मुझे स्वीकृत होगी और अंधकार होगा उस... । मेरे घर में भी दो हिस्से हो जाएंगे, तो मेरे घर में भी जो हिस्सा अंधेरे में पड़ जाता होगा वह अस्वीकार हो जाएगा और जो प्रकाश में पड़ता होगा वह स्वीकृत हो जाएगा। मेरे शरीर में भी दो हिस्से हो जाएंगे, जहां अंधकार पड़ता होगा अस्वीकार हो जाएगा। मेरी आत्मा में भी दो हिस्से हो जाएंगे, जहां अंधकार पड़ता होगा अस्वीकृत हो जाएगा जहां प्रकाश पड़ता होगा... तो मैं सारे जगत को आरी से लेकर दो में काट दूंगा। उसमें मैं भी कटूंगा, उसमें मैं नहीं बच सकता। क्योंकि सारे जगत का बहुत छोटा सा रूप मैं भी हूं। उसमें मैं भी दो हिस्सों में कट जाऊंगा। वह जो मेरा कटा हुआ हिस्सा है वह तड़फेगा, वह चिल्लाएगा, उसे दबा कर रखना पड़ेगा, उसे मिटा कर रखना पड़े, मिट सकता नहीं, क्योंकि वह मैं ही हूं। उसकी छाती पर बैठे रहना पड़ेगा कि कहीं वह निकल कर बाहर न आ जाए तो मैं एक उपद्रव में पड़ जाऊंगा। जीवन एक उपद्रव बन जाएगा। बन गया है क्योंकि हम उसे पूरा स्वीकार करने को राजी नहीं हैं।

हम स्वीकार हमेशा करते हैं। हम झूठ बोलते हैं जब हम कहते हैं कि हम स्वीकार नहीं कर रहे, मतलब...

नहीं, नहीं, एक्सेप्ट करना पड़ता है। इसमें ही फर्क हम... हमारे शब्दों में सारी कठिनाई जो है वह यह है, आप जो कहते हैं कि सी ड.ज एक्सेप्ट, तो

एक्सेप्टेंस नहीं है। हमें स्वीकार करना पड़ता है। क्योंकि जो है वह है हमारे अस्वीकार से वह मिटता नहीं। लेकिन हमें स्वीकार करना पड़ता है, जब करना पड़ता है तो दंश आ जाता है, तो पीड़ा आ जाती है। पीड़ा जो है वह हमारे स्वीकार करने की चेष्टा में है। जैसे कि आज मां मर गई है, तो कोई कह रहा है कि शरीर कितने वक्त निकलेगा? मां शरीर थी, इसे हमने जिंदगी भर स्वीकार न किया। मां को तो हम बिल्कुल आत्मा ही मान कर चल रहे हैं। उसे शरीर मान कर चलना तो बहुत मुश्किल है।
तो जिंदगी भर अस्वीकार किया कि मां शरीर थी। पत्नी शरीर हो सकती है, मां तो शरीर होती नहीं। लेकिन मां शरीर है, मां भी शरीर है। और भी कुछ होगी, शरीर भी है ही। पर उसका शरीर होना हमने कभी स्वीकार नहीं किया था, वह मरने पर ही इन्हें प्रकट होगा। क्योंकि तब कुछ उपाय न रह जाएगा और। हम स्वीकार करते हैं, करना पड़ता है, लेकिन यह मैं नहीं कह रहा हूं कि करना पड़े। मैं यह कह रहा हूं कि ऐसा करना पड़े, मैं यह कह रहा हूं कि मौका ही क्यों आए कि करना पड़े, हम सदा स्वीकार में ही जीएं तो करना पड़ने का कोई सवाल ही नहीं आता, तब ऐसा न होगा कि मां आज मर गई है। न, तब मुझे बहुत दिन पहले से लगना शुरू होता है कि मां मर रही है। और तब मां मर रही है ऐसा मैंने बहुत दिनों से जाना होता और तब मैं इस ढंग से जीया होता कि मां मर रही है लेकिन मैं बिल्कुल नहीं जीया। अभी एक घंटे पहले तक मां नहीं मरी थी, तक तक मैं मान कर चल रहा था कि मां जिंदा है। और जो जिंदा के साथ व्यवहार करना चाहिए, वह कर रहा था। अब मां मर गई है, तो वह सब व्यवहार मैंने बदल दिया है। हो सकता है घंटे भर पहले धन के लिए उससे लड़ रहा था और घंटे भर पहले पत्नी के लिए उससे लड़ रहा था और घंटे भर पहले उसको घर से निकाल देने के लिए तैयार था, और घंटे भर बाद छाती पीट कर रो रहा हूं। नहीं, लेकिन अगर स्वीकृति पूरी होती तो मैं रोज ही जानता कि मां मर रही है।
मैंने, ये, ये दो हिस्से न होते, तब ऐसे कि एक दिन मां जिंदा थी और एक दिन मर गई, ऐसा हिस्सा करना मुश्किल है। ऐसा मैं रोज जानता। और जब मां रोज मर रही हो, तब शायद मां से लड़ना बहुत मुश्किल हो जाए। लड़ने की सुविधा बन गई, क्योंकि मैंने मां कभी मरेगी, अभी जिंदा है।
अभी एक मेरे परिचित थे एक मित्र। उनकी कोई पांच-छह साल पहले शादी हुई। प्रोफेसर थे यूनिवर्सिटी में। और लड़की भी प्रोफेसर थी। कोई चार-पांच साल ही साथ थे। तो शादी जब हुई तब भी वे मेरे पास आए थे कि मैं परेशानी में पड़ गया हूं, क्योंकि वे हिंदू और ब्राह्मण और वह पारसी थी लड़की। तो पिता राजी नहीं थे। बहुत पुराना ऑर्थाडाक्स परिवार था। तो मैंने उनसे यह कहा कि तुम यह ठीक से समझ लेना कि तुम लड़की से शादी कर रहे हो, कहीं पिता के विरोध से तो शादी नहीं कर रहो हो, इतना भर सोच लेना। नहीं तो तुम पीछे बहुत मुश्किल में पड़ जाओगे। नहीं, उन्होंने कहा, आप क्या बात करते हैं। पिता के विरोध से क्या लेना-देना है? मुझे तो, उस लड़की के बिना मैं जी नहीं सकता। लड़की के मां-बाप का भी विरोध था। मैंने उस लड़की को भी कहा, वे दोनों ही मुझसे परिचित हैं, उससे भी मैंने कहा कि तू लड़के से शादी कर रही है न, अपने मां- बाप के विरोध से तो नहीं? उसने कहाः आप कैसी बात करते हैं, मां-बाप से विरोध का इससे क्या लेना-देना?
और शादी के दो महीने बाद ही बात साफ हो गई। क्योंकि वह शादी के बाद तो विरोध खतम हो गया, कोई मतलब न रहा विरोध का। जैसे ही विरोध समाप्त हुआ वैसे ही उन दोनों को पता चला कि वे तो बहुत दूर हैं, कहीं पास नहीं हैं। वे तो उन दोनों के खिंचाव में, धक्के में, रेस्सिटेंस में, रिबेलियन में वे पास थे। वह सब खतम हो गया, तो वे दूर होने शुरू हो गए। और एक साल भर बाद एकदम फासले पर हो गए। और वह इतना कठिन हो गया जीना कि उस लड़के ने शराब पीना शुरू कर दिया और कुछ भी करना शुरू कर किया, और पांच साल बाद मर ही गया, हार्ट अटेक से मरा, पूरा स्वस्थ आदमी था। जब वह मरा उसके पहले उसकी पत्नी ने उसने मुझसे न मालूम कितनी दफा कहा कि हम तलाक करें कि क्या करें कि क्या न करें? उसकी पत्नी एकदफा मुझसे कह गई कि हम दो में से कोई एक मर जाए तो अच्छा है। फिर वह मर गया। जब वह मर गया तो वह पत्नी इतनी आई रोई, इतना शोरगुल मचाया।

मैंने कहाः तू किसलिए रोती है? तू जो चाहती थी वह हो गया। तू रोती किसलिए है, तूझे खुश होना चाहिए। तो एकदम चौंकी... आप क्या कहते हैं? मैंने कहा कि मैं वही कहता हूं कि तूने मुझसे खुद कहा था कि ये मर जाए तो अच्छा है। उसने कहाः वह मैंने क्रोध में कह दिया होगा। मैंने कहाः अभी तू जो रही है, यह दुख में रो रही होगी, कल यह दुख चला जाएगा, फिर?
वह क्रोध में था, वह क्रोध में चला गया। यह कल दुख में चला जाएगा। उसने कहाः यह कभी नहीं जा सकता दुख मेरा। कि हम सदा ही ऐसा सोचते हैं, हम सोचते हैं, प्रेम कभी नहीं जा सकता, वह भी चला जाता है। हम सोचते हैं, दुख नहीं जा सकता, वह भी चला जाता है। हम सोचते हैं, सुख नहीं जा सकता, वह भी चला जाता है। उसने कहाः कभी नहीं जा सकता, अब जिंदगी भर इस दुख में दुखी रहूंगा। तो ठीक है, लेकिन कभी याद रखना इस बात को।
यदि तू कह ले, कहने लगे कि वह मैंने दुख में कह दिया, तब फिर बड़ा मुश्किल है कि तू कभी बोली है कि नहीं, कभी तू क्रोध में बोलती है, कभी तू प्रेम में बोलती है। जब प्रेम में हम बोलते हैं, तो हम कहते हैं, हम जिंदगी भर साथ रहेंगे, सच में हम प्रेम में बोल रहे हैं? दो दिन बाद जब प्रेम नहीं रहेगा, तो हम कहेंगे, वह प्रेम में बोल दिया था, उसमें कोई मतलब न रहा। और हम भी कभी बोले हैं। उसने कहा कि नहीं, यही मैं खुद बोल रही हूं। आप कैसी बातें कर रहे हैं? मेरे पति मर गए हैं और आप इस तरह की बातें कर रहे हैं, मैं इतनी दुखी हूं।

तो शाश्वत क्या होगा?

शाश्वत कुछ भी नहीं है। परिवर्तन ही शाश्वत है। शाश्वत की आकांक्षा
ही हमारा भ्रम है। पता नहीं कि छुटकारा हो। मैं कहता नहीं कि छुटकारा हो, क्योंकि यह छुटकारे की बात भी हमारे किसी दुख के क्षण में हो जाती है। जब हम आनंद के क्षण में होते हैं तब हम जोर से पकड़ लेना चाहते हैं। छुटकारा- वुटकारा बिल्कुल नहीं चाहते। विषाद के क्षण में छुटकारा बोलने लगते हैं। जब विषाद का क्षण होता है, हम कहते हैं, छुटकारा कैसे हो? असफलता का क्षण होता है, कहते हैं, छुटकारा हो कैसे हो? सफलता के क्षण में, आनंद के क्षण में हम कहते हैं, कैसे सदा बंधे रहे, छुटकारा कभी न हो। नहीं, मैं यह कह रहा हूं कि यह समझना पड़ेगा कि आपकी ये सब आवाजें सब आपकी हैं। ये सब आवाजें इकट्ठी आपकी हैं। ये छुटकारे की आवाज भी आपकी है और ये सदा बंधे रहने की आवाज भी आपकी है।... ये सब आवाजें आपकी हैं। ये जिंदा रहने की आवाज भी आपकी है और कल मरने की इच्छा भी हो सकती है, वह भी आपकी है। ये सब विरोधी सब आपकी हैं। और इसमें कोई भी एक आपकी नहीं है, ये सब आपकी हैं।
हम क्या करते हैं, जब एक आवाज होती है तब हम उसके साथ आइडेंटिफाइड करते हैं कि यह मैं हूं। जब मैं दुख में होता हूं तो मैं कहता हूं ऐसा मैं जिंदगी भर दुखी रहूंगा, अब मैं कभी सुखी नहीं हो सकता। यह दुख बोल रहा है, यह मैं नहीं बोल रहा हूं। यह मुझ पर छाया हुआ दुख का क्षण बोल रहा है। जब मैं सुख में होता हूं, तब मैं दूसरी बात बोलूंगा। प्रेम में कुछ और बोलूंगा, क्रोध में कुछ और बोलूंगा। ये सब मेरी आवाजें हैं। लेकिन इनमें से कोई आवाज मैं नहीं हूं। हमारी गलती है कि हम हरेक आवाज को जब वह हमारे ऊपर होती है हम कहते हैं मेरी आवाज। उसे हम कहते हैं, यह मेरी आत्मा है इस वक्त, मेरा सेल्फ है। इसमें कोई हमारा सेल्फ नहीं है।
जैसे नदी बह रही है, वह एक वृक्ष के नीचे से गुजरती है, तो उसकी वृक्ष
की पराछाई बनती है उसमें, नदी उस वक्त सोच सकती है कि मैं वृक्ष हूं, और वह सोच भी नहीं पाई है कि बह गई और एक चट्टान के पास से गुजर गई, और चट्टान की छाया बन रही और नदी सोचती है कि मैं चट्टान हूं, और वह सोच भी नहीं पाई कि वह बह गई, और अब वह बादलों के नीचे से गुजर रही है और बादलों की छाया बन रही है और नदी सोचती है कि मैं बादल हूं, और एक पक्षियों की कतार निकल गई उसकी छाती पर से और चमक गई और उसने सोचा कि मैं पक्षी हूं। न, इनमें से कोई भी नदी एक नहीं है।

तो नदी क्या है?

हां, नदी सारे बहाव का जो भी प्रतिफलन है, उस सबका जोड़ है। इस सबका एक अर्थ में वह उस चट्टान से भी एक है जो उसमे झलक गई है, उस वृक्ष से भी जिसने उसमें फूल गिरा दिए और पक्षियों की उस कतार से भी जो उसके ऊपर से पार हुई है। उस सूरज से भी, उस पृथ्वी से भी, उस रेत से भी, और उस आदमी से भी जो उसमें स्नान कर गया और उस बांसुरी बजाने वाले से भी जिसने गीत गाया, वह नदी उन सबसे एक है। और जिस दिन नदी समग्र की एकता को जान पाएगी, उस दिन नदी की फिर कोई आकांक्षा नहीं है कि ऐसा ही हो। क्योंकि तब वह जानती है कि ऐसा ही होने का मतलब मरना होगा। अगर वह ऐसा सोचेगी कि वृक्ष ही मैं हो जाऊं तो फिर चट्टान न हो सकेगी। और फिर पक्षियों की कतार न हो सकेगी। और फिर गिरता हुआ फूल न हो सकेगी, बांसुरी की आवाज न हो सकेगी, फिर रेत और सागर, यह सब कुछ भी न होगा, फिर बादल और सूरज यह कुछ भी न होगा, फिर वह चट्टान ही हो जाएगी, फिर वह नदी न रह जाएगी। जिस दिन नदी ऐसा समझ ले कि वह यह अनंत प्रवाह के बीच आए सभी प्रतिबिंब है वह, सभी प्रतिबिंबों से, तब बहाव सहज हो जाएगा, तब कहीं ठहरने का सवाल नहीं। इसका मतलब यह नहीं है कि तब वह झाड़ की तरफ देखेगी नहीं। न, जब गुजरती होगी तो पूरी तरह देख लेगी और बहुत प्रेम से देख लेगी, क्योंकि हो सकता है दुबारा गुजरना न हो। मतलब यह नहीं है कि वह आंख बंद कर लेगी कि अब झाड़ से क्या मतलब हमें जब हम झाड़ नहीं हैं। जब हम चट्टान नहीं हैं हमें चट्टान से क्या मतलब। वह जो मैं फर्क कर रहा हूं, वैराग्य की भाषा हमें सिखाती है कि जब तुम चट्टान से गुजर ही जाना है, तो चट्टान से क्या मतलब। मोह मत बांधो।

यह सब होने पर भी नदी भी है, वृक्ष होने पर, बादल होने पर, पक्षी होने
पर वह नदी भी है।

यह जो हम कहते हैं कि नदी भी है, इसका मतलब कुछ ऐसा हो जाता है कि अगर
इस सबको हम निकाल लें तो भी नदी होगी। नहीं, ऐसी कोई नदी नहीं होगी। हां, मैं नहीं हूं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पस्ट नहीं।)

अगर हम सब निकाल लें तो कुछ भी न होगा वहां। वह सबके ही प्रवाह के जोड़ में ही घटी घटना है। वह एक संहार है जैसा बुद्ध कहते हैं कि वह एक संहार है। वह बहुत चीजों का जोड़ है। ऐसी बहुत चीजों का जो हमें पता भी न हो वे भी उसमें जुड़ी हो सकती हैं। उसमें परमात्मा और मोक्ष और निर्वाण और जो हमें पता भी न हो, उनके भी प्रतिबिंब उसमें बन रहे होंगे, वे भी जुड़े हो सकते हैं। लेकिन नदी है... सबसे अलग करके आइसोलेटिड कहीं भी नहीं है। आइसोलेशन में कोई एंटीटी नहीं है। और वह हमारा पक्का भ्रम है। वह भी हमारा शाश्वत का भ्रम है, क्योंकि हम कहते हैं चट्टान तो बीत जाएगी, रेत तो बीत जाएगी। आज तट है कल तट नहीं होगा, आज वृक्ष हैं कल वृक्ष नहीं होगा। आज एक बांसुरी बजाने वाला है, कल नहीं होगा। मुझे तो होना चाहिए, जब कुछ भी नहीं होगा तब भी मुझे तो होना चाहिए। जब बिल्कुल कुछ नहीं होगा मोक्ष होगा, तब भी मुझे तो होना चाहिए। सब शून्य होगा फिर भी मैं तो रहूंगा।
वह भी हमारी... जीवन में हम पराजित हो गए हैं शाश्वत को पाने से, तो हमने जीवन में शाश्वत की तो खोज छोड़ दी, अब अपने में ही शाश्वत को पकड़ लिया। तो मैं तो शाश्वत हूं। न होगा प्रेम शाश्वत, जाने दो; न होंगे फूल शाश्वत, जाने दो, लेकिन मैं, मैं तो शाश्वत हूं। लेकिन शाश्वत की आकांक्षा क्या? शाश्वत का प्रयोजन क्या? शाश्वत होने का मतलब क्या? असल में होना ही, होना मात्र ही परिवर्तन है। होने का अर्थ भी परिवर्तन में है। सच तो यह है कि है, इस जैसी कोई चीज नहीं है होना। होने जैसा है कुछ।
पहली दफा बर्मी भाषा में बाइबिल का अनुवाद किया, तो शब्द उनको बड़े कठिनाई के पड़ गए। गॉड इ.ज, यह कैसे अनुवाद करें। ईश्वर है, क्योंकि बुद्ध

के प्रभाव में जहां-जहां भाषाएं विकसित हुई हैं वहां... नहीं है। वहां टेबल है ऐसा कहना भी ठीक नहीं, वहां टेबल हो रही है। उस भाषा का जो रूप होगा वह ऐसा ही होगा, क्योंकि टेबल है यह भी ठीक नहीं है। बच्चू भाई हैं यह ठीक नहीं है, बच्चू भाई हो रहे हैं। नदी है बहाव, और है का मतलब है ठहराव। ये कंट्राडिक्ट्री ट्रम्स हैं। नदी है, यह शब्द उपयोग करना ही गलत है। नदी का मतलब ही है कि जो है कभी नहीं, सदा हो रही है। किसी क्षण भी जिसको हम नहीं पकड़ पाएंगे। हां, सदा प्रवाह में है, सदा होने में ही है। और है कि स्थिति में कभी भी नहीं आती। यह जो ख्याल में हमारे आ जाए, तो फिर भीतर भी शाश्वत की आकांक्षा नहीं है, बाहर भी नहीं है। तब ही हम जिसको एक्सेप्टेंस कह रहे हैं, वह फलित होगा, फिर हमें करना नहीं पड़ेगा, फिर कोई उपाय नहीं है। फिर ठीक है फिर नदी जानती है कि चट्टान झलकेगी और फिर नहीं भी झलकेगी। बांसुरी सुनाई पड़ेगी फिर नहीं भी सुनाई पड़ेगी। तट मिलेगा और छूटेगा भी। ये दोनों तो स्वीकृत हैं और यह नदी का होना ही हो गया। इसलिए अब इस होने में उसे कोई विरोध भी नहीं है। तट आता है तो प्रेम है, तट विदा हो जाता है तो दो आंसू भी गिरते होंगे और वह बह जाती होगी।
इतनी सरलता से अगर हमें सब दिखाई पड़ने लगे, तो वह जो आप पूछते हैं कि
हम कैसे जीएं, वह सवाल गलत है। कैसे जीने में सदा हम जीवन पर अपने को थोपने की आकांक्षा लिए हैं। नदी नहीं पूछती कि कैसे हम बहें? बहती है क्योंकि बहना नदी का होना है। यह नहीं पूछने का सवाल है कि हम कैसे? आदमी पूछता है कि हम कैसे जीएं? यानी वह यह कहता है कि जीवन पर्याप्त नहीं है। हमें उसे ढंग देना होगा, व्यवस्था देनी होगी, मार्ग देना होगा, लक्ष्य देना होगा, उद्देश्य देना होगा, और हम बड़े खुश होते हैं। अगर कोई आदमी हमको ऐसा मिलता है जो लक्ष्य दे सकता है, उद्देश्य दे सकता है, कह सकता है वहां पहुंचो, यह पाओ, यह करो, हम बड़े प्रसन्न होते हैं। हम कहते हैं यह आदमी है इसके पीछे चलने जैसा है। सब गुरु इसी भांति पैदा हुए। उन्होंने कहा कि ऐसे जीयो। उन्होंने बताया कि यह ढंग है जीने का। जिंदगी के ऊपर भी कुछ थोपो और ढांचा बनाओ और वह सब ढांचे हमें दुख में डाल देंगे।

इससे निष्क्रियता नहीं आ जाएगी?

हां, हमेशा हमें लगता है ऐसा, पर मेरा ख्याल यह है कि इससे सक्रियता सहज होगी सिर्फ, निष्क्रियता नहींं आ जाएगी। क्योंकि निष्क्रियता भी गलत सक्रियता का परिणाम है, रिएक्शन है।
यानी एक आदमी बहुत दौड़ा, इतना दौड़ा कि थक कर गिर पड़ा, लेकिन एक आदमी धीरे-धीरे चला, इतना चला कि कभी थका नहीं, कभी गिरा नहीं। और मेरा मानना है कि वह जो बहुत दौड़ा है पीछे पड़ जाएगा, और वह जो बहुत धीमे चला है और कभी नहीं दौड़ा और कभी सक्रिय नहीं मालूम पड़ा, बहुत सीघ्र आगे निकल जाएगा। क्योंकि कभी भी दौड़ इतनी नहीं कि निष्क्रियता में ले जाए, असल में दौड़ की अति निष्क्रियता में ले जाती है।
तो जो मैं कह रहा हूं, उससे गति धीमी होगी, निष्क्रिय नहीं। लेकिन सहज सक्रियता होगी, सहज और सरल हो जाएगी। और कोई भाग नहीं रह जाएगी। लेकिन अंततः अगर हिसाब-किताब कभी कोई करने बैठेगा, तो दौड़ने वाले पीछे पड़ जाएंगे और यह जो सहज धीरे चले थे बहुत आगे निकल जाएंगे।

मैं एक कहानी कहता रहा हूं। कोरिया में एक वृद्ध भिक्षु एक नदी पार कर रहा है एक नाव से। वह उसके साथ एक युवा भिक्षु है। और नदी के पार पहुंच कर जैसे ही नाव बांधी है मांझी ने, तो उन्होंने उस बूढ़े से पूछा है कि गांव कितना दूर है, क्योंकि हमने सुना है कि सूरज ढ़लते ही गांव का द्वार बंद हो जाएगा और सूरज ढल रहा है। कितनी दूर है? हम पहुंच पाएंगे कि नहीं? उसने नाव बांधते हुए कहा, कि धीरे गए तो पहुंच भी सकते हो।

धीरे का मतलब संतोष तो नहीं?

न, बिल्कुल नहीं। मेरा मतलब जल्दी मत निकलाना। संतोष से बिल्कुल नहीं। न, संतोष से बिल्कुल नहीं। उस बूढ़े मांझी ने कहा कि धीरे गए तो पहुंच भी जाओगे! अब ऐसे पागल की बात कौन सुने। उन्होंने सोचा कि पागल, इसकी बात में पड़े तो गए, क्योंकि जब यह कहता है धीरे गए तो पहुंच भी जाओगे! तो भागे, फिर उन्होंने उससे पूछा भी नहीं। सांझ हो रही है, सूरज ढला जा रहा है। वे तेजी से भाग रहे हैं, क्योंकि द्वार बंद हो गया तो जंगल में रह जाना पड़ेगा। पहाड़ी रास्ता है, फिर सूरज एकदम ढलने के करीब हो गया है। तब वे और तेजी से भागे। फिर वह बूढ़ा गिर गया और उसके घुटने टूट गए और लहू बह रहा है, उसकी सब किताबों के पन्ने बिखर गए हैं जो वह सिर पर लिए था।
फिर वह मांझी पीछे से गीत गाता हुआ आ रहा है, वह पास खड़े होकर खड़ा हो जाता है। और उसने कहाः मैंने कहा था, क्योंकि मेरा बहुत दिन का अनुभव है। रोज ही सांझ यहां कोई उतरता है और रोजी ही कोई मुझसे पूछता है कि कितनी दूर है, पहुंच जाएंगे न सूरज ढलते? तो मेरा निरंतर का अनुभव यह है कि जो धीरे जाते हैं वे पहुंच भी जाते हैं। रास्ता बहुत बीहड़ है, जो तेजी से जाते हैं अक्सर गिर जाते हैं। लेकिन मेरी बात उस वक्त ठीक नहीं लगती, क्योंकि उन्हें यह लगता है कि धीरे गए तो कैसे पहुंचेंगे?
क्योंकि हमारा पहुंंचने का ख्याल ही तेज जाने वाले से जुड़ा हुआ है। लेकिन कुछ मुकाम ऐसे भी हैं जहां धीरे जाने से पहुंचते हैं। और कुछ मुकाम ऐसे हैं जहां जाने से कभी पहुंचते ही नहीं, जहां न जाने से ही पहुंच जाते हैं। पर उन मुकामों का हमें कोई पता नहीं। सक्रियता जो है वह आपकी चेष्ठा नहीं है, सक्रियता आपके भीतर शक्ति का सहज प्रकटन है। आपकी चेष्टा नहीं है, आप अपनी चेष्टा से सक्रिय नहीं हैं। और अगर आप बिल्कुल सहज हो जाते हैं तो आपके भीतर की जो शक्ति है वह आपको सक्रिय रखेगी। लेकिन वह सक्रिय होना उतना ही होगा जितनी शक्ति होगी, उससे ज्यादा कभी नहीं होगा। इसलिए रिएक्शन की निष्क्रियता कभी भी नहीं आएगी। इसलिए कभी थकेंगे नहीं। क्योंकि थकने के पहले शक्ति वापस लौट जाएगी। चेष्टा तो उसमें है नहीं, जितना है उतना है, उतना आप करते हैं श्रम, थक जाते हैं, विश्राम पर चले जाते हैं, फिर सुबह उठ आते हैं, फिर काम करते हैं, फिर विश्राम पर चले जाते हैं। और चूंकि कहीं पहुंचना नहीं है इसलिए जल्दी का कोई सवाल नहीं है। जहां हम हैं वहां जितनी देर रहें, फिर जितनी देर जहां होंगे वहां होंगे।
जो मैं कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि जिंदगी की अपनी सक्रियता है, आपको उसे देने की जरूरत नहीं। और आदमी ने जितनी सक्रियता दी, उसमें सिर्फ बीमारी है। सिर्फ बीमारी लाई है, उससे चित्त रुग्ण हुआ है, विक्षिप्त हुआ है, परेशान हुआ है और कुछ भी नहीं हुआ।
आदमी के द्वारा लाई गई सक्रियता के दो परिणाम हैंः या तो सक्रियता इतनी बढ़ जाती है कि रुग्ण और विक्षिप्तता हो जाती है, या सक्रियता का अंतिम फल एकदम सब निष्क्रियता में परिवर्तित हो जाता है कि आदमी निढाल होकर पड़ जाता है कि अब कुछ भी नहीं करने को है, कुछ नहीं करना है। ये दो ही फल हो सकते हैं। लेकिन सहज सक्रियता बिल्कुल और बात है। उसका मतलब यह है कि जितना होता है होता है, जितना चलते हैं चलते हैं और थक जाते हैं तो विश्राम करते हैं, फिर चलते हैं फिर विश्राम करते हैं। न कहीं पहुंचने की जल्दी है, न कहीं से भागने की जल्दी है। भोगी को कहीं पहुंचने की जल्दी है, त्यागी को कहीं से भागने की जल्दी है। और इसलिए दोनों बड़ी तेजी में सक्रिय हैं।
भोगी कहता है, वहां पहुंचना है--वह बड़ा मकान बना लेना है, वह बड़ी कार ले लेनी है, वह बड़ा पद ले लेना है। और त्यागी कहता है--इस मकान से जितनी दूर भाग जाएं भाग जाएं, इस कार से जितनी दूर निकल जाएं, निकल जाना है, कहीं ऐसा न हो कि मन लोलुपता से भर जाए और गाड़ी में बैठ जाएं, तो भाग जाना है। वे दोनों भाग रहे हैं।
तो धार्मिक आदमी मैं उसको कहता हूं जो भाग ही नहीं रहा, जो चल रहा है।
चल रहा मतलब यह है कि जितना जिंदगी चला रही है चल रहा है, नहीं चला रही नहीं चलता है। विश्राम करा रही है तो विश्राम कर रहा है। अपनी तरफ से कोई सक्रियता थोपने की जरूरत नहीं है। न कोई मेथड, क्योंकि जिंदगी का क्या

मेथड हो सकता है, सिर्फ मरने के मेथड हो सकते हैं। अगर कोई आदमी पूछे कि हम मरने के लिए क्या करें, तो मेथड बताए जा सकते हैं कि पहाड़ से कूदो कि जहर खाओ कि छुरी मार लो। मरने के मेथड हो सकते हैं, जिंदा रहने का क्या मेथड हो सकता है। जिंदगी इतनी अनंत है कि मेथड हो ही नहीं सकता।
और अगर किसी ने अगर जिंदगी में मेथड का उपयोग किया, तो किसी न किसी अर्थ में मरने की तरकीब हो गई। क्योंकि बहुत सी जिंदगी छूट जाएगी। मेथड तो थोड़ा सा ही पकड़ पाता है। इसलिए मरने का मेथड हो सकता है कि छुरा मार लिया, लेकिन जीने का कैसे होगा? जीना बहुत बड़ी घटना है, उसका कोई मेथड नहीं हो सकता। अनंत रूपों में, अनंत और असीम है, और रोज नई है, प्रतिपल नई है, उसका पक्का भी नहीं है कुछ कि कल क्या होगा? सुबह क्या होगा? इसलिए जिंदगी जीयी जा सकती है, विधि नहीं पूछनी चाहिए।
और सारी विधि छोड़ देंगे तो भी जीएंगे, करेंगे क्या? भागेंगे कहां? जाएंगे कहां? अगर समझ लें सारी विधि छोड़ दूं, सारा लक्ष्य छोड़ दिया, कहीं पहुंचने का ख्याल न रखा, कुछ करने की बात न रखी, तो क्या समझते हैं मर जाएंगे? तो जीएंगे लेकिन तब जीना अत्यंत सरल और सहज हो जाएगा, तब अभी और यहीं हो जाएगा, फिर कोई उपाय नहीं रहेगा कल का और परसों का, अभी और यहीं हो जाएगा, फिर जीएंगे, फिर भी जीना होगा। लेकिन वह जीना तब फिर भीतर से होने लगेगा, जितना हो सकेगा होगा, नहीं हो सकेगा नहीं होगा। बात दौड़ न रह जाएगी एक गाय चली जा रही है रास्ते पर, यह भी एक जाना है, और एक गाय को लगाम बांध कर एक आदमी लिए जा रहा है, यह भी एक जाना है, और एक गाय को पीछे से कोई डंडे मार रहा है, यह भी एक जाना है। लेकिन जब गाय को कोई रस्सी से बांध कर लिए जा रहा है तो यह लक्ष्य से बंधा हुआ आदमी का प्रतीक है। आगे से कोई खींच रहा है, वहां पहुंचना है, दिल्ली पहुंचना है, कहीं और पहुंचना है। वह लगाम से जुती हुई गाय का प्रतीक है। अगर कोई पीछे से कोई धक्का मार रहा है कि यहां से भागना है, यहां नहीं रहना है चाहे और कहीं भी चले जाएं।
जिसको हम त्यागी कहते हैं वह पीछे है। डंडे जिसको मारे जा रहे हैं कि यहां नहीं रहना, यह पत्नी, ये बच्चे, यह घर, यह गृहस्थी, यह दुकान, यहां नहीं रहना है, और कहीं। यानी उसे कहीं जाने का उतना सवाल नहीं है जितना यहां से जाने का सवाल है, जितना छोड़ने का सवाल है। लेकिन एक गाय है जो अपनी मौज से चली जा रही है। कभी लौट भी आती है, कभी इस कोने पर चली जाती है, कभी उस कोने पर चली जाती है। कभी नहीं भी जाती है, वृक्ष के नीचे विश्राम भी करती है, कभी आंख बंद करके सो भी जाती है, न कोई खींचने वाला है, न कोई भगाने वाला है।
इसे मैं सहज जिंदगी का प्रतीक कहता हूं। और इतनी ही सहज जिंदगी हो, तो
ही हम जीवन के पूर्ण अर्थ को, पूर्ण आनंद को जिसमें दुख समाविष्ट है, जिसमें अर्थहीनता समाविष्ट है। जीवन के पूरे सत्य को जिसमें जीवन के सपने समाविष्ट हैं उपलब्ध होते हैं। खंड करके नहीं उपलब्ध होते कि सत्य को उपलब्ध हो जाते हैं और असत्य विदा हो जाता है। नहीं, ऐसा नहीं हो जाता है कि दुख विदा हो जाते हैं और सुख को उपलब्ध हो जाते हैं। नहीं, दुख और सुख दोनों एक ही चीज के पहलू हो जाते हैं। और हम दोनों में जी पाते हैं और दोनों किनारों के बीच से बह पाते हैं। उतना बहाव लक्ष्य नहीं है जिंदगी का, जिंदगी एक बहाव है, बहाव में बहुत लक्ष्य आते हैं, वह बिल्कुल दूसरी बात है, उससे कुछ बहुत पड़ाव आते हैं, वह बिल्कुल दूसरी बात है, लेकिन लक्ष्य नहीं। और इसलिए जिंदगी बहुत टेढ़ी-मेढ़ी है, जिग.जैग, सीधा सीमेंट रोड़ की तरह नहीं है। क्योंकि सीमेंट रोड़ को कहीं जाना है तो वह सीधा जाता है। तो भी जितना... उतना लंबा इसका फासला हो जाएगा तो सीमेंट रोड़ शार्टकट होता है। लेकिन नदी जिग.जैग जाती है, उसी कहीं पहुंंचना नहीं है, सागर पहुंच जाती है यह बिल्कुल दूसरी बात है, बिल्कुल दूसरी बात है। उसे कहीं पहुंचना नहीं, बहने का आनंद है, वह बहती है, बहती है, और जहां रास्ता मिलता है वहीं बह जाती है। कभी इस वृक्ष के किनारे से गुजरती है, कभी वापस भी लौट आती है, कभी चक्कर भी लेती है। कोई जल्दी नहीं है कहीं पहुंच जाने की, कोई जल्दी नहीं है।

जिंदगी है तो नदी की धार की तरह जिग.जैग, और हम जो जिंदगी बना रहे हैं
वह जिंदगी एक सीमेंट रोड़ की तरह है, रेल की पटरियों की तरह है साफ-सुथरी, सीधी बिल्कुल, पटरियों से नीचे उतरना नहीं और चले जाना है तो कोई... कहीं न कहीं रेल के डिब्बे जैसे पहुंचते हैं वैसे ही पहुंचेंगे। इसलिए लक्ष्य भी नहीं, उद्देश्य भी नहीं, जीना काफी है, पर्याप्त।

डिटरमिनिज्म है कि नहीं?

असल में वह पूछना ही अर्थहीन है। अर्थहीन इसलिए है कि हमें यह नहीं दिखाई पड़ता न ख्याल में, हमें लगता है कि भाग्य डिटरमिनिज्म दि फ्रीडम की स्वतंत्रता। ये हमने दोनों तोड़े हुए हैं, और ये एक ही चीज के हिस्से हैं। अगर आदमी जिंदगी से अलग है तो ही फ्री हो सकता है, और तो ही डिटरमिंड हो सकता है। और अगर जिंदगी के साथ एक हैं तो फ्रीडम का क्या मतलब है और डिटरमिनिज्म का भी क्या मतलब है? कोई मतलब नहीं है। कि अगर मैं अलग हूं जिंदगी से, तो दोनों बातें संभव हैं--या तो मैं स्वतंत्र हूं और या मैं परतंत्र हूं। स्वतंत्रता और परतंत्रता दोनों में मेरा अलग अस्तित्व स्वीकृत है।
लेकिन मैं यह कह रहा हूं कि मेरा कोई अलग अस्तित्व कहां है, तो स्वतंत्र किससे हो जाऊं और परतंत्र किसका हो जाऊं। मेरा मतलब आप समझे न? यह मेरा हाथ मुझसे स्वतंत्र है या परतंत्र है? यह मेरा हाथ मुझसे स्वतंत्र है कि परतंत्र है? अगर मैं इसे स्वतंत्र कहूं तो यह मुझसे अलग होगा, और परतंत्र कहूं तो भी मुझसे अलग होगा, लेकिन यह हाथ मैं ही हूं। इसकी स्वतंत्रता-परतंत्रता का कोई मतलब नहीं है क्योंकि ये मुझसे अलग नहीं है कि मेरे परतंत्र हो जाए या मुझसे स्वतंत्र हो जाए। मैं इससे अलग नहीं हूं कि इससे स्वतंत्र हो जाऊं कि इससे परतंत्र हो जाऊं, ये हम एक हैं। तो मेरी दृष्टि में दोनों ही गलत हैं। वे जो फ्रीडम वाले लोग हैं, वे कहते हैं, सब स्वतंत्र हैं और जो कहते हैं कि डिटरमिनिज्म है, सब बंधा हुआ है, सब प्रारब्ध है। वे दोनों ही गलत हैं। क्योंकि दोनों ही एक ही बिंदु पर खड़े हैं कि आदमी अलग है कि आत्मा अलग है। उस पर दोनों का भाव खड़ा हुआ है। परंतु दो व्याख्याएं हैं उसकी। लेकिन मैं उस भाव को ही नहीं मानता कि आदमी अलग है।
मैं कहता हूं, सब एक है। इसलिए यहां जो सत्य है वह इंटरडिपेंड्स है। सत्य जो है न इनडिपेंड्स और न डिपेंड्स। गहरे से गहरा सत्य जो है वह है इंटरडिपेंड्स, परस्परतंत्रता। न तो स्वतंत्रता, न परतंत्रता, हो ही नहीं सकती दोनों चीजें। ये दोनों चीजें परस्परतंत्रता को दो हिस्से में तोड़ना जैसे जन्म-मृत्यु को तोड़ना है दो हिस्सों में।
हम सब परस्परतंत्र में, एक परस्परतंत्रता है... ऐसा कहना चाहिए। एक इंटरडिपेंड्स है सारे अस्तित्व की, जिसमें हम हैं। अब एक लहर उठी है पानी पर, कहना मुश्किल है, कि हवाओं ने लहर को उठा दिया कि चांद ने लहर को उठा दिया, कि किसी बच्चे ने किसी किनारे पर पत्थर फेंका है और लहर उठीं। इससे उलटा भी संभव है कि लहर उठी इसलिए हवा को हिल जाना था। इससे उलटा भी संभव है कि लहर ने बच्चे को पुकारा और उसे पत्थर फेंकना पड़ा। यह सब संभव है, मेरा मतलब समझे न आप। बच्चे ने पत्थर फेंका और लहर उठ गई है ऐसा नहीं है। लहर ने बच्चे को पुकारा और पत्थर फेंकना पड़ा यह भी संभव है। कई दफा लहर आपसे पत्थर फिंकवा लेती है। लहर भी, आप ही पत्थर फेंक कर लहर उठाते हैं ऐसा नहीं, बहुत बार लहर भी आपसे पत्थर फिंकवा लेती है। किनारे पर बैठे हैं और पत्थर फिंकने लगता है। कोई काम नहीं है, कोई आसार नहीं है। सारा जगत इतना अंतरनिर्भर है कि कह सकते हैं कि इस बगिया में जो फूल खिला है अगर वह आज न खिलता तो हम यहां न होते और कठिन नहीं है यह मामला। कोई कठिन इतना अंतरनिर्भर है कि बगिया में जो फूल खिला है, जिसको हमने देखा भी नहीं है, पास हम गए भी नहीं। वह अगर आज यहां न खिलता तो शायद आज हम यहां न होते। क्योंकि उस फूल के खिलने में जगत की सारी स्थितियां उतनी ही समाविष्ट हैं जितने हमारे यहां होने में। और वह जाल इतना बड़ा है अंतरनिर्भरता का जाल,

परस्परनिर्भरता का जाल इतना बड़ा है कि मस्तिष्क उसमें डांवाडोल होकर टूट जाए। इसलिए हमने सुविधापूर्ण व्यवस्था की है कि या डिपेंड्स या इनडिपेंड्स जो है। दो बातें ही सुविधापूर्ण हैं कि आदमी स्वतंत्र है कि परतंत्र। यह बड़े सस्ते से मामला हल हो जाता है, लेकिन मामला हल करना नहीं है। मामला क्या है यह जानना है।
मैं हल करने को उतना उत्सुक नहीं हूं। हल करने की उत्सुकता पांच हजार वर्ष से चलती बनी आ रही है कि हमको हल कर लेना है मामले को। तो हल करने में हम सिर्फ साफ-सुथरे कंसेप्ट बनाने की फिकर में लग जाते हैं।
मुझे इसकी फिकर नहीं है। अगर मामला है, तो हमें जान लेना है, और ऐसा भी मामला हो सकता है जो हल ही न होता हो। तो इसको भी जान लेना है। सब मामले हल होना चाहिए, ऐसा भी क्या है? और अंततः तो जीवन का जो पूर्ण मामला है, वह हल नहीं हो सकता; उसका कोई थियोरीटिकल साल्यूशन नहीं हो सकता। तब एक ही रास्ता हो सकता है कि हम उस पूरे मसले को जान लें, कि ऐसा है। और उस ऐसा है को जान लेने में एक हल उपलब्ध होगा जो जीवन का हल होगा, सिद्धांत का नहीं। अगर हम इतना ही जान लें कि हम परस्पर निर्भर हैं... । और ऐसा नहीं है कि मनुष्य मनुष्य पर निर्भर है, ऐसा भी नहीं है कि सड़क के किनारे पड़ा हुआ पत्थर आपसे किसी भी तरह संबंधित नहीं है।
संबंधित हैं हम बहुत गहरे अर्थों में, और सड़क पर पड़ा हुआ पत्थर भी आपको प्रभावित कर रहा है और जरूरी नहीं है कि आप ही पत्थर को चोट मारते हों, पत्थर भी आपको चोट मारता है। तो इतना जाल घबड़ानेवाला हो जाता है, इसलिए हम सुविधापूर्ण सिद्धांत तैयार करते हैं। सुविधापूर्ण सिद्धांत दिक्कत डाल देते हैं, कठिनाई डाल देते हैं। हमने सब तरफ ऐसा ही कर लिया है कि यह आत्मा रही, यह शरीर रहा, इससे सिद्धांत बना लिया, इससे सुविधा है। और सचाई बहुत उलटी है। सचाई यह है कि तय करना मुश्किल है कि कहां शरीर खत्म होता है और कहां आत्मा शुरू होती है! शरीर को गड़ा हुआ कांटा आत्मा को नहीं गड़ता है, ऐसा कहना कठिन है। और आत्मा पर लगी चोट शरीर पर नहीं सही जाती, कहना कठिन है। सच बात तो यह है, वे हमारे सब हिसाब हैं, जो हमने तोड़ लिये हैं। तो मैं तो ऐसा देखता हूंः कि आत्मा का जो हिस्सा दिखायी पड़ता है, वह शरीर है, और शरीर का जो हिस्सा दिखायी नहीं पड़ता, वह आत्मा है। उससे ज्यादा और कोई मतलब नहीं है।

प्रश्नः आपकी आत्मा की क्या कल्पना है?
कल्पना करता ही नहीं! कल्पना नहीं करता हूं। समष्टि है, टोटैलिटी है-- आत्मा नहीं है।

प्रश्नः अपना प्रेक्षक भाव है?

प्रेक्षक भाव कैसे जोड़ेंगे आप? आप हैं कहां? आप प्रेक्षक हैं, ऐसे हैं कहां आप? अपने को तोड़ेंगे अलग, तभी प्रेक्षक हो सकते हैं। नहीं, आप हैं कहां अलग? समझ लें, ऐसा नहीं समझ लेंगे तब तक तो आप कर रहे हैं कुछ। ऐसा है-- यह समझना पड़ेगा। अपने को हम किसी न किसी तरह कर्ता-भाव से मुक्त नहीं कर पाते। यानी हमें ऐसा लगता है, कुछ तो हमें करने दो। इतना ही करने दो कि हमने समझ लिया कि ऐसा है, लेकिन हम मौजूद हों और समझानेवाले मौजूद हों। कम से कम इतना तो करने दो कि हम प्रेक्षक बने देख रहे हैं! हम अलग खड़े हैं।
यह सब है, लेकिन हम इसके साथ इकट्ठे हैं। तो हम अपने को खोना नहीं चाहते। बुद्ध ने एक बहुत अदभुत बात कही है। बुद्ध ने कहा है कि स्वयं के होने का मोह, स्वयं को बनाये रखने की तृष्णा गहरी से गहरी तृष्णाएं हैं। बाकी सब तृष्णाएं छूट जाती हैं अगर किसी की, तो भी वह तृष्णा नहीं छूटती कि मैं हूं। और मजा यह है कि मैं हूं तो फिर उससे सारी तृष्णाएं पैदा होने ही वाली हैं। क्योंकि अगर मैं हूं तो मेरा मकान क्यों नहीं है! और अगर मैं हूं, तो मेरी पत्नी क्यों नहीं है! और अगर मैं हूं तो मेरा बेटा क्यों नहीं है! और अगर मैं हूं, तो मेरी पत्नी क्यों नहीं है! क्योंकि जब "मैं" हूं, तब फिर "मेरा" भी निकलेगा। वह "मैं" के बीच से "मेरा" फैलेगा और "मेरे" का

फैलाव होगा तो "तेरे" का फैलाव होगा और फिर मेरे और तेरे का संघर्ष होगा और फिर मैं और तू का संघर्ष होगा। तब जाल फैल जायेगा पूरा का पूरा।
अगर जाल को समझ लेना है और मुक्त हो जाना है जाल के उपद्र्रव से, तो वह
जो मैं की इकाई है, उसको तोड़ देने की जरूरत है गहरे में। वह वहां से सेल्फ टूट जाना चाहिए। वह वहां होना ही नहीं चाहिए। है ही नहीं वहां। अगर हम झांककर देख पायें, तो हमें सेल्फ जैसी चीज कहीं भी दिखायी नहीं पड़ेगी। चीजें हैं अपनी समग्रता में और सब जुड़ी हैं। फिर प्रेक्षक कैसे रहेंगे जब निरोध से भय रहेगा! आप हैं कौन जो रोकेंगे? हवाएं आती हैं पूरब से, तो पूरब से आती हैं। पश्चिम से आती हैं, तो पश्चिम से आती हैं। सूरज निकलता है। लेकिन "ऐसा होना चाहिए" जब तक हमारा ख्याल है, तब तक संघर्ष जारी रहता है। जैसा है--है।
लाओत्सु एक जंगल से गुजर रहा है। दस-पंद्र्रह उसके शिष्य उसके साथ हैं। पूरा जंगल कट रहा है। कोई राजधानी बन रही है नयी, तो सारे जंगल के सैकड़ों वृक्षों पर कारीगर लगे हैं और लकड़ियां काट रहे हैं। लेकिन एक वृक्ष अछूता है और इतना बड़ा है कि उसके नीचे हजार बैलगाड़ी ठहर जाती हैं। तो लाओत्से ने कहा, "उस वृक्ष से जरा पूछकर आओ", अपने शिष्यों से कहा, कि "राज क्या है? जब सारा जंगल कटा जा रहा है, तो यह बच कैसे गया?" तो शिष्य थोड़ी मुश्किल में पड़े कि वृक्ष से क्या पूछें! लेकिन लाओत्से ने कहा, तो जाना पड़ा। गये। वृक्ष के चारों तरफ घूमे, लेकिन वृक्ष क्यों कहता! तो उन्होंने सोचा कि क्या किया जाये? तो आसपास वृक्षों को काटते कारीगरों से पूछ लें कि इसको क्यों छोड़ दिया है। उन कारीगरों से पूछा कि "इस वृक्ष को क्यों नहीं काटते हो?" तो उन्होंने कहा, "वह वृक्ष बिल्कुल बेकार है-- टोटली यूजलेस।" "क्या मतलब बेकार का?" कहा कि "इसकी सब लकड़ियां ऐढ़ी-टेढ़ी हैं। ये किसी काम में आ नहीं सकतीं। ईंधन भी नहीं बनता इसका, क्योंकि इतना धुआं फेंकता है कि कोई घर में ईंधन नहीं जलाता। पत्ते उसके ऐसे हैं कि कोई जानवर भी उसको खाने को राजी नहीं है! तो वह वृक्ष बिल्कुल ही बेकार है।" वे वापस लौटे। उन्होंने लाओत्से से कहा कि "वृक्ष से तो हम नहीं पूछ पाये, लेकिन हमने पास के कारीगरों से पूछा, तो वे कहते हैं कि वृक्ष बिल्कुल बेकार है।" लाओत्सु ने कहाः "धन्य है वह वृक्ष क्योंकि उसका बेकार होना उसका बचाव हो गया।" उसने कहा कि "देखो, ध्यान रखो, कभी बहुत सीधे होने की कोशिश मत करना, क्योंकि जिंदगी तो टेढ़ी-मेढ़ी है। देखो, जो सीधे हो गये हैं, किस तरह काटे जा रहे हैं! सीधे होने की कोशिश मत करना। काम के बनने की कोशिश मत करना", लाओत्सु ने कहा, "काम के बने कि मुश्किल में पड़ जाओगे--कटोगे, बुरी तरह कटोगे। यह वृक्ष बहुत अदभुत है। इससे अपना तालमेल है। इस वृक्ष से हमारी बात मेल खाती है। यह वृक्ष बहुत अदभुत है। यह जैसा हो गया, वैसा हो गया। इसने न सीधा होने की फिक्र की, न किसी के काम के होने की फिक्र की। यह बिल्कुल बेकाम है। और देखो, एक हजार बैलगाड़ियां इसके नीचे विश्राम कर सकती हैं। यह जो बिल्कुल बेकाम है यह हजार लोगों के लिए छाया बन जाता है। और वे जो काम के हैं, वे बुरी तरह कट रहे हैं!" तो लाओत्सु ने कहाः "इस वृक्ष का ख्याल रखना। यह ताओ में जी रहा है, यह धर्म में जी रहा है। इसने कुछ कोशिश ही नहीं की। यह जैसा था टेढ़ा-मेढ़ा, वैसा रह गया। देखो, इसको कोई नहीं काट रहा है; इसको कोई काट ही नहीं सकता। इसके पास ही कोई नहीं आया होगा काटने!"
यह जो मैं कह रहा हूं, हम जैसे हैं और जीवन जैसा है, इसे अगर हम इसकी समग्रता में स्वीकार कर लें, इसको इसकी पूर्णता में जीने लगें, स्वीकार कर लें, तो ऐसा नहीं है कि आप निरोध में पड़ जाएंगे।
मजा यह है कि ऐसा होने से आप मोक्ष में प्रविष्ट हो जायेंगे। ऐसा व्यक्ति ही मुक्त हो सकता है, क्योंकि अब बंधने को ही कोई न रहा। वही मुक्ति है। क्योंकि बंधनेवाला ही न रहा।
दो चेष्टाएं चल रही हैं सारे जगत में। एक तो यह चेष्टा है कि हमारे पास बंधन न रह जाये। एक चेष्टा चलती है कि हमारे बंधन छूट जायें, लेकिन हम रहेंगे। तो फिर बंध सकते हैं। दूसरी चेष्टा यह है कि हम हैं या नहीं, इसको जानें। अगर हम हैं ही नहीं, तो कौन बांधेगा और कैसे बांधेगा और किसको

बांधेगा! तो बंधन से छूटनेवाला तो कभी भी मुक्त नहीं है। उसकी अमुक्त होने की संभावना निरंतर शेष है। वह है अभी, वह बांधा जा सकता है। लेकिन जिसके भीतर से मैं भाव विलीन हुआ, तो अब उसको कौन बांधेगा!
डायोजनीज के जीवन में एक बहुत अदभुत घटना है। डायोजनीज एक जंगल से गुजर रहा है। नंगा रहता था और बहुत स्वस्थ और सुंदर आदमी था। असल में स्वस्थ और सुंदर आदमी ही नंगे रह सकते हैं। कपड़े कुरूपता का ही आविष्कार होने चाहिये। तो वह नंगा गुजर रहा है जंगल से। तो कुछ लोगों ने उसे देखा बड़ा स्वस्थ है। और कुछ लोग जा रहे हैं एक बाजार में गुलामों को बेचने- खरीदने। तो उन्होंने सोचा, "इसको पकड़ लो न। इसको भी बेच देंगे, तो दाम बहुत अच्छे आयेंगे। इतना सुंदर, स्वस्थ गुलाम मुश्किल से बाजार में कभी आया होगा!" तो उन्होंने कहा कि "वह इतना तगड़ा है कि वह चार को समाप्त कर देगा! हम चार ही हैं।" वे चार थे, तो उन्होंने कहा कि पकड़ने की कोशिश में खतरा हो सकता है, लेकिन कोशिश कर लेनी चाहिए। अगर ज्यादा झंझट होगी तो छोड़कर भाग जायेंगे।
वे चारों गये। उन्होंने बड़े डरे हुए उस पर हमला किया। लेकिन वह जल्दी
से उनके बीच में ऐसा खड़ा हो गया! तो उन चारों ने उसे चारों तरफ से पकड़ लिया। उसने कुछ रेसिस्ट ही नहीं किया। फिर उसने कहाः "कहो, क्या इरादे हैं?" वे बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा कि "हम तो सोचते थे कि हमारा कचूमर निकाल दोगे। तुम तो एकदम तैयार हो गये हो! हम तुम्हें गुलाम बना कर बेचना चाहते हैं।" तो उसने कहा, "ये रहे हाथ।" उन्होंने हथकड़ियां डालीं, तो उसने सहायता की उनकी हथकड़ियां डालने में। तो वे कहने लगे, "तुम आदमी कैसे हो! हम तो सोचते थे कि तुम हमें मार डालोगे, हमने अगर पकड़ने की कोशिश की।" उसने कहा, "अगर मैं होता, तो जरूर मारता, लेकिन अब हम रहे ही न।" उन्होंने कहा, "तुम कैसे पागल आदमी हो कि अपने हाथ से हथकड़ियों में सहायता देते हो।" उसने कहा, "जब तक मैं हथकड़ियां तोडूंगा, तब तक हथकड़ियों में बंधने की संभावना है। अब मैं खुद ही बांध देता हूं, तुम इसको हथकड़ी कहोगे? हथकड़ी वह है, जो दूसरा डाल दे। जिसका हम विरोध करें और इनकार करें और डाल दिया है।" उन्होंने कहाः "हम तुम्हें गुलाम बना रहे हैं।" उसने कहा, "तुम बना सकते हो। हम राजी हैं। लेकिन ध्यान रहे, जो राजी है, वह मालिक है। उसको गुलाम बनाना बहुत मुश्किल है।" तो उन्होंने कहा, "हम चलें। हमें इससे क्या मतलब? हमें तुम्हारे गहरे दर्शन से कोई मतलब नहीं। हमें तुम्हें बाजार में बेच देना है।"
वे बाजार में ले गये, तो भीड़ लग गयी उस आदमी को देखने के लिए। और जब नीलाम की तिकती पर उसको खड़ा किया गया, तो नीलाम वालों ने जोर से आवाज दी "कि एक बहुत सुंदर गुलाम बिकने आया है।" उसने कहाः "चुप नासमझ, इस तरह मत कहो। मैं आवाज खुद ही दिए देता हूं।"
तो डायोजनीज ने कहा, "एक मालिक आज बिकने आया है, जिसको खरीदना है, खरीदे।" और वह खूब खिलखिलाकर हंसा। उस बाजार में तो बड़ा शोरगुल मच गया। और लोगों ने कहा, "है तो मालिक ही जैसा आदमी!" उसने कहा, "एक मालिक बिकने आया है, किसी को खरीदना हो तो खरीदे। कोई गुलाम है, जो मालिक को खरीदने को तैयार हो?"
इसको मैं कहूंगा मुक्त। मुक्त सिर्फ इस अर्थ में कि अब इसे बांधने का कोई उपाय न रहा। क्योंकि अब यह है ही नहीं। जिस अर्थ में हम हैं, उस अर्थ में यह नहीं है। जिस अर्थ में हम हैं, उस अर्थ में हम बंध ही सकते हैं। और हम बंधेंगे ही, चाहे भोग से बंधें, चाहे त्याग से बंधें, चाहे शराब से बंधें और चाहे भजन-कीर्तन से बंधें, हम बंधेंगे ही। हम बच नहीं सकते। चाहे गुरु से बंधें, हम बंधेंगे ही। चाहे घर से, चाहे आश्रम से, हम बंधेंगे। हम जिस ढंग के हैं, उस ढंग में ही बंधने की संभावना है। तो हम इस ढंग के हो जायें कि बंधने की संभावना न रहे? तो एक ही ढंग है कि हम न हो जायें। और हम "न" कोशिश करके कैसे होंगे? अगर हम जान लें जीवन को, जैसा है, तो हम न हो जायेंगे। वह हमारी कोशिश नहीं हो सकती। और वह हमारा न हो जाना निर्वाण है। वह हमारा न हो जाना मुक्ति है।

अर्थहीन है यह सब, क्योंकि वे बंधन की भाषा में ही सोचे गये हैं, और कोई अर्थ नहीं है उनमें। निर्बंध है, उसका भी कहने का कोई मतलब नहीं, क्योंकि बंधने को कोई नहीं रहा, मुक्त होने को कोई नहीं रहा।
इस मुक्ति की बात को अगर ख्याल ले पायें, तो जिंदगी एक बहुत दूसरे अर्थ में होगी--अपने अर्थ में; जैसी वह है, प्रगट होती है। और अभी तक हम उसको प्रगट करवाना चाहते हैं, इस अर्थ में, उस अर्थ में! तब वह ठीक है, उसी रंग में दिखायी पड़ने लगती है। लेकिन वह हमारी जिंदगी का रंग नहीं है; वह हमारी आकांक्षा का रंग है। वह हमारा राग है।
राग का मतलब रंग होता है। अंग्रेजी में राग को कलर ही कहना पड़ेगा, अटैचमेंट नहीं। वह हमारा रंग है जो हमने आकांक्षा की है, जिंदगी वही दिखा देती है। जिंदगी बड़ी तरल है। वह कहती है, जैसा चाहो वैसा हुए बिना चले जाओ। लेकिन वह जिंदगी का रंग नहीं है। वह हमारा रंग है, जो हमने डाला है। हम कोई रंग न डालें तो जिंदगी का जैसा रंग है, वैसा प्रगट होगा।
हमारे उद्देश्य, हमारा धर्म, हमारा लक्ष्य, हमारी साधना, योग, अयास, ध्यान, समाधि सब रंग डालते हैं। हम कुछ भी न डालें, हम तो रह जायें। जैसी जिंदगी है वैसे ही रह जाएं, तो जो प्रकट होगा, वह जीवन है। और वैसे जीवन को प्रभु कहा जा सकता है।

प्रश्नः सारी जिंदगी के साथ यही होता है कि जिंदगी बह रही है, उसके साथ मेरा कोई संबंध नहीं। तो यह कैसा होता है! समझ में नहीं आता। यह नहीं कि मैं समझने को उत्सुक नहीं हूं, लेकिन फिर भी मेरे कान में, मेरी आंखों में उसकी झलक नहीं दिखायी पड़ती!

नहीं दिखायी पड़ेगी। अब तुम कहते हो कि इसलिए नहीं कि मैं उत्सुक नहीं हूं। नहीं, तुम उत्सुक हो इसलिए झलक नहीं सुनायी पड़ी। तुम्हारी उत्सुकता बाधा है। समझने की उत्सुकता, समझने में सबसे बड़ी बाधा है। समझने की उत्सुकता भी क्यों है? समझ लिया, तो समझ लिया। नहीं समझा, तो नहीं समझा। समझने की उत्सुकता भी, तुम रंग डाल रहे हो उसमें। फिर जो है उसको तुम समझने के लिए भी उत्सुक हो तो मुश्किल हो जायेगी। एक फूल खिला है, तुम समझने के लिए काहे को उत्सुक हो! समझ में आ गया, आ गया; नहीं तो अपने निकल गये रास्ते से। अब तुम फूल को भी समझने के लिए खड़े हो गये हो। मुश्किल में डाल दिया! फूल तुम्हारे समझने के लिए कभी खिला नहीं। अब तुम फूल को भी समझोगे।
तब तुमको शास्त्र लाने पड़ेंगे, जिनमें सौंदर्य की व्याख्या और व्यवस्था है। जो बताते हैं कि कितना अनुपात हो तो सुंदर होगा फूल, और कैसा रंग हो तो सुंदर होगा फूल! तब तुमको शास्त्र लाने पड़ेंगे। अब तुम शास्त्र पढ़ोगे कि फूल को समझोगे? और जब तुम सारी व्यवस्था सौंदर्य की समझकर आ जाओगे, तो तुम एकदम असमर्थ हो जाओगे फूल को समझने में। क्योंकि वह तुम्हारी सारी व्यवस्था, तुम्हारा सारा ढांचा, तुम्हारा सारा कंसेप्शन बीच में खड़ा हो जायेगा। नहीं! समझ लिया तो समझ लिया; नहीं समझा तो नहीं समझा। समझने की भी जिद्द क्या है! कम्यूनियन नहीं हो पाता क्योंकि हम समझने के लिए ब.ड़े आतुर हैं। कम्यूनियन अभी हो जाएगा, यदि हम आतुर न हों। ठीक है; सुन लिया, बहुत है; समझने की क्या जरूरत है?
महावीर ने एक बहुत अच्छा शब्द प्रयोग किया है--"श्रावक।" श्रावक का मतलब है सुनने वाला--समझने वाला नहीं। जो सुन लेता है और चला जाता है। सवाल यह है कि सुन लिया, अब इसको समझने की क्या जल्दी है। अगर सुनने से आ गया, आ गया; नहीं आया, नहीं आया। रास्ते पर चले गये। तब तुम आतुर नहीं हो। आतुर नहीं हो, तो तुम खुले हो। जब तुम आतुर हो, तो तुम क्लोज्ड हो। जब कोई आतुर है, तो उसकी एक दिशा है। जब वह आतुर नहीं है, तो उसकी कोई दिशा नहीं है, वह डाइमेन्शनलेस है। और कम्यूनियन डाइमेन्शन में कभी नहीं होता। कम्यूनियन होता है डाइमेन्शनलेस में। तुम्हारा कोई डाइमेन्शन ही नहीं है।
जब तुम मुझे भी सुन रहे हो और एक पक्षी चिल्लाये, तो उसे भी सुन रहे हो। अगर तुम सुनने के लिए नहीं, समझने के लिए आतुर हो, तब तो कहोगे कि पक्षी बंद रहो अभी। अभी मुझे सुन रहे हो, तो कहोगे कि अभी बच्चा रोये न, अभी मुझे

सुनना है। तुम सब डायमेंशन क्लोज कर रहे हो और सिर्फ एक डाइमेन्शन ओपन कर रहे हो कि मुझे सुनना है, मुझे समझना है; तुम सब तरफ से बंद कर रहे हो। लेकिन ध्यान रहे, या तो सब डायमेंशन खुले होते हैं, या सब बंद हो जाते हैं। जैसे फूल खिला है। फूल कहे कि एक पंखुड़ी खोलना है और बाकी पंखुड़ी बंद रखना है। तो हम कहेंगे, पागल हो जायेगा यह फूल। पंखुड़ियां खुलेंगी तो सब, बंद होंगी तो सब। माइंड भी ऐसा है। सारी "पंखुड़ियां" खुलती हैं, नहीं खुलतीं, तो एक नहीं खुल सकती। ऐसा उपाय नहीं है कि तुम एक खोल लो पंखुड़ी और सब कर लो बंद। इसलिए कनसनट्रेशन बाधा है, एकाग्रता बाधा है। और हम समझने के लिए कनसनट्रेशन रखते हैं कि एकाग्र करो चित्त को, यानी एक पंखुड़ी खोलो और सब बंद रखो। और कुछ सुनायी न पड़े, बस जो सुन रहे हैं, वही सुनायी पड़े। तब तुम्हें यह भी सुनायी न पड़ेगा। तुम बिल्कुल बंद हो जाओगे।
ध्यान रहे, या तो पूरे खुल सकते हो या पूरे बंद हो सकते हो। आधे खुलने, आधे बंद होने का उपाय नहीं है। तो पूरे तुम कब खुलोगे? पूरे तुम खुलोगे, जब तुम सिर्फ सुन रहे। तुमको समझना-वमझना नहीं है। कम्यूनियन की इच्छा भी बाधा है। क्यों कम्यूनियन की इच्छा है? क्या जरूरत है कि मुझे समझो! सुन लिया, इतना बहुत है। इतनी बड़ी कृपा है। चले गये। अब खुले रहे होंगे, तो समझ में आ जायेगा। बंद रहे होंगे, नहीं आयेगा। नहीं आयेगा, तो भी ठीक है। क्योंकि आने की आकांक्षा बंद करने वाली आकांक्षा है। आए ही--ऐसा क्या है! जिंदगी जितनी आ जाए उतनी बहुत है। जिसको हम सोचते हैं कि इसके कारण हमारा संवाद हो जाना चाहिए, समझ आ जाना चाहिए, वह उसकी ही वजह से नहीं हो रहा है। जिसको तुम कारण समझ रहे हो कि हम समझने को इतने तो आतुर हैं, इतने तो उत्सुक हैं, इतना सुनते हैं, इतना पढ़ते हैं, जाते हैं, यह है, वह है, सब कर रहे हैं, लेकिन समझ में नहीं आ रहा है! यह तुम कर रहे हो, इसलिए समझ में नहीं आ रहा है। इसको मत करो, तो आ जायेगा। और नहीं भी आया, तो हर्ज क्या है!
नहीं भी आया, तो हर्ज क्या है! तुम जैसे हो, काफी हो और अच्छे हो। तुम बहुत हो, लेकिन सब तरफ से हमें ईर्ष्याएं पैदा करवायी जाती हैं। तुम एक पेंटर के पास जाते हो, तो कभी ऐसा नहीं सोचते कि मैं पेंटिंग करूं, क्योंकि सबको पेंटर होने का ख्याल नहीं पकड़ा है। लेकिन तुम पेंटिंग को बड़ी सरलता से देख पाते हो। पेंटर कभी नहीं देख पाता है। पेंटिंग करने के लिए आतुर व्यक्ति भी नहीं देख पाता। तुम सहज देख पाते हो। तुम एक गीत पढ़ पाते हो, लेकिन एक कवि दूसरे कवि का गीत नहीं पढ़ पाता है। तुम कोई कवि नहीं हो, तो तुम पढ़ लेते हो। समझ लिया। नहीं समझा, नहीं समझा। कुछ खोया नहीं जा रहा है। लेकिन धर्म के संबंध में उल्टी बात हो गयी है। सबको धार्मिक होना है!
कवि सबको नहीं होना है, इसलिए कविता ज्यादा गहरे तक कम्युनिकेट करती है। और पेंटर सबको नहीं होना है, इसलिए पेंटिंग ज्यादा प्राणों तक उतरती है। धार्मिक सबको होना है इसलिए महावीर, बुद्ध या इस तरह के लोगों का संदेश कम्युनिकेट नहीं हो पाता।
तो जिंदगी है चारों तरफ, बहुत जिंदगी है। और तुम तुम्हारी तरह के हो,
वे उन तरह के हैं। क्या जरूरत है कि तुम मुझे समझो या किसी और को समझो। समझने की क्या जरूरत है? सुन लिया, यह भी काफी है। यह मुझ पर अनुग्रह है तुम्हारा, यह तुम्हारी कोई चेष्टा नहीं है। तुम नहीं सुनते, तो मैं क्या करता!

प्रश्नः विधायकता क्यों नहीं आती है?

विधायकता आनी ही क्यों?
वही तो मैं कह रहा हूं पूरे वक्त। विधायकता की जरूरत क्या है?

प्रश्नः घातकता आती है!

घातकता विधायकता का ही हिस्सा है। अगर विधायकता न आयेगी, तो घातकता
तो आ ही नहीं सकती। घातकता और विधायकता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों एक साथ रहते हैं, अलग नहीं रहते। विधायक आदमी घातक हो सकता है।

हिंसक आदमी अहिंसक हो सकता है, अहिंसक आदमी हिंसक हो सकता है। लेकिन एक ऐसा आदमी भी है, जिसको हिंसा-अहिंसा में नहीं तौला जा सकता है, और घातक-विधायकता में नहीं तौला जा सकता। जिस पर ये दोनों तराजू लागू नहीं होते, वैसे आदमी की बात करता हूं। मैं जो कह रहा हूं, वह घातकता नहीं है, वह निगेटिव नहीं है, न वह पाजिटिव है। मैं यह कह रहा हूं, दोनों के चुनाव हमें करने ही नहीं हैं। जो है, वह है। उसको निगेटिव पाजिटिव में भी तोड़ना नहीं है।
अभी कश्मीर में महेश जी से मिलना हुआ। उन्होंने एक बहुत बढ़िया बात कही--बढ़िया कि मैं हैरान हो गया। मेरी तो पाजिटिव की बात चल रही थी, तो उन्होंने कहा, फूल तो जो है वह पाजिटिव है और कांटा जो है वह निगेटिव है। तो मैं तो हैरान ही हो गया। हमको कांटा निगेटिव लग सकता है क्योंकि दुख देता है और फूल पाजिटिव लग सकता है, क्योंकि फूल सुख देता है। लेकिन हमारा सुख पाजिटिव और हमारा दुख निगेटिव है।
दुख और सुख दोनों पाजिटिव हैं, और कांटा और फूल दोनों पाजिटिव हैं। कांटे का अपना होना है, फूल का अपना होना है, और अगर हम गौर से देखें, तो कांटा ज्यादा पाजिटिव है, फूल से भी ज्यादा। क्योंकि फूल सिर्फ स्पर्श कर सकता है, कांटा प्रवेश कर सकता है। फूल क्षणभर के लिए होता है, कांटा जिंदगीभर के लिए हो सकता है। मुर्झाता भी फूल है। कांटा और फूल दोनों ही पाजिटिव हैं। हिंसा और अहिंसा दोनों पाजिटिव हैं। सिर्फ शब्द से फर्क थोड़े ही पड़ जाता है। वह एक का शीर्षासन करता हुआ रूप है। शीर्षासन कर लिया, तो उल्टा हो जाता है। हिंसक अहिंसक हो सकता है। बस उल्टा हो जायेगा। दूसरे को न मारे, अपने को मारे; अहिंसक हो गया! लेकिन मारना जारी है।
हिंसा और अहिंसा दोनों सचाइयां हैं। और दोनों को जो समग्ररूपेण स्वीकार करता है, उसके सामने एक बिल्कुल तीसरी सचाई आती है, जो पूरी सचाई है, जहां हिंसा-अहिंसा का भेद नहीं रह जाता। जो पूरी सचाई को स्वीकार करता है, वहां कांटे और फूल के भीतर जो रस बह रहा है, उसे वह दिखायी पड़ता है। कांटे में भी वही रस जा रहा है, फूल में भी वही रस जा रहा है। तब फूल और कांटे को वह दो में नहीं देखता। बाहर भीतर जो रस बह रहा है, वह उसको देखता है। वह रसधार जो कांटे को कांटा बना रही है, फूल को फूल बना रही है। और वह रसधार दोनों की एक है। उस रसधार में कांटा और फूल दोनों ही हैं, उस रसधार में कांटा और फूल एक हैं।
इसलिए मेरा मानना है कि महावीर भी समग्र जीवन को स्वीकार नहीं कर सके, क्योंकि हिंसा की अस्वीकृति है। कृष्ण ज्यादा समग्र जीवन को स्वीकार करते हैं। उन्हें हिंसा भी स्वीकार है। अगर हम बहुत गौर से देखें, तो कृष्ण की स्वीकृति बहुत टोटल है। इसलिए कृष्ण को समझना बहुत मुश्किल है और इसलिए कृष्ण की कोई भी व्याख्या हो सकती है। गांधी कृष्ण की व्याख्या ऐसी कर सकते हैं, जिससे वे अहिंसक मालूम पड़ने लगें क्योंकि कृष्ण पूरे हैं, उसमें से अहिंसा भी चुनी जा सकती है, उसमें से हिंसा भी चुनी जा सकती है।
जिंदगी पूरी है। उसमें कोई खंड ही नहीं है। इसलिए ख्याल इस मुल्क का बहुत अदभुत है। हम कृष्ण को पूर्ण अवतार कहते हैं, बाकी किसी को नहीं। इसका कुल कारण इतना है कि जिसने जीवन को उसके पूरे अर्थों में, जिसको हम अशुभ कहते हैं उसको भी, जिसको हम अंधेरा कहते हैं उसको भी, जिसको हम लंपटता कहेंगे उसको भी--यानी वह संत और लंपट एक साथ--ऐसी पूर्णता में।
तो मैं जो बात कह रहा हूं, बिल्कुल ही चुनाव की नहीं कर रहा हूं कि आप चुनाव करें। ऐसा जीवन है पूरा, उसको पूरा जीयें। और कोई उपाय नहीं है। यानी मैं ऐसा नहीं कह रहा हूं कि आप ऐसा जीने की कोशिश करें। आप ऐसा जीएंगे ही, अगर यह दिखायी पड़ जाए आपको। इसमें कोई चुनाव नहीं है। न कोई विधायक है, न कोई निगेटिव है। वे सब एक ही चीज के हिस्से और पहलू हैं। और जिस दिन एक आदमी ऐसी पूर्णता में जीए, उस दिन उसकी अहिंसा भी और है, उसकी हिंसा भी और है। उसका कांटा भी और है, उसका फूल भी और है। क्योंकि फासला न रहा वहां। वहां कोई फासला न रहा; वे एक ही चीज के दो छोर हो गये। तो उसकी हमें पकड़ नहीं है, क्योंकि हम तो चुनाव करके ही जीएंगे।

मॉरेलिटी ने, नैतिकता ने आदमी को बुरी तरह खंड-खंड किया है कि उसने जिंदगी को पूरा स्वीकार नहीं करने दिया। उसने कहाः यह गलत है, और यह सही है। और यह शुभ और यह अशुभ है। और यह मानने योग्य, यह छोड़ने योग्य, और यह भोगने योग्य, यह त्यागने योग्य है। तो जिंदगी को सब तरफ से तोड़-तोड़कर टुकड़े कर दिये हैं।
और अगर भविष्य में कभी भी कोई अच्छी मनुष्यता पैदा होगी, तो किसी न किसी गहरे अर्थ में उसको एम्मारल हो जाना पड़ेगा। उसको नीति से मुक्त होना पड़ेगा। मारल और इम्मॉरल एक ही मामला है। उसमें कोई फर्क नहीं है। कृष्ण एम्मारल हैं। इसलिए पहली दफा जब उपनिषदों का अनुवाद हुआ जर्मनी में तो ड्यूशन ने जो अनुवाद किया जर्मनी में, एक ही चर्चा चली कि उपनिषदों में कोई नैतिक शिक्षा नहीं है। इसमें यह नहीं बताया कि झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, हिंसा मत करो, पर-स्त्री को मत भगाओ; इसमें यह कुछ बताया नहीं गया है, यह कैसा धर्म-ग्रंथ है।
असल में उपनिषद बिल्कुल इम्मॉरल हैं। उपनिषद का ऋषि कैसे कह सकता है
कि पर-स्त्री को मत भगाओ, क्योंकि "पर" है कहां, तो पर-स्त्री कहां! अगर हम पूरी धारणा देखें, तो वह यह कह रहा है कि पर कौन है, और पर-स्त्री कौन है? इम्मॉरल है बिल्कुल। वह यह नहीं कहता कि चोरी मत करो, क्योंकि चोरी करने में मान लिया कि दूसरा है, दूसरे की संपत्ति है; और दूसरे की संपत्ति को चुरानेवाला मैं हूं। यह सब स्वीकृत हो गया है उसमें। उसमें व्यक्तिगत संपत्ति मान ली गयी, व्यक्ति मान लिया गया। और वह संपत्ति जिसकी है उसके पास होना शुभ है और वह मेरे पास होना अशुभ है, सब मान लिया गया है।
तो उपनिषद चुप हैं, क्योंकि इससे कोई मतलब नहीं है। बात बेमानी है। संपत्ति किसकी है? उपनिषद बिल्कुल इम्मॉरल हैं। इधर पांच हजार वर्ष की पीड़ा उसकी मॉरेलिटी है। और मॉरेलिटी करती क्या है कि आदमी को दो हिस्सों में बांट देती है। एक आदमी मारल हो जाता है, एक इम्मॉरल हो जाता है। और मारल आदमी के भीतर इम्मॉरल छिपा होता है और इम्मॉरल के भीतर मारल छिपा रहता है। पापी से पापी को खोजने जाओ, उसके भीतर महात्मा बैठा हुआ है। और महात्मा से महात्मा को खोजने जाओ, उसके भीतर पापी बैठा हुआ है। बस सिर्फ शक्लें उलटी हो गई हैं। कांशस अनकांशस के फर्क हैं। महात्मा कांशस में महात्मा है, अनकांशस में पापी है। और पापी कांशस में पापी है और अनकांशस में महात्मा है। इसलिए पापी निरंतर सपने देखता है महात्मा होने का और महात्मा सपने देखता है पाप का। यह बचाव नहीं है।
इम्मॉरल का मतलब यह है कि हम दोनों को स्वीकार करते हैं कि ये दोनों हैं। और उन दोनों को एक साथ स्वीकार करते हैं और एक साथ जीते हैं। लेकिन मारल वाले को डर लगता है कि कहीं वह इम्मॉरल न हो जाये बाद में। डर लगता है क्योंकि उसका तो तोड़ कर चुनाव है पूरा। और जिस दिन मारल और इम्मॉरल का अस्तित्व चला गया, उस दिन कांशस और अनकांशस का अस्तित्व चला गया। उस दिन आदमी एक है, फिर कोई अनकांशस नहीं है। अनकांशस पैदा हुआ मॉरेलिटी की वजह से। क्योंकि जिसको हमने दबाया वह अनकांशस बन गया। और अगर कुछ नहीं दबाया है तो आदमी इकट्ठा हो जाएगा, उसके लिए फिर कोई चेतन-अचेतन का फासला नहीं है, वह सब इकट्ठा है। वह जो इकट्ठा आदमी है उसकी सुरभि, उसका सौंदर्य, उसका संगीत दूसरा है।

सम्बोधि के क्षण
चौथा प्रवचन

असुरक्षा से संबोधि

एक फकीर था, बोधिधर्म। उसकी आदत थी कि वह हमेशा दीवाल की तरफ मुंह करके बैठता था और सुनने वाले को पीछे बैठना पड़ता था। वह तो उनकी तरफ मुंह करता ही नहीं था। चीन का सम्राट उससे मिलने आया, तो वह तो अपने दीवाल की तरफ मुंह किए बैठा हुआ था। सम्राट पीछे बैठा हुआ था। उसने कहाः यह कौन सा ढंग है? कृपा करके इस तरफ मुंह करिए। उसने कहा कि बहुत अनुभव के बाद दीवाल की तरफ मुंह करना सीखा हूं। सम्राट ने पूछाः मैं मतलब नहीं समझा। उसने कहाः आदमियों की भीड़ में भी मैंने दीवाल ही देखी है, और तब बड़ी नाराजगी आती थी, तो फिर मैं दीवाल की तरफ मुंह करके बैठता हूं। अब नाराज भी नहीं होता मन, क्योंकि अब तो दीवाल ही है आगे, हर्जा क्या है, यानी अब तो दीवाल ही है। अब तो कोई बात नहीं। लेकिन आदमी जब दीवाल की तरह मालूम पड़ते हैं, तब बड़ा कष्ट होता है। वह जिंदगी भर दीवाल की तरफ मुंह करके ही बोलता रहा।
उसने सम्राट से कहा कि मैं तुम पर दया करके इस तरफ मुंह किए हुए हूं, नहीं तो मैं बड़ा नाराज हो जाऊंगा। क्योंकि आदमी को दीवाल मानने में कष्ट है, और भीड़ तो बिल्कुल ही दीवाल है। वहां कोई है ही नहीं जो आपको सुन रहा है, समझ रहा है, जो आपसे जुड़ रहा है। और आप किससे बोल रहे हैं? किसी से नहीं बोल रहे हैं, आप खुले आकाश से बोल रहे हैं, भीड़ सुन रही है। तो बोला तो जा सकता है निकट ही। और, और भी बड़ी कठिनाई है क्योंकि जो हम बोलते हैं वह बोलने वाले पर ही निर्भर नहीं होता; वह आधा तो सुनने वाले पर निर्भर होता है। क्योंकि मैं क्या बोलूंगा जयराज जी से, वह आधा उन पर निर्भर होगा। और विजय जी से क्या बोलूंगा वह आधा उन पर निर्भर होगा। वे मुझसे क्या निकलवा लेंगे, वह मुझे किस कोने में खड़ा कर देंगे कि मुझे क्या कहना पड़ेगा, यह उन पर निर्भर है। भीड़ कुछ नहीं निकालती, भीड़ कुछ निकाल ही नहीं सकती।
एक-एक व्यक्ति के एनकाउंटर में ही कुछ अर्थ है।

अर्जुन न होते तो शायद कृष्ण जी का उपदेश ही कुछ और ही होता?

कुछ नहीं, कुछ और ही होता, अर्जुन के बिना और ही होता। वह अर्जुन ही है
जो उस उपदेश को खींच लेता है। यानी ऊपर से ऐसे ही दिखता है कि बोलने वाला बोल रहा है। इतनी सरल बात नहीं है। सुनने वाला भी बुलवा रहा है। वह निकाल रहा है, वह क्या निकाल सकता है बहुत कुछ उस पर निर्भर करेगा। और भीड़ में कोई भी नहीं है वहां।
इधर मैं बहुत परेशान हुआ हूं, कि दिन-रात भीड़ ही भीड़ में हूं। और भीड़
के पास न आत्मा होती है, न आंख होती है। इसलिए एक-एक व्यक्ति से सीधे आमने- सामने बात करने का जो रस है, मजा है, वह बात ही और है! लेकिन आमतौर से नेतागण, गुरुजन सीधे बात नहीं करना पसंद करते हैं; सीधे बात करना पसंद नहीं करते हैं।

सोचने वाले आदमी को पसंद नहीं करते।

सोचने वाले आदमी को भी बरदाश्त नहीं करते। हां, वे भीड़ ही चाहते हैं। क्योंकि भीड़ बिल्कुल मशीन है। भीड़ से कोई डर नहीं, भीड़ खंडन नहीं करती, भीड़ उलट कर जवाब नहीं देती। भीड़ से कोई टक्कर नहीं, कोई चुनौती नहीं। भीड़ उधर खड़ी है, डेड मॉस है। आप बोले चले जा रहे हैं जो आपको बोलना है, जो कहना है आप कहे चले जा रहे हैं। लेकिन जब आप एक व्यक्ति के सामने खड़े होते हैं, तो एक जिंदा आदमी है और वह आपको कुछ भी नहीं बोलने देगा। वह रोकेगा, टोकेगा भी, गलत भी कहेगा, लड़ेगा भी, झगड़ेगा भी। और जब दो व्यक्ति बातचीत करेंगे, तो उनमें एक बोलने वाला, दूसरा सुनने वाला, ऐसा नहीं रह जाता, वे दोनों ही बोलने वाले होते हैं, दोनों ही सुनने वाले होते हैं। और उसमें ऐसा नहीं होता है कि एक सत्य जानता है, और दूसरा नहीं जानता। उसमें दोनों के

संघर्षण से सत्य निकलता है। लेकिन गुरु को ख्याल होता है कि सत्य मेरे पास है, मुझे देना है, निकालने का सवाल कहां है? दे देना है तो आप चुपचाप ले लो और रास्ते पर हो जाओ।
इसलिए आमतौर से धर्मगुरु हैं, नेता हैं, भीड़ को चलाने वाले लोग हैं व्यक्ति को पसंद नहीं करते हैं। व्यक्ति के साथ डर जाएंगे। और यह बड़ी आश्चर्य की बात है कि जो लोग बड़ी-बड़ी भीड़ को भी प्रभावित करते हैं, वे एक छोटे से व्यक्ति से घबड़ा जाएंगे, कंप जाएंगे। हिटलर जैसा आदमी लाखों लोगों को कंपाएगा, लेकिन अकेले कमरे में एक आदमी के साथ नहीं बैठ सकता है घंटे भर। इतना डर जाएगा। शादी नहीं की है हिटलर ने मरने के दिन तक, सिर्फ इसीलिए कि और किसी को तो कमरे के बाहर रोक सकते हैं; लेकिन एक औरत को, जिससे शादी कर लेंगे वह कमरे में साथ होगी। और साथ होने से इतना डर लगता है एक आदमी से! क्यों? क्योंकि भीड़ में आदमी, भीड़ में नेता जो है वह अपने को व्यवस्थित कर लेता है। वह जैसा दिखाना चाहता है, वैसा हो जाता है। लेकिन चौबीस घंटे थोड़े ही पोज कर सकते हैं। चौबीस घंटे तो मुश्किल हो जाएगी, तुम मर जाओगे। तो हिटलर ने किसी को दोस्त नहीं माना जिंदगी भर। उसके, जो उसके साथ थे वे कहते थे, या तो उसके तुम दुश्मन हो सकते हो या उसके अनुयायी हो सकते हो। दोस्त होने का कोई उपाय नहीं है। कोई उसके कंधे पर हाथ नहीं रख सकता है। और कोई उसके पास ज्यादा देर नहीं बैठ सकता है। वह हमेशा मंच पर होगा, आप हमेशा मंच के नीचे होंगे। साथ होने का उपाय नहीं है। नेता छोड़ते ही नहीं उपाय आपको। हां, वह नहीं छोड़ता, वह नहीं छोड़ता, क्योंकि... हां, वह सब चला जाएगा।
व्यक्ति से सीधा उलझना बहुत कठिन बात है। और एक छोटे से छोटा आदमी इतना अदभुत आदमी है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन भीड़ में कोई भी कोई नहीं है, वह तो नोबडीनेस है कोई भी कोई नहीं है। वहां बेधड़क, वहां कुछ भी नहीं है। वह नथिंगनेस है। इधर मुझे तो निरंतर ऐसा लगता है कि सीधा एक-एक व्यक्ति से बाद में मुझे, लेकिन इसका कुछ अर्थ मिला। कम्युनिकेशन है, संवाद है कुछ। इसलिए तय किया है...

आप तो बहुत घूमते हैं। आपको लगता है कम्युनिकेट करना आसान है इंडिविजुअल के साथ? वह स्टेंडर्ड ऑफ इंटेलिजेंस है कंट्री में। यह बहुत ही रेयर होती है... । नहीं-नहीं आप हमें ही अपने, या काम में, पेशे में, शहर में लगता है कि किसी इंटेलिजेंस आदमी से मिल कर एक अजीब खुशी होती है। बड़ी कम खुशी मिलती है कि बात करते हैं जैसे दीवाल दीवाल से टकरा कर वापस आ जाते हैं। आपको आज इस देश में इंटेलेक्चुअल स्टेंडर्ड क्या लगता है?

बहुत कम है, बहुत कम है। लेकिन बहुत कम होने का कारण यह नहीं है कि बुद्धिमान लोग मुल्क में कम हैं। असल में बहुत गलती हो गई। शिक्षित आदमी बुद्धिमान समझा जा रहा है, इसलिए दिक्कत हो गई है। और हम उसी में खोजते हैं बुद्धिमानी। एजुकेटेड को और इंटेलिजेंस को हम एकसाथ इकट्ठा माने हुए हैं। कोई आदमी शिक्षित है ठीक से, डिग्री है उसके पास तो वह बुद्धिमान होगा, यह जरूरी नहीं है।

डिग्री जरूरी नहीं है।

नहीं, डिग्री जरूरी नहीं है, यह नहीं कह रहा। यह कह रहा हूं कि डिग्री होने से आदमी इंटेलिजेंट है, यह जरूरी नहीं है। बल्कि सच यह है कि डिग्री पाने का हमारा जो रास्ता है, उसमें इंटेलिजेंट आदमी पिछड़ जाएगा, स्टुपिड आगे हो जाएगा।
हमारा जो रास्ता है, जो ढंग है, क्योंकि हमारी सारी शिक्षा बहुत गहरे में स्मृति की परीक्षा है, बुद्धिमत्ता की नहीं। और बुद्धिमान आदमी जो है वह बहुत जल्दी भूलता है। और बुद्धिहीन आदमी जो है वह कुछ चीजों को पकड़ लेता है और कभी नहीं छोड़ता है। और पकड़े इसलिए रखता है कि नया कुछ समझने का तो उपाय नहीं है, यही उसकी संपत्ति है। बुद्धिमान आदमी समझता है और छोड़

देता है। क्योंकि क्या पकड़ना है? कल जब फिर सामना होगा जिंदगी का, तो फिर बुद्धिमत्ता काम कर लेगी। तो बुद्धिमान स्मृति इकट्ठी नहीं करता, बुद्धू स्मृति इकट्ठी करता है। और स्मृति की जो प्रशिक्षण है, उसमें हम खोजने जाते हैं कि इंटेलिजेंट आदमी कहां है? तो शिक्षित आदमी जरूरी रूप से बुद्धिमान आदमी नहीं है। लेकिन अगर हम यह भ्रम छोड़ दें और सहज आदमी में खोजने चले जाएं, तो बहुत बुद्धिमान लोग दिखाई पड़ेंगे।
कभी गांव में एक निपट गंवार जिसको हम कहेंगे, वह बुद्धिमान हो सकता
है। लेकिन हमारे जो मेजरमेंट हैं, उनमें हो सकता है वह न पकड़ में आ सके, क्योंकि हमने मेजरमेंट गलत बना रखे हैं। इसमें उसकी गलती नहीं है। बुद्धिमत्ता तो बहुत है, लेकिन शिक्षित होने को बुद्धिमत्ता समझें, तब फिर कठिनाई हो जाती है। और, और वैसे आदमी से... क्योंकि बुद्धिमत्ता के भी बहुत रूप हैं। अक्सर यह होता है कि जो मेरी बुद्धिमत्ता है, वैसे ही आदमी को मैं बुद्धिमान समझ पाता हूं। और बुद्धिमत्ता की बहुत दिशाएं हैं, बहुत आयाम हैं, डाइमेन्शंस बहुत हैं। यानी बुद्धिमत्ता कोई एक ऐसी चीज नहीं है कि वह एक ही तरह की होती है।
अब एक पेंटर है। उसके पास एक तरह की वि.जडम है। उसके पास एक तरह की बुद्धिमत्ता है। और हो सकता है अगर गणितज्ञ से उसकी मुलाकात हो, तो गणितज्ञ समझे कि यह आदमी इटेंलिजेंट नहीं है। क्योंकि गणितज्ञ के पास एक तरह की बुद्धिमत्ता है, जहां दो और दो चार ही होते हैं। जहां सब बंधा हुआ, फिक्स्ड है। पेंटर की बात बहुत अलग है।
वॉनगाग का एक, एक चित्र है। जिसमें उसने दरख्त इतने बड़े बनाए हैं कि चौखटे के पार निकल गए हैं। पेंटिंग छोटी पड़ गई है, और पेंटिंग का आकाश भी छोटा पड़ गया है, और दरख्त हैं कि पार चले जा रहे हैं, और सूरज वगैरह ऐसे छोटे-छोटे से कोने में पड़े हैं जिनका कोई हैसियत नहीं। उसका एक मित्र उसे देखने आया और उस मित्र ने कहा कि यह क्या पागलपन है? दरख्त इतने बड़े और सूरज इतना सा? इसमें कोई गणित भी तो है! यह कैसा गणित है? दरख्त इतने बड़े सूरज इतना सा? तुम्हें कुछ प्रपोर्शन का, अनुपात का ख्याल नहीं? अनुपात की जो भाषा है, वह गणित की भाषा है। प्रपोर्शन की जो बात है वह गणित की भाषा है। तो उस चित्रकार ने कहाः मैं कोई गणितज्ञ नहीं हूं, और सूरज ने कोई गणित से सहमत होने को ठेका ले लिया है? मैंने तो कुछ और ही बात चित्रित की है। गणित से इसका कोई लेना-देना नहीं। तो उस आदमी ने पूछाः और क्या चित्रित किया है? दरख्त हैं। उसने कहा कि नहीं, मैं दरख्तों को कभी भी ऐसा नहीं देख पाया। मैं उनको, दरख्तों को सदा ऐसे ही देख पाया हूं कि वे पृथ्वी की आकांक्षाएं हैं, आकाश को छूने की। दरख्त जो हैं वह पृथ्वी की आकांक्षाएं हैं आकाश को छूने की। एंबीशंस हैं पृथ्वी की।
तो पृथ्वी अभी तक नहीं जीत पाई है, लेकिन हमें क्या बाधा है? हम उन्हीं
को जीता देते हैं। हम आकाश को... यह जो आदमी है, इसको वह गणित वाला कहेगा, ठीक है, फिजूल हुआ यह। यह नापना था, तौलना था। नाप और तौल की एक दुनिया है, वहां की एक बुद्धिमत्ता है। लेकिन एक और तरह की बुद्धिमत्ता होती है। अब एक संगीतज्ञ है, उसकी और तरह की बुद्धिमत्ता है। एक तार्किक है, उसकी और तरह की बुद्धिमत्ता है। एक प्रेमी है, उसकी और तरह की बुद्धिमत्ता है। और एक किसान है, उसकी और तरह की बुद्धिमत्ता है। एक मिट्टी खोदने वाला है, उसकी और तरह की बुद्धिमत्ता है। लेकिन अटल सच बात यह है कि जितने तरह के लोग हैं, उतनी तरह की बुद्धिमत्ताएं हैं। और हम जब भी तौलने जाते हैं, तो हमारी बुद्धि को हम कसौटी बना लेते हैं। वह दूसरा आदमी उस कसौटी पर नहीं बैठता; क्योंकि वह दूसरा आदमी हमारे जैसा नहीं है। तब कठिनाई हो जाती है। एक मुझे बहुत प्रीतिकर रहा है हमेशा, एक फकीर है, उस पर गांव के लोगों
ने राजा को इल्जाम लगा दिया है और कह दिया है कि यह जो फकीर है यह नास्तिक है, अधार्मिक है। और इसके बोलने पर रुकावट डालनी जरूरी है, सारा गांव बरबाद हो जाएगा। तो राजा ने उस फकीर को बुला लिया। और उस फकीर ने कहा कि किसने तुम्हें यह खबर दी? क्योंकि मुझे पता ही नहीं कि नास्तिकता, अधार्मिकता तौलने का मापदंड कहां है? मैं तो उसकी खोज ही कर रहा हूं। मुझे पता चल जाए, तो मैं भी उस तराजू पर बैठ कर अपने को तौल लूं कि मैं आदमी

धार्मिक हूं कि अधार्मिक? कहा किसने? उसने कहा कि मेरे ये पंडित बैठे हैं, इन्होंने कहा है। तो उसने कहा कि इन पंडितों से, इसके पहले कि मैं अपनी जांच करवाऊं, एक छोटा सा सवाल पूछना है।
पंडित तैयार हो गए। ऐसे पंडित हमेशा तैयार होते ही हैं, वे रेडीमेड ही होते हैं। उसके पास कुछ, उसके पास कुछ ऐसा नहीं होता कि वह किसी चीज का मुकाबला करता हो। उसके पास चीजें तैयार होती हैं। मुकाबला सिर्फ बहाना होता है, खूंटियां होती हैं, जिन पर जो उसके दिमाग ने सदा से तैयार कर रखा है, वह टांग देते हैं। वे तैयार हो गए। उस फकीर ने एक-एक कागज उनको दे दिया और कहा कि मैं एक प्रश्न पूछता हूं, तुम सब उत्तर लिख दो। तो उन्होंने सोचा कि कोई कठिन प्रश्न पूछेगा। और मजा यह है कि सब कठिन प्रश्नों के उत्तर तैयार हैं। सरल प्रश्न मुश्किल बात है। क्योंकि उसका उत्तर कहीं लिखा होता नहीं। उस फकीर ने बड़ा सरल पूछा। उसने पूछा, वॉट इ.ज ब्रेड? रोटी क्या है? उन्होंने सोचा था, पूछेगा, ब्रह्म क्या है? परमात्मा क्या है? मोक्ष क्या है? प्रेम क्या है? यह कैसा गंवार आदमी आ गया है कि जो पूछता है कि रोटी क्या है? यह भी कोई सवाल है? यह कोई तत्वज्ञान है?
उन्होंने कहाः यह भी कोई सवाल है? उसने कहाः मैं तो बिल्कुल नासमझ आदमी हूं, बस ऐसा ही सरल सवाल पूछ सकता हूं। आपकी बड़ी कृपा होगी, जवाब दे दें। आप इस पर लिख दें। राजा भी हैरान हुआ कि इसको काहे के लिए पकड़ लाए हैं? यह क्या नास्तिक होगा? यह बेचारा, ऐसी सरल बातें भी अभी इसे पता नहीं कि रोटी क्या है! इसके सवाल कोई मैटाफिजिक्स के, कोई ज्ञान के तो नहीं हैं। पंडितों ने लिखने में बड़ी मुश्किल में पड़ गए; क्योंकि कहीं नहीं पढ़ा था कि रोटी क्या है? पढ़ा ही नहीं था किसी किताब में, लिखा ही नहीं था किसी ब्रह्मसूत्र में, किसी गीता में, किसी कुरान में! कहीं भी नहीं लिखा है कि रोटी क्या है। बड़ी मुश्किल में पड़ गए।
एक ने लिखा है कि रोटी एक तरह का भोजन है। अब और क्या करे। दूसरे ने लिखा है कि रोटी--गेहूं, पानी और आग का जोड़ है। किसी ने लिखा है कि रोटी बड़ी ताकतवर चीज है। किसी ने कहा, रोटी भगवान का वरदान है। किसी ने लिखा, किसी ने लिखा कि रोटी क्या है, यह कहना मुश्किल है, क्योंकि रोटी सब कुछ है। खून भी वही है, हड्डी भी वही है, मांस भी वही है, मज्जा भी वही है। सभी वही है। तो रोटी क्या है, कहना बहुत मुश्किल है। रोटी बड़ी मिस्ट्री है। एक ने लिखा है कि पहले यह पता चल जाए कि पूछने वाले का मतलब क्या है, तभी मैं बता सकता हूं।
सातों कागज लेकर राजा के सामने उसने कहा, ये कागज देख लें। अब इन पंडितों को यह भी पता नहीं है कि रोटी क्या है? और ये सात इस पर भी राजी नहीं हैं कि रोटी क्या है? ये इस पर कैसे राजी हो गए कि ईश्वर क्या है? और आस्तिकता क्या है? और नास्तिकता क्या है? इन्होंने कैसे तौल लिया वह मुझे पता बता दें आप? तो मैं भी उस तराजू पर चढ़ जाऊं। अभी मुझे ही पता नहीं है कि मैं कौन हूं? नास्तिक हूं कि आस्तिक हूं। इनको कैसे पता चल गया है?
एक तरह की बुद्धिमत्ता उन पंडितों के पास भी थी। किताबों में जो लिखा
था वह जानते थे। और यह आदमी बड़ा होशियार है, वह किताब की बात ही नहीं पूछी। यह आदमी भी एक तरह की बुद्धिमत्ता लिए हुए है, जो उससे गहरी है। यानी इसके पास भी एक वि.जडम है। हम, अक्सर होता है कि क्या कठिनाई है कि हमें बुद्धिमान आदमी नहीं मिलता है; क्योंकि हमारी जो बुद्धिमत्ता है, हम उसी को तौलते चलते हैं। और हां, और दूसरी बात यह होती है कि जाने-अनजाने, जो हमसे सहमत हो जाए वह बुद्धिमान मालूम पड़ता है, जो कि ठीक नहीं है। जो कि ठीक नहीं है। मुश्किल तो यही है कि जो बुद्धिमान है वह सहमत जरा मुश्किल से हो सकेगा। और हमारा मन कहता है कि जो सहमत हो जाए उसको हम बुद्धिमान मान लें। सरल है वह बात। बहुत सरल है, लेकिन जरा कठिन है सहमति। जो सहमत हो जाए वह बुद्धिमान आदमी है! यानी हमारी नजर में उसकी बुद्धिमत्ता हमारी सहमति से हम तौल लेते हैं। और जब कि बुद्धिमान आदमी का सहमत होना जरा मुश्किल है। अपनी नजर है, अपनी दृष्टि है, अपना सोचना है।
और मैं मानता यह हूं कि कोई आदमी किसी से सहमत हो ही क्यों? असल में सहमति की आकांक्षा बहुत गहरे में वायलेंस है। जब मैं यह आकांक्षा करूं कि

मुझसे आपको सहमत होना चाहिए, तो मैं किसी न किसी गहरे तल पर आपको मिटाना चाहता हूं, और अपने को उसमें बिठाना चाहता हूं। मैं आपको मारना चाहता हूं। हां, आपको डॉमिनेट करना चाहता हूं, मारना चाहता हूं। तो हम यह भी ख्याल में रखते हैं कि जो हमसे सहमत हो जाए, वह बुद्धिमान है। और इसीलिए यह हो जाता है कि गुरुओं और महात्माओं के पास निपट बुद्धू इकट्ठे हो जाते हैं, जो उनसे सहमत हो जाते हैं। वह सोचते हैं कि बहुत अच्छे लोग इकट्ठे हो गए हैं। और वे जो, वे जो इकट्ठे हो गए हैं वे वही लोग हैं जो उनसे सहमत हो जाते हैं। वाल्तेयर के खिलाफ कोई एक आदमी था, डिडरो। और उसने वाल्तेयर के खिलाफ बहुत सी बातें कहीं। और वह एक दिन वाल्तेयर को रास्ते पर मिल गया। तो उसने वाल्तेयर से कहा कि आप तो सोचते हो कि इस आदमी को मरवा डालूं। तो वाल्तेयर ने कहाः क्या कहते हो? घर चलो। आज मैंने डायरी में तुम्हारे संबंध में एक वाक्य लिखा है। वह घर उसे लाया। डायरी में उसने एक वाक्य लिखा है कि जो मुझसे असहमत हैं और मेरे विरोध में हैं, उन्हें उस तरह के सोचने का अधिकार और हक है और उस तरह बोलने का। अगर इसकी लड़ाई में मुझे अपनी जान गंवानी पड़े, तो मैं जान गंवा दूंगा। लेकिन वे गलत हैं, इसे कहने का अधिकार मैं मानता रहूंगा। मैं जान लगा दूंगा उनके इस अधिकार के लिए कि उन्हें यह सोचने का हक है, लेकिन वे गलत हैं यह कहने का हक मुझे है।
आखिर इतना हमें ख्याल हो कि हम सहमति न खोज रहे हों, तो बहुत बुद्धिमान लोग मिल सकते हैं। लेकिन सहमति खोजने की वजह से कठिनाई ब.ढ़ जाती है। और फिर यह होता है कि जाने-अनजाने किसी न किसी रूप में हम उस आदमी को पसंद करते हैं, जो किसी न किसी भांति हमारे जैसा है। जिससे हमारी कांफ्लिक्ट न हो। और दुख की बात यही है कि जो हमारे जैसा है वह हमें कोई रस नहीं दे सकता है। रस हमें वही दे सकता है, जो हमसे मतभेद रखता हो। उतना ही रखते हैं। हां, वह गलती में है और इसलिए हम भूल में पड़ कर थोड़े दिन में पछताने लगते हैं।
हम हमेशा यह कर लेते हैं कि जो हमारे जैसा है उसको चुन लेते हैं। पहले मौके पर वही अच्छा लगता है, क्योंकि वे हमारे ही दर्पण हैं जो हमें ही दिखाई पड़ जाते हैं। फिर चार दिन बाद मुश्किल शुरू हो जाती है; क्योंकि यह आदमी तो बिल्कुल हमारे जैसा है। बोरिंग तो लाने वाला है। पश्चिम में जो सारे के सारे प्रेम-विवाह की असफलता है, उसकी बुनियाद में कारण यह है। हर व्यक्ति उसको प्रेम कर लेता है पहले मौके पर, जो उसे अपने जैसा लगता है। लेकिन जब साथ रहता है, तो अपने जैसा आदमी सुखद नहीं मालूम पड़ता। भिन्न चाहिए, भेद चाहिए। उसकी अपनी रुचि, अपना व्यक्तित्व चाहिए, और वह बिल्कुल मेरे जैसा है, तो वह कॉपी छाया मालूम होने लगता है। वह व्यर्थ हो जाता है। छाया, कॉपी मालूम होने लगता है। वह व्यर्थ हो जाता है। उसमें हमें कोई रस नहीं रह जाता है। और एक बात है कि उसे हमें जीतने की आगे कोई जरूरत नहीं रह जाती है। वह जीत ही लिया गया है, बात खत्म हो गई है। तो वह अक्सर हो जाता है। और इसलिए अपने से विरोधी को प्रेम करने की क्षमता जब तक न बढ़े, तब तक न तो हम कीमती मित्र बना सकते हैं, न कीमती पत्नी खोज सकते हैं, न कीमती पति खोज सकते हैं, न कीमती साथी खोज सकते हैं। हम खोज ही नहीं सकते, अपने से विरोधी को जब तक हम प्रेम करने की क्षमता न विकसित कर ले। इसलिए पता नहीं चलता है कि कितनी बुद्धिमत्ता है। बुद्धिमत्ता तो बहुत है, बहुत है। कई बार ऐसी जगह होती है, जहां हम कभी नहीं सोचते हैं।
अभी तक का कोई डेढ़ सौ दो सौ वर्षों में कालेज के प्रोफेसर हैं, ये बुद्धिमान समझे जाते रहे हैं। लेकिन दुनिया में जितने आविष्कार किए हैं वे उन लोगों ने किए हैं जिनका युनिवर्सिटी से कोई संबंध नहीं है। यानी प्रोफेसर्स के नाम का आविष्कार न के बराबर है। भूल-चूक है। हां, वे बुद्धिमान होने का... और ऐसी जगह से, ऐसे अनजान कोने से कोई आदमी कुछ खोज लेता है जिसका हम कभी ख्याल ही नहीं करते कि यह भी बुद्धिमान हो सकता है। कोई ख्याल ही नहीं उठ सकता है। बहुत बार ऐसा होता है कि रॉ-इंटेलिजेंस जो है, वह दिखाई नहीं पड़ती है। कच्ची युनिवर्सिटी से नहीं गुजरी है, पक नहीं गई है, कच्ची है, दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन कच्ची बुद्धिमत्ता में विकास की ज्यादा संभावनाएं होती है और बहुत उपाय, मार्ग होते हैं। और पकी हुई

बुद्धिमत्ता पके हुए घड़े की तरह हो जाती है जिसको अब नहीं ढाला जा सकता। कच्चा घड़ा है, वह अभी बहुत तरह से शक्ल ले सकता है। तो रॉ-इंटेलिजेंस तो बहुत है दुनिया में। और भी बड़े मजे की स्थितियां हैं कि यह जो जिसको हम बुद्धिमान, समझदार कहते हैं, जिस प्रक्रिया से, हम इसे गुजारते हैं जिस प्रक्रिया को, जिस प्रोसेस से, वह सब बुद्धिमत्ता छीन लेती है।
हेनरी थारो था, तो वह विश्वविद्यालय से पढ़ कर लौटा। वह अपने गांव का पहला ग्रेजुएट था। तो गांव के लोगों ने स्वागत किया। और उस गांव के एक बूढ़े आदमी ने स्वागत में कहा हेनरी थारो के लिए कि यह हमारे गांव का पहला स्नातक है, इसलिए मैं इसको आदर देने नहीं आया हूं। मैं तो आदर देने इसलिए आया हूं कि यह लड़का विश्वविद्यालय से अपने को बचा कर वापस लौट आया; कहा कि विश्वविद्यालय से अपने को बचा कर वापस लौट आया है। बिल्कुल अभी भी ताजा है, बासा नहीं पड़ गया। इसको मार नहीं पाए इसके प्रोफेसर, गुरु इकट्ठे होकर इसकी जान नहीं ले पाए। यह अब भी सोचता है। और अब भी फ्रेश पॉइंट्स पर, ताजे दृष्टिकोण पर खड़ा हो जाता है। और अभी भी इस तरह भाव नहीं इसमें पैदा हो गया है कि मैं जान लिया हूं। अभी भी इसमें ह्युमिलिटी है कि खोजता हूं, कुछ पता नहीं है। वह इसमें है, मैं इसलिए इसका स्वागत करने आया हूं।
और यह सच बात है कि यह बहुत रेयर घटना है। हमारी जो पच्चीस साल की तालीम की व्यवस्था है, वह बुद्धिमत्ता को मारने की है। संभावना भी हो, तो उसको छांट डालने की है। क्योंकि बुद्धिमत्ता बहुत गहरे में विद्रोह है। और न समाज विद्रोह चाहता है, न बाप विद्रोह चाहता है, न मां, न गुरु, न नेता, कोई विद्रोह नहीं चाहता। और जिस आदमी में थोड़ी भी बुद्धि है, वह विद्रोही हो जाएगा। क्योंकि उसकी बुद्धि पच्चीस जगह कहेगी कि यह गलत है। पूछेगा, क्यों है? हजार सवाल उठाएगा। और सब जवाब जो पुराने पके-पके हैं उन सबको गड़बड़ कर देगा, सबको हिला देगा, डुला देगा और चीजों को अराजक कर देगा।
तो इसलिए बुद्धि का डर रहा है दुनिया में हमेशा। इसलिए बुद्धिमान आदमी पैदा न हो पाए, इसकी हमारी सारी चेष्टाएं हैं। सारी चेष्टाएं है। बाप भी बेटे से कहता है कि जो आज्ञाकारी है, वह अच्छा है। लेकिन जिसमें थोड़ी बुद्धि है, वह एकदम आज्ञाकारी नहीं भी हो सकता है। आज्ञा मान सकता है, आज्ञा तोड़ भी सकता है। वे दोनों संभावनाएं सदा मौजूद रहेंगी। वह कभी न भी कह सकता है, हां भी कह सकता है, लेकिन हां ऐसी नहीं होगी कि जिसके भीतर का न बिल्कुल मार डाला गया है। मगर बाप को यह पसंद नहीं पड़ेगा कि लड़का जो न भी कह देता हो। बाप के अहंकार के विरोध में है यह बात कि कोई लड़का और न कहे! स्कूल का शिक्षक भी नहीं चाहता कि कोई न कहे। देश का नेता भी नहीं चाहता कि कोई न कहे। सब चाहते हैं आज्ञा, आज्ञा चुपचाप मानो और चलो। तो, बुद्धिमत्ता नष्ट हो जाएगी, जंग खा जाएगी।
बहुत गहरे में समझा जाए तो बुद्धि आती है निगेटिव से सदा ही। उसमें जो निखार आता है, वह इनकार से आता है। कि जैसे कोई पत्थर की मूर्ति बनाता हो, तो छेनी से तोड़ डालता है जगह-जगह से। वह मूर्ति पत्थर से नहीं बनती, वह मूर्ति छेनी से और तोड़े गए टुकड़ों से निर्मित होती है अंततः। जो छान कर काट डाला गया है, उससे निर्मित होती है। नहीं तो पत्थर तो पत्थर ही है, उसमें अगर तोड़ नहीं होती, तो बना रह जाता है। तो प्रतिभा भी निषेध से, निगेटिव से, काटने से, तोड़ने से, इनकार से बनती है। और कोई पसंद नहीं करता है इसको, तो हम सब मार डालते हैं मिल कर। मैं भी उस आदमी को पसंद करूंगा कि जो मैं कहूं कि यह, वैसा कहे हां, ऐसा ही। यह मेरे अहंकार को बड़ा गहरा तृप्ति होती है इस बात की कि जो मैं कहता हूं वही ठीक है, और अकेला मैं नहीं मानता और लोग भी मानते हैं। इसलिए लोग अनुयायियों को खोजने निकल जाते हैं। जितने लोग अनुयायियों को खोजते हैं, यह बहुत गहरे में, इन्हें भरोसा नहीं है कि जो यह कह रहे हैं वह ठीक है। जब बहुत लोग भी इसको ठीक कहते हैं, तब उनको भी भरोसा आता है कि यह ठीक ही होगा। जब इतने लोग मानते हैं, तो गलत हो कैसे सकता है?
जो आदमी जितना भीतर भरोसे से कम है, भरोसा कम है जिसमें अपनी बात का,
वह उतने अनुयायी खोजेगा।

अनुयायी जो हैं वे सब्स्टीट्यूट हैं, कांफिडेंस लाने वाले हैं। तो वह सबको राजी करना चाहेगा, सहमत करना चाहेगा, और वह तोड़ेगा, लोगों की प्रतिभाएं नष्ट करेगा। अब तक आदमी ने प्रतिभा को जगने नहीं दिया, बुद्धिमत्ता को पैदा नहीं होने दिया। इसलिए वह कम है; वैसे वह बहुत है। और अगर उसे फूटने का मौका मिले, तो दुनिया अनूठी हो जाए, लेकिन तब उस दुनिया में नियम थोड़े कम हो जाएंगे। उस दुनिया में ढांचे टूट जाएं। उस दुनिया में व्यक्ति हों, समाज कम होगा। जितनी बुद्धिमत्ता होगी, उस दुनिया में इंडिविजुअल्स होंगे, सोसाइटी मिट जाएगी। इंडिविजुअल डिसिप्लिन होगी। इनर डिसिप्लिन होगी जो उसके भीतर से आती है।
तो उस खतरे से बचने के लिए बुद्धिमान को हम पैदा नहीं होने देते हैं। इसलिए सुकरात को जहर पिला देते हैं, जीसस को सूली पर लटकाते हैं। हमने बुद्धिमान आदमी के साथ अच्छा व्यवहार ही नहीं किया कभी। तो वह पैदा कैसे हो? वह उसका होना बिल्कुल अव्यावहारिक है, क्योंकि हम सब मिल कर उसको मार डालते हैं। इसलिए नहीं दिखता विजयजी। वैसे तो बुद्धिमानी बहुत है। हर आदमी में है। ऐसे तो जन्म से उसको मिलती ही है। अगर वह खुद ही उसको खोता चला जाए, तो बात अलग है। सौदा कर लेता है वह, कनवीनियंस खरीद लेता है, इंटेलिजेंस खो देता है। कुछ सौदा है। सुविधा इसी में है कि ज्यादा बुद्धिमानी न विकसित की जाए। सुविधा है बहुत इसमें।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बिल्कुल यही है कारण। हालत ही यही है। बात ही यही है। सब जगह इंटेलिजेंस को नुकसान पहुंचा है।... सब जगह इंटेलिजेंस को नुकसान पहुंचा है। नहीं उनको नहीं बचने दिया जाएगा, उनको खत्म ही कर दिया जाएगा। इसलिए नहीं मिलता है। नहीं तो ऐसे तो एक-एक आदमी और अगर हम बहुत सहानुभूति से खोजने लगें, तो भी फर्क पड़ेगा। क्योंकि जब हम किसी व्यक्ति के पास परीक्षक की तरह जाते हैं। तब उस व्यक्ति के सब द्वार-दरवाजे बंद हो जाते हैं। वह एकदम क्लोज्ड हो जाता है। और डर जाता है और डिफेंसिव हो जाता है। और जब कोई आदमी डिफेंसिव हो गया, तो फिर हमें उसके असली का पता नहीं चलता कि भीतर क्या है! उसके पास अत्यंत सहानुभूति से, सिम्पैथी से ही जाने की जरूरत है, बड़े प्रेम से, परीक्षक की तरह नहीं। तो शायद एक साधारण से आदमी में भी इतनी बुद्धिमत्ता के फूल खिलने लगते हैं, लेकिन कभी किसी ने उसको सहानुभूति से नहीं देखा था, वह डर गया सब फूल उसने भीतर छिपा लिए। वह डरा हुआ खड़ा है कि भई कुछ गड़बड़ न हो जाए। यह आदमी...
हर आदमी डिफेंस की हालत में हमने डाल दिया है। ऐसी बेहूदी सोसाइटी हमने बनाई हुई हैं दुनिया में अभी तक कि हर आदमी रक्षा की हालत में पड़ा हुआ है, डिफेंसिव हो गया है। और जब भी कोई डिफेंसिव हो जाए, तब वह कभी खुलता ही नहीं, क्योंकि खुलने में डर है। वह हमेशा सिकुड़ा रहता है, बंद रहता है। और इसलिए कई बार ऐसा होता है कि जिन्हें आप प्रेम करने लगते हैं, प्रेम के बाद आप पाते हैं कि उनमें बुद्धिमत्ता है। वह प्रेम उनकी बुद्धिमत्ता को एकदम निकालने का, खुलने का मार्ग बन जाता है। और दूसरा उनमें बिल्कुल बुद्धिमत्ता नहीं पाता। बेवकूफ कहेगा, क्योंकि उसको दिखता है कि उसमें कुछ भी तो नहीं है। और सच बात यह है कि न केवल बुद्धिमत्ता बल्कि जीवन की सारी चीजें सहानुभूति की हवा में खिलती हैं। यानी सच बात तो यह है कि कोई आदमी इतना सुंदर नहीं होता है जितना उसको कोई प्रेम करने वाला मिल जाता है तब वह हो जाता है एकदम से। इतना होता ही नहीं वह कभी कोई आदमी सुंदर, क्योंकि वह हमेशा डिफेंसिव है, वह सब सिकुड़ा रहता है, लेकिन जब कोई उसके पास बहुत प्रेम से आता है, तो उसकी सब पंखुड़ियां खिल जाती हैं। अब वह डर नहीं है इससे कोई, वह पूरा खुल जाता है।
लोग कहते हैं कि सौंदर्य को हम प्रेम करते हैं। यह आधा हिस्सा है। प्रेम करके हम सौंदर्य निर्मित करते हैं, यह ज्यादा गहरा और ज्यादा मूल्यवान हिस्सा है। हम सौंदर्य क्रिएट, निर्मित करते हैं। और उसी तरह इंटेलिजेंस भी पैदा होती है। उसी तरह सहमत भी पैदा होता है, कांफिडेंस भी

पैदा होता है। लेकिन कोई किसी को प्रेम ही नहीं करता है। हम सब प्रेम चाहते हैं, इसलिए किसी की इंटेलिजेंसी हम नहीं खोल पाते हैं और न किसी का सौंदर्य हम प्रकट कर पाते हैं। हम प्रेम चाहते हैं, और वह देने से खुलेगा। और मजा यह है कि अगर हम दें तो प्रेम लौटता है और मांगें तो रुक जाता है। वह मांगने से कभी आता ही नहीं। दुनिया में मांगने से सिर्फ कूड़ा-कर्कट मिल सकता है, मूल्यवान कुछ भी नहीं मिल पाता है मांगने से। मूल्यवान तो किसी गहरे रिस्पांस से आता है, और रिस्पांस तो तब होता है जब मैं दूं। तो इसलिए बहुत प्रेम की कमी होने की वजह से दुनिया में बहुत कम लोग बुद्धिमान दिखाई पड़ते हैं। वह प्रेम की कमी है। कोई किसी को प्रेम ही नहीं कर रहा है।
एक अमरीकी फिल्म अभिनेत्री थी, ग्रेटा गार्बो। उसका कहीं कोई जीवन पढ़ता था। वह यूरोप के किसी छोटे से कोने के गांव में, बीस वर्ष, अठारह वर्ष तक की हो गई तब तक एक नाईबाड़े में लोगों की दाढ़ी पर साबुन लगाने का काम करती थी। दो पैसा मिल जाता दाढ़ी पर साबुन लगाने का। दाढ़ी तो नाई काटता है। साबुन लगाने का काम कोई लड़की कर देती है। एक अमरीकी डायरेक्टर घूमने आया था और उस नाईबाड़े में दाढ़ी बनवाने गया था। वह लड़की तो वर्षों से साबुन लगा रही थी। लेकिन साबुन लगाने वाली लड़कियों को देखता कौन है? वह उस डायरेक्टर की दाढ़ी पर साबुन लगा रही थी। उसने आईने में उस लड़की को देखा--हाउ ब्यूटीफुल! और ग्रेटा गार्बो ने लिखा है कि मैं पहली दफा सुंदर हुई। उसके पहले मुझे पता ही नहीं था। मुझे पता ही नहीं था। एक आदमी ने, एक आदमी ने कहा कि कितनी सुंदर है, और बस सब बदल गया। और एकदम सब बदल गया। वह अट्ठारह साल कहां खो गए मुझे पता नहीं, मैं दूसरी ही व्यक्ति हो गई तत्क्षण। मैं साबुन लगाने वाली लड़की नहीं थी फिर। हाथ मेरा रुक गया। बात ही बदल गई थी। सब कुछ बदल गया था, जैसे एक नींद टूट गई थी।
सौंदर्य का बोध उसे फिर अभिनय की खोज में ले गया। उसने लिखा है कहीं
कि एक, एक आदमी ने चलते हुए इतना सा कह दिया कि कितनी सुंदर है। इसकी मैं प्रतीक्षा कर रही थी, मेरा सौंदर्य इसकी प्रतीक्षा करता था कभी, मगर मुझे पता ही नहीं था। मुझे पता ही नहीं था कभी। ऐसे ही बुद्धिमत्ता भी प्रतीक्षा करती है, लेकिन कोई कभी कहे और किसी के प्रेम में वह खिल जाए। कोई चौंका दे उसे। लेकिन हालतें उलटी हैं, हालतें उलटी हैं कि हर आदमी दूसरे आदमी को बुद्धिमान तो मानने को राजी ही नहीं है; क्योंकि उसके अहंकार को चोट लगती है इस बात से। इसलिए हर आदमी हर दूसरे आदमी को बुद्धिहीन सिद्ध करने की सब तरह की कोशिश कर रहा है। चारों तरफ से यह कोशिश चल रही है। बाप भी यह नहीं चाहता कि बेटा उससे ज्यादा बुद्धिमान हो जाए, इतना बाप भी नहीं चाहता, मां भी नहीं चाहती कि उसकी बेटी उससे ज्यादा सुंदर हो जाए। मां भी नहीं चाहती। और अगर मां के सामने भी उसकी बेटी को कोई कह देता है कि बहुत सुंदर है, तो मां पर जो गुजरती है, उसका ख्याल करना मुश्किल है।
तो वह जो, जो-जो हवा चाहिए चारों तरफ वह एक साइकिक एटमास्फियर चाहिए जहां चीजें पैदा हों। वह हमने पिछले पांच हजार सालों में पैदा नहीं कर पाए। और इसलिए अधिकतम लोग, जो बहुत सुंदर हो सकते थे, साधारण मर जाते हैं। बहुत से लोग जो बुद्धिमान हो सकते थे, साधारण मर जाते हैं। बहुत से लोग जो बिल्कुल असाधारण हो सकते थे, कि जिनका होना खूबी होती जमीन पर, वह बिल्कुल ही एक कोने में ऐसे मर जाते हैं कि थे या नहीं, कभी पता नहीं चलता। इसको ही मैं कहता हूं कि बहुत से लोग बिना आत्मा को पाए मर जाते हैं। मैं जब आत्मा की बात करता हूं, तो मुझे यह सारा ख्याल होता है कि बहुत से लोग आत्मा पाए बिना मर जाते हैं। उनको पता ही नहीं चलता कि वह थे भी।

इसका मतलब यह हुआ कि पाना दूसरे पर ही निर्भर है? अपने आप पर भी तो होना चाहिए?

हां, हां, यह ठीक बात है। यह ठीक बात है। यह अपने पर निर्भर होना चाहिए, लेकिन निन्यानबे प्रतिशत दूसरे पर निर्भर होता है। क्योंकि जो होना चाहिए, वह है नहीं। होना तो यही चाहिए कि प्रत्येक पर निर्भर हो। लेकिन

निन्यानबे प्रतिशत यह दूसरे पर निर्भर होता है। एक प्रतिशत ही स्वयं पर निर्भर होता है। और वह जो एक प्रतिशत है, वह भी आपको लगता ही है कि स्वयं पर निर्भर है। वह भी बहुत गहरे अर्थों में दूसरों पर निर्भर होता है, जैसे दोनों संभावनाएं हैं कि एक आदमी को आप कहें, बहुत बुद्धिमान है। उसकी हवा, उसके आस-पास के सारे लोग उसे बुद्धिमान कहते हों, मानते हों, तो उसकी बुद्धिमत्ता पैदा हो जाए। और यह भी संभव है, लेकिन यह बहुत मुश्किल से संभव है कि सारे लोग उसको बुद्धिहीन कहते हों, तो वह डिफेंस में बुद्धिमान होने की चेष्टा में लग जाए और सिद्ध करके बता दे कि बुद्धिमान है। लेकिन यह भी दूसरे पर ही निर्भर होना है। इसमें फर्क नहीं पड़ा दोनों में। लेकिन यह संभावना बहुत कम है, यह संभावना बहुत कम है। सौ में एक है। और इसीलिए हमने जो समाज बनाया है उसमें कभी-कभी वह जिसको हम बुद्धिमान, प्रतिभाशाली कहें, वह हो पाता है। वह जो लड़ कर, विरोध में खड़ा हो जाता है, सामान्यतः यह नहीं होगा।
यह ऐसा ही है मामला जैसे कि इस कमरे में हम प्लेग के कीटाणु फैला दें। पचास मित्र बैठे हैं और चालीस मित्र बीमार पड़ जाएं, और बाकी दस कहें, यह तो अपने पर निर्भर है, प्लेग के कीटाणुओं से क्या होता है, देखो हम भी तो यहीं प्लेग के कीटाणुओं में हैं, लेकिन हम बीमार नहीं पड़े हैं। तो यह सवाल प्लेग के कीटाणुओं का नहीं है। लेकिन बात ऐसी नहीं है। वह जो चालीस लोग बीमार पड़ गए हैं, अगर प्लेग के कीटाणु न होते तो वे बीमार न पड़ते? और ये जो दस बीमार नहीं पड़ पा रहे हैं, ये भी उतने स्वस्थ नहीं हो सकते हैं जितने कि प्लेग के कीटाणु न होते तो होते? उतने स्वस्थ ये भी नहीं हो सकते। भला बीमार न पड़ गए हों, भला मर न गए हों, लेकिन फिर भी उतने स्वस्थ नहीं हो सकते हैं जितने कि ये भी हुए हैं। यानी मेरा कहना यह है कि समाज ने अब तक व्यक्ति को विकसित होने में सहायता नहीं दी है, तब कहीं दस-पांच लोग लाख दो लाख करोड़ में विकसित हो जाते हैं। अगर समाज ने मौका दिया होता, जिसको मैं ऑपरच्युनिटी कह रहा हूं, ऐसा अवसर दिया होता, तो लाखों लोग विकसित होते और ये जो दस लोग हैं न यह और हजार गुना ज्यादा विकसित होते। क्योंकि ये तो इतने विरोध में इतने विकसित हो पाए, इनको तो कहना ही क्या था! हम खाद न डालें, और दस पौधे लगा दें, तो हो सकता है एकाध पौधे में फूल आ जाए एक गरीब सा फूल, और बाकी नौ पौधे बिना फूल के रह जाए तो हम कहें, यह तो अपने भीतर की बात है, इसमें आ गया, नौ में नहीं आया। लेकिन खाद डालने पर नौ में भी आता और इसमें जो फूल आता, उसका तो हिसाब लगाना मुश्किल है कि वह कैसा होता! ऐसा दुबलाया, कुम्हलाया हुआ फूल न होता। जिंदा फूल बड़ा फूल होता। उसकी शान अलग होती।
तो मेरा कहना यह है कि यह बात तो सच है कि भीतर हमारे संभावनाएं हैं, लेकिन संभावनाओं के लिए अवसर बड़ी कीमती बात है, बड़ी कीमती बात है। और संभावनाओं के लिए लड़ना चाहिए, अवसर की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, यह भी मैं नहीं कह रहा हूं। लेकिन अवसर भी निर्मित हो, इसकी धारणा विकसित करनी चाहिए। लड़ना ही पड़ेगा एक-एक आदमी को।

आज की प्रतिभा जो है वह भविष्य की है?

यह भी आप ठीक कहते हैं। असल में प्रतिभा सदा ही भविष्य की होती है। प्रतिभा सदा ही भविष्य की होती है। और जिसे हम आज समझ पाते हैं कि प्रतिभा है, उसे हम इसीलिए समझ पाते हैं कि वह प्रतिभा नहीं है और अतीत की प्रतिभाओं की कुछ नकल है। तो ही हम समझ पाते हैं। क्योंकि अभी सच में जो आज प्रतिभाशाली पैदा होगा व्यक्ति, न तो उसकी प्रतिभा को जांचने के आज मापदंड होते हैं, न आंख होती है, न लोग होते हैं, न हवा होती है। सौ दो सौ वर्ष लग जाएंगे।
प्रतिभाशाली आदमी के ऊपर दोहरी कठिनाइयां हैं। वह अपनी प्रतिभा से सृजन भी करे, और अपनी प्रतिभा को पहचानने के योग्य हवा और मापदंड भी खड़ा करे, वह मर कर भी नहीं हो पाता। और अक्सर ऐसा होता है कि दो-चार सौ वर्ष बीत कर कुछ ख्याल में आ पाता है वह आदमी। यह भी ठीक कहते हैं आप। जो बहुत चरम

प्रतिभा की बात है, वह तो सदा ही भविष्य की है। और उसे स्वीकृति आज तक तो नहीं मिली, लेकिन मेरा मानना है कि समाज ऐसा होना चाहिए, कि चाहे हम प्रतिभा को आज बिल्कुल माप न पा रहे हों, जांच भी न पा रहे हों, अनबूझ हो, न पहचान में, पकड़ में आती हो, तो भी समाज ऐसा चाहिए की भविष्य की संभावनाओं को भी आदर देता हो।
अब तक हम सिर्फ अतीत की उपलब्धियों को आदर देते हैं, भविष्य की संभावनाओं को नहीं। अतीत की उपलब्धियों को आदर देते हैं। और अतीत की उपलब्धियों को आदर न दें, तो भी चल जाएगा, क्या फर्क पड़ता है। यानी सवाल यह है कि आज अगर बुद्ध की प्रतिभा पहचान ली जाए और हम आदर भी दें, तो फर्क क्या पड़ता है? बात खत्म हो गई है। लेकिन भविष्य की संभावनाओं को पहचानना बहुत जरूरी है, क्योंकि वह होने वाला है। और अगर हम उसे पहचानते हैं, तो उसके होने में साथी और सहयोगी बन जाएंगे। वास्तविकता को देखने में तो बहुत ही सरल है। एक बगीचे में फूल खिले हैं, इनको कोई भी देख लेता है। लेकिन एक बीज की संभावनाओं को पहचानना पारखी की बात है।
समाज ऐसा भी होना चाहिए कि वह भविष्य की संभावनाओं को भी अंगीकार करता हो। और भूल-चूक के लिए राजी होता हो। क्योंकि जब भी नये रास्तों पर कोई चलता है, तो गिरता भी है, भूल-चूक भी करता है, भटकता भी है। यानी मेरा कहना यह है कि भटकने को एक बारगी ही बुरा नहीं मान लेना चाहिए, अगर हमें संभावनाओं को आदर देना हो तो। और जितने मापदंड हमारे पास हों उनको अंतिम नहीं मान लेना चाहिए, अगर हमें संभावनाओं को आदर देना हो तो, और हमें सदा इस बात का बोध होना चाहिए कि जो जाना गया है, जो पाया गया है, वह बहुत थोड़ा है उसके सामने जो जाना जाएगा और जो पाया जाएगा। इसका बोध अगर समाज को हो, तो यह कठिनाई नहीं होगी। भविष्य की प्रतिभा को भी ख्याल में रखना जरूरी है।

आप समझते हैं ऐसा हो सकता है?

बिल्कुल हो सकता है। क्योंकि जो भी सोचा जा सकता है वह किसी न किसी रूप से हो सकता है। वह सोचा जा सकता है न! तो वह हो भी सकता है। यह दूसरी बात है कि कितना फासला लगे, कितनी कठिनाई हो, कितनी मुश्किल हो। लेकिन अब तो मुझे लगता है कि जो मैं कह रहा हूं वह बहुत शीघ्रता से हो सकता है। क्योंकि सारी दुनिया में जो कुंठा है वह है ही इसलिए कि अधिकतम लोगों को स्वयं होने का मौका नहीं मिल पाता है, और कोई कारण नहीं है। एंग्विश जो है आज की पीढ़ी का, सारे युग का, सारे जगत का, वह जो परेशानी है, बेचैनी है, वह बेचैनी अब भौतिक नहीं है।
गरीब मुल्कों को छोड़ दें, वहां की बेचैनी और है। वह बेचैनी अब एकदम भौतिक नहीं है। अब वह बेचैनी बहुत गहरे अर्थों में आत्मिक हो गई है। आत्मिक इस अर्थों में कि हर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को खोज लेने के लिए आतुर हो गया है। यह आतुरता इतनी तीव्र है कि अगर उसे मौका नहीं मिलता है, तो दुखी होगा, पछताएगा, आत्मघात करेगा, शराब पीएगा, मरेगा, छुरा मारेगा, कुछ करेगा, जहां से, जहां से वह टूटेगा। क्योंकि यह, यह बड़ा महत्व का मामला है कि जो व्यक्ति कुछ सृजन कर सकता है, अगर सृजन न कर पाए तो उसकी सारी शक्ति विध्वंस बनने ही वाली है। क्योंकि शक्ति के दो ही उपाय हैं, या तो वह सृजनात्मक हो जाए या विध्वंस बन जाए। और जब भी सृजन की शक्ति ठहर जाती है तो वह विध्वंस बन जाती है। इसलिए मीडियाकर आदमी कभी विध्वंसक नहीं होता। जिसके पास कोई प्रतिभा जैसी चीज नहीं है बहुत, वह कभी विध्वंसक नहीं होता। क्योंकि विध्वंस के लिए सृजनात्मक शक्ति चाहिए। और जब वह, वह फ्रस्ट्रेट होती है, रुकती है, दबाव पड़ता है टूट पड़ती है, तो फिर वह फोड़ने लगती है, मिटाने लगती है, जो बना सकती थी वह मिटाने लगती है।
ऐसी जो स्थिति बन गई है, उस स्थिति को देख कर ऐसा लगता है कि हम उस दबाव
के करीब पहुंच रहे हैं जहां कठिनाई व्यक्ति की नहीं रह गई है, जहां कि सामूहिक रूप से व्यक्ति कठिनाई में पड़ गए हैं। व्यक्ति ही कठिनाई में पड़ गया है जहां। तो इस बात की संभावना है कि इस दबाव में, इस चुनौती में, इस

मरण के किनारे खड़े होने में, हो सकता है कि हम सारे ढांचे को तोड़ सकें जो कल ने बनाया था। नया ढांचा दे सकें, इसमें कोई बहुत असंभव अब नहीं मालूम होता है।

क्या ऐसा नहीं है कि लोग थक जाते हैं एक पर्टिकुलर सिस्टम से?

बिल्कुल, बिल्कुल थक जाते हैं। क्योंकि पुराना एस्टाब्लिश्मेंट सुव्यवस्थित था। बहुत डरा हुआ नहीं था, शांति से सोया हुआ था, तैयार था, कोई बात न थी। यह जो क्रांतिकारी इतनी मुश्किल से सत्ता में पहुंचता है और ताकत इसके हाथ में आती है, इतनी मुश्किल से कि छीने जाने के प्रति इतना सजग और डर जाता है कि यह सब तरह के रास्ते तोड़ देता है, कि कहीं से कुछ गड़बड़ न हो जाए। तो क्रांतिकारी तो हमेशा सत्ता में आने पर क्रांति-विरोधी सिद्ध होता है। और इसलिए मेरा मानना है कि ठीक-ठीक क्रांतिकारी कभी भी एस्टाब्लिश्मेंट में जाने को राजी नहीं होगा, एस्टाब्लिश्मेंट में जाने को राजी नहीं होगा। और यह भी मेरा मानना है कि क्रांति कोई ऐसी घटना नहीं है कि एक तिथि में घटती है, और फिर खत्म हो जाती है। क्रांति एक सतत प्रक्रिया है, कांस्टेंट कंटिन्युटी है। यानी मैं ऐसा नहीं मानता कि उन्नीस सौ सत्रह में फलानी तारीख को क्रांति हो गई रूस में, और फलानी तारीख को चीन में, और फलानी तारीख को हिंदुस्तान में।
दो तरह के समाज हैं। और अभी तक का जो समाज है वह असल में स्थितिस्थापक
है, एस्टाब्लिश्मेंट वाला ही है। जो क्रांति नहीं चाहता, लेकिन जब इतनी मुश्किल हो जाती है उस व्यवस्था में तो उसी व्यवस्था के भीतर से क्रांति दबाव से निकल आती है, फिर नई व्यवस्था निर्मित हो जाती है। अब तक कोई क्रांतिकारी समाज निर्मित नहीं हुआ। क्रांतिकारी समाज का मतलब यह है कि जिसमें क्रांति की कभी जरूरत न पड़ेगी, क्योंकि क्रांति रोज चलती ही रहेगी। यानी हम किसी भी दिन किसी चीज को एस्टाब्लिश्ड नहीं मान लेंगे, और रोज मौके रहेंगे प्रयोग के, और रोज हम बदलते रहेंगे। और जो हमने कल बनाया था, उसे जिन्होंने बनाया है वह मिटाने की हिम्मत भी रखेंगे। तो ही, तो यह तो बिल्कुल ठीक है, अब तक तो यही होता रहा है और आगे भी यही हो सकता है। लेकिन वह बेमानी है अब। यानी इतना पांच हजार साल का अनुभव यह कहता है कि क्रांतियां सब असफल हुई। कोई क्रांति सफल नहीं हुई। क्योंकि लगा कि सफल होती है, सफल होते ही ऐसा लगा कि सब गड़बड़ हो गया! वह तो क्रांति खुद ही वही हो गई है, जो उसका दुश्मन था!
तो अब तो हमें क्रांति की प्रक्रिया पर फिकर करनी चाहिए क्रांति करने
की नहीं!
एक क्रांति की सतत गति हो। हम क्रांतिकारी चित्त पैदा करें, ऐसा चित्त जो कहीं एस्टाब्लिश्ड फार्म लेता ही नहीं, व्यक्ति ही नहीं लेता। और अगर ऐसी समाज की स्थिति, मनःस्थिति को हम ढाल सकें, जो रोज बदलती चली जाए नदी की धारा की तरह। ऐसा नहीं है कि नदी की धारा कल बही थी, तो अब बहने का काम न रहा। उसे नदी रहना है तो आज भी बहना है, और नदी रहना है तो कल भी बहना है। नदी रहना है तो बहते ही रहना है, और नहीं तो तालाब हो जाएगी। वह सब नदियां तालाब हो जाती हैं; बहने से बचेंगी, तालाब हो जाती हैं।
अब तक की सब क्रांतियां तालाब बन गई, क्योंकि हम क्रांति को एक घटना समझे हैं, हमने समझा है कि ऐसी क्रांति कोई चीज है कि एक दफा कर लो फिर निपट गए। क्रांति ऐसी कोई चीज नहीं है। वह तो ऐसी चीज है कि उसे करते ही रहो, यानी वह जीवन का ढंग ही बन जाए। क्रांति कोई घटना न हो, जीने का ढंग ही हो। हम जीएं ही ऐसे कि वह क्रांति बन जाए। जीने की व्यवस्था ही क्रांति की हो, तब ऊबने का सवाल ही नहीं उठता, तब ऊबने की कोई बात ही नहीं है, क्योंकि हम कहीं स्वीकार करके रुकते नहीं हैं।
दूसरी जो बात कहते हैं वह भिन्न है। दूसरी जो बात आप कहते हैं कि ऐसा
भी हो सकता है कि व्यक्ति अपने को पा ले, तो उससे ऊब जाए। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि व्यक्ति पूर्ण रूप से कभी अपने को पा ही नहीं पाता। वह इतना अनंत विस्तार है व्यक्ति का अपने को पाना कि ऐसी घड़ी कभी नहीं आती जब कोई

कह दे कि मैंने अपने को पा लिया। और ऐसी घड़ी अगर आती है तो वह आदमी ऊब जाएगा फिर। फिर ऊबना पक्का है उसका, क्योंकि जो चीज पा ली गई है, उससे हम ऊब ही जाते हैं लेकिन मेरी दृष्टि में व्यक्ति के भीतर जो संभावना इतनी अनंत है कि हम थक कर कहने लगते हैं कि हमने पा लिया। असल में हम कभी अपने को नहीं पा पाते। यानी कोई चित्रकार यह नहीं कह सकता कि उसने कोई चित्र बना लिया, बात खत्म हो गई है अब। ऐसा कह ही नहीं सकता वह।
रवींद्रनाथ की जिंदगी में तो बहुत, कल्याणजी बड़ी बढ़िया घटना घटी है।
मर रहे हैं जिस दिन, बीच-बीच में बेहोश हो जाते हैं। फिर आंख खुल जाती है तो बात करने लगते हैं। गीत लिखाने लगते हैं। जिस दिन मरे हैं, उस दिन चार-छह दफे बेहोशी के बाद होश आया है, तो फिर अब उठ नहीं सकते हैं, तो बोल कर गीत लिखाने लगते हैं। मुंह लड़खड़ा रहा है... तो गीत तो किसी ने कहा कि आप छोड़िए फिकर, आपने बहुत गीत लिखा लिए, छह हजार! आपके गीत संगीत में बंध गए हैं। ऐसा अब तक दुनिया में कभी नहीं हुआ है। शैली के भी दो ही हजार हैं गीत जो संगीत में बंध जाएं। वह महाकवि है, तो आप महाकवि से भी महाकवि हैं। अब आप चिंता मत करिए। अब आप शांत रहिए। उन्होंने कहाः लोग क्या कहेंगे कि क्या इस कवि ने अपने को पा लिया? यानी मरने के पहले मर गया था? न मुझे मरने दो, और मुझे लिखाने दो। यानी यह कवि होना एक प्रोसेस है। यह कोई ऐसी बात थोड़े ही है कि बस हो गया पूरा कि छह हजार लिख लिए। कंटीन्युअस मरने की आखिरी घड़ी तक वे लिखा रहे हैं। और आखिरी घड़ी में जो उन्होंने कुछ वचन लिखाया है, उसमें एक वचन बहुत अदभुत है, वह जो लिखवाया उन्होंने कि लोग कहते हैं कि मैं महागायक हूं। लेकिन हे परमात्मा! उनकी बात मत सुन लेना, क्योंकि वे बिल्कुल गलत कहते हैं। अभी मैं तो साज बिठा पाया था अभी, गाया कहां था? अभी तान-तंबूरा सब ठोंक-पीट कर तैयार कर लिया था, अब गाने को था, अब तेरा बुलावा आ गया।
जिस आदमी को ठीक से पकड़ आ गई है व्यक्तित्वको गहरे अनंत में ले जाने की, वह किसी दिन ऐसा नहीं पाएगा, उसको हजार जन्म दो तुम, और हजार जन्मों के बाद भी वह कहेगा कि अभी हुआ क्या? अभी तो यात्रा शुरू हुई है, अभी हम चले हैं, अभी पहुंच कहां गए?
जिंदगी में पहुंचना नहीं है, चलना है; सिर्फ मृत्यु में पहुंचना है। इसलिए जिनको पहुंचने का ख्याल पैदा हो जाता है, वे मर जाते हैं उसी वक्त, उसी वक्त मर गए, फिर वे जीते नहीं। फिर ऊब जाएंगे। फिर ऊबना निश्चित है। यानी जीवन से हम कभी भी नहीं ऊबते, हम असल में मरने से ऊबते हैं। और हम खुद अपने हाथ से मर जाते हैं, क्योंकि मरना कनवीनिएंट पाते हैं, मरना बड़ा सरल है।
एक आदमी ने दस किताबें लिख लीं, दस गीत गा लिए, बात खत्म हो गई। वह निश्चिंत हो गया, प्रतिष्ठित हो गया, लोगों ने आदर दिया, बात समाप्त हो गई। अब वह बैठ गया है, पहुंच गया। मंजिल पा ली उसने। अब वह मरा। अब वह मर ही गया। यानी यह मुझे ऐसे ही लगता है कि जैसे एक आदमी साइकिल चला रहा है, तो ऐसा नहीं है कि पैडल कोई वक्त पर रोक ले और कहे कि अब बस ठीक है, अब चलना हो चुका, अब चल रहा है। पैडल रोक ले, और साइकिल चल जाए, ऐसा नहीं होने वाला है। वह साइकिल चल रही है पूरे वक्त, क्योंकि पैडल चल रहा है। जिस दिन पैडल रुका, साइकिल रुकी। यानी साइकिल का चलना पैडल के चलने से कुछ अलग चीज नहीं है।
तो वह जो जिंदगी की गति है, वह हमारी आत्म-खोज से कोई भिन्न चीज नहीं है। वह चल रही है तो जिंदगी है। नहीं तो हम गए। और बहुत लोग मर जाते हैं। और बहुत लोग जो हम कहें कि कुछ उपलब्ध कर लेते हैं, वह बहुत जल्दी मर जाते हैं। क्योंकि एक उपलब्धि हुई और बात खत्म हो गई। और उनके मरने का भी कारण यह है कि बहुत कम है यह उपलब्धि। जो मैं कह रहा हूं कि अगर इसके अनंत फैलाव हों, और हर व्यक्ति उपलब्ध कर रहा हो, तो कोई इतनी जल्दी ठहरेगा नहीं। कोई नहीं ठहरेगा। लेकिन अभी ठहर जाता है। क्योंकि पीछे लोग दिखाई पड़ते हैं कि आ गए हैं हम एक शिखर पर जहां कोई भी नहीं है। बात ठीक है। यहां तो खत्म हो गया है मामला।
तो ऐसा मुझे कभी भी नहीं लगता है कि हम कभी भी अपने को पा लेते हैं।

तो प्रतिभा का जहां तक सवाल है, ऐसे व्यक्ति जिनके हमें दर्शन हुए, जैसे गांधी, टैगोर, अरविंदो, इनकी प्रतिभा को आप संपन्न मानते हैं, तो हम लोग आपसे जानना चाहेंगे उनकी प्रतिभा जो थी देश के लिए, समाज के लिए, व्यक्ति के लिए, उनके खुद के लिए वह प्रतिभा संपन्न थी या नहीं?

इसी में दो-तीन बातें पूछ रहे हैं आप। पहली तो बात यह है कि प्रतिभा सदा उस व्यक्ति के लिए ही सार्थक और संपन्न होती है जिसकी है। और दूसरों के लिए सदा बांधने वाली सिद्ध होगी और रोकने वाली सिद्ध होगी। प्रतिभा जो है, वह जिस व्यक्ति के भीतर है, उसके लिए तो समृद्धि और सार्थकता देने वाली होती है। लेकिन दूसरों को सदा बांधने वाली और रोकने वाली सिद्ध होती है। अब तक ऐसा होता रहा है। अब तक ऐसा होता रहा है। जैसे गांधीजी की प्रतिभा गांधीजी के लिए तो एक आनंद है, लेकिन गांधीवादियों के लिए बिल्कुल कारागृह है। उनको बांध गई बुरी तरह, कस गई बुरी तरह।
तो मैं जिस प्रतिभा की बात कर रहा हूं, मेरा कहना ही यह है कि ऐसी मनोदशा होनी चाहिए समाज की कि प्रतिभा का आदर हो, स्वागत हो, सम्मान हो, अनुगमन न हो। उसके पीछे कोई न जाए। क्योंकि जब भी प्रतिभाशाली के पीछे आप गए, तो आप अपनी हत्या कर रहे हैं। आप मिटे। आपका व्यक्तित्व गया। आप गए, आप खत्म हो गए। और इसलिए अनुयायी बनना मैं सुसाइडल मानता हूं किसी का भी, बड़े से बड़े का भी। और इसलिए दुनिया में हमेशा जो बड़े लोग होते हैं, जैसा अब तक हुआ है, तो उनके पीछे दस-पच्चीस साल के लिए बड़े अंधेरे का युग आता है। उसका कारण है। वे बड़े लोग इस तरह बुद्धि को कुंठित कर जाते हैं कि दस-पचास साल लग जाते हैं उनसे छूटने में फिर, फिर उनसे बचने में। यानी अब गांधी से बचने में पचास साल लगेंगे इस मुल्क को। जब कहीं झंझट छूटेगी। तब, और मजा यह है कि गांधी से छूटने की जरूरत न पड़ती, अगर आप न बंधते तो।
यह सवाल गांधी से छूटने का नहीं है, आप बंध गए हैं इसलिए उपद्रव है। गांधी ठीक हैं और वह अदभुत व्यक्ति हैं, बात खत्म हो गई है। अरविंद ठीक हैं और रवींद्रनाथ ठीक हैं और ऐसे हजार लोग होने चाहिए, लाख लोग होने चाहिए। फिर जब हम पूछते हैं यह बात, तो हमारे मन में ख्याल ही यह होता है कि क्या इनका अनुगमन किया जाए? गांधी अगर ठीक हैं तो हम पूछते ही इसलिए हैं कि क्या इनके पीछे चलें? मैं मानता हूं कि कोई भी ठीक हो सकता है, लेकिन पीछे चलना कभी ठीक नहीं है। और ठीक होना व्यक्तिगत, निजी घटना है। आप, पीछे नहीं जाना है आपको। आप पीछे गए कि आप गए, बुरी तरह गए। और अब तक ऐसे ही हुआ है कि बड़ी प्रतिभाओं से हमें फायदा तो कम हुआ है, नुकसान ज्यादा हुआ है। फायदा हो सकता था, अगर हमने उनकी इंडिविजुअल यूनिकनेस को स्वीकार किया होता। हमने कहा होता कि राम राम हैं, बहुत अदभुत हैं। और कृष्ण कृष्ण हैं, बहुत अदभुत हैं। बुद्ध बुद्ध हैं, बहुत अदभुत हैं। और सौभाग्य है कि पृथ्वी पर हुए और हमने उन्हें देखा और जाना। लेकिन हम इस चक्कर में पड़ गए कि हम बुद्ध कैसे हो जाएं। तो हम एक नकली बुद्ध हो सकते हैं ज्यादा से ज्यादा, और कुछ भी नहीं हो सकते हैं। क्योंकि मेरी दृष्टि में कोई दो आदमी न तो एक जैसे हैं और न हो सकते हैं, न कोई संभावना है। कोई मार्ग भी नहीं है। और अगर किसी व्यक्ति ने किसी दूसरे जैसे होने की कोशिश की, तो वह सिर्फ आवरण ओढ़ सकता है। और आत्मा की हत्या करेगा, तभी दूसरे जैसा हो सकता है। और अब तक के सारे महापुरुष दुखदायी सिद्ध हुए; सुखदायी हो सकते थे, हो नहीं पाए। और जहरीले सिद्ध हुए। क्योंकि हमारी पकड़ यह रही कि उनका अनुगमन करो, उनको मान कर चलो, उन जैसे हो जाओ।
फिर दूसरी बात यह है कि प्रतिभाशाली जो भी कह देता है, वह प्रतिभाशाली है, इसलिए ठीक नहीं हो जाता है। ठीक होना जरूरी नहीं है। प्रतिभा बिल्कुल गलत हो सकती है, और प्रतिभा हो सकती है। यानी कुछ ऐसा नहीं है जरूरी कि प्रतिभा है किसी के पास, तो उसका ठीक होना भी अनिवार्य है। प्रतिभा पूरी हो सकती है और बिल्कुल गलत हो सकती है। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न? और बहुत प्रतिभाएं गलत हुई हैं। वे प्रतिभाएं तो इतनी हैं कि वह आकर्षित करती हैं, अभिभूत कर लेती हैं। लेकिन वे बिल्कुल गलत हैं।

गुरु और शिष्य की जो परंपरा चली है, उस विषय में क्या ख्याल है आपका?

बड़ी खतरनाक है परंपरा, बड़ी खतरनाक है। और बहुत नुकसान पहुंचाया है गुरुओं ने। मेरी समझ यह है कि अच्छी दुनिया होगी, तो उसमें गुरु तो नहीं होंगे, शिष्य होंगे। इसको थोड़ा समझ लेना चाहिए। क्योंकि मैं इनको दो हिस्सों में तोड़ देता हूं। गुरु तो नहीं होंगे। क्योंकि ऐसा कोई भी आदमी जिसको गुरु होने का ख्याल है, पागलखाने में भेज देने जैसा आदमी है। जिसको यह ख्याल पैदा हो गया कि मैं गुरु हूं, उसका इलाज करवाना चाहिए, वह न्यूरोटिक है। लेकिन शिष्य दुनिया में होने चाहिए। शिष्य होने का मेरा मतलब है एटीट्यूट ऑफ लर्निंग, वह सभी में होना चाहिए।
एक आदमी सीखे, सीखे, सीखे। सीखने की भावना तो... शिष्य का मतलब इतना है
कि सीखने का भाव। वह सीखे जितना सीख सके। और मजा यह है कि गुरु सीखने में बाधा डालते हैं। क्योंकि जब भी कोई गुरु बनता है तो वह बांध लेता है। और सब और तरफ से सीखने के रास्ते बंद कर देता है। वह कहता है सीखो यहां और कहीं से नहीं। तो महावीर को जिसने गुरु बना लिया, वह मोहम्मद से नहीं सीख सकता। और मोहम्मद अदभुत आदमी है, उससे बहुत सीखने को है। और जिसने मोहम्मद को पकड़ लिया, वह अब बुद्ध की तरफ आंख नहीं उठाएगा। और ये तो बड़े-बड़े गुरु हैं। छोटे-छोटे गुरु बहुत हैं। वे भी सब रोकते हैं।
मेरा कहना यह है कि सीखने की क्षमता और सीखने का भाव प्रत्येक में होना चाहिए, और मरने तक होना चाहिए। यानी जो आदमी जीवन भर शिष्य बना रहे मरते वक्त तक, वह अदभुत आदमी है।
लेकिन हमारे यहां कुछ ऐसा है कि आदमी जन्म से गुरु हो जाता है। मरने
तक शिष्य रहना बहुत दूर की बात है, जन्म से ही गुरु हो जाता है। शिष्यत्व तो बड़ा ही, बहुत इनोसेंट और बहुत निर्दोष भाव है। वह बहुत अदभुत भाव है। सीखने की तैयारी है। इससे बड़ी सरलता और विनम्रता दूसरी नहीं हो सकती है। एक मुसलमान फकीर था, बायजीद। वह जब मरने के करीब है, तो उसके शिष्यों
ने उससे पूछा है, मित्रों ने पूछा है कि आपने कहां से सीखा, कौन था गुरु? तो बायजीद ने कहाः अगर गुरु होता तो बहुत कम सीख पाता। गुरु कोई भी न था, इसलिए बहुत सीखा। जो भी मिला, उसी से सीखा। और ऐसा भी नहीं था कि आदमियों से ही सीखा। दरख्त से सूखा पत्ता गिर रहा था, तो उससे भी सीखा। कल यह पत्ता हरा था और आज सूख कर गिर गया और मैं रास्ते भर सोचता चला आया, उस गिरे हुए पत्ते को देख कर कि गिरना पड़ेगा। हरे कब तक रहोगे, सूखना पड़ेगा। और उस पत्ते को मैंने नमस्कार कर लिया कि आज तू अच्छे वक्त पर गिर गया कि मैं निकलता था। तेरी बड़ी कृपा है। नहीं तो यह ख्याल ही नहीं आता कि सूखा पत्ता कल तक हरा था, वह कितनी अकड़ और शान में था, फिर सूख कर गिर गया और उसके सूखने की, गिरने की खबर वृक्ष को हो भी नहीं पाई, खबर भी नहीं हुई, किन्हीं पत्तों ने शोर भी नहीं मचाया कि कहां जाते हो। किसी ने कुछ नहीं कहा, वह चुपचाप गिर गया, जमीन पर पड़ा है। तेरी बड़ी कृपा है कि तू गिर गया जब मैं गुजरता था। क्योंकि समझ में आई है यह बात कि अभी हरे हैं, कल सूख जाएंगे।
बायजीद ने कहाः एक बार मैं एक गांव में गया, रात के कोई बारह बज गए। गांव में भटक गया रास्ता, तो गांव में कोई नहीं मिला। एक चोर मिला, वह अपनी चोरी को निकला था। तो मैंने उससे पूछा कि मित्र रास्ता बता सकोगे? मैं कहां जाऊं, कहां ठहरूं? रात अंधेरी है, मुझे ठहरने का कुछ पता नहीं है! उस चोर ने कहाः तुम साधु मालूम पड़ते हो। क्योंकि साधु होना ऊपर से ही दिख जाता है। लेकिन मेरा तुम्हें पता नहीं तुम किससे पूछ रहे हो, मैं चोर हूं, और चोर होना कभी ऊपर से नहीं दिखता, वह तो भीतर होता है। तो तुम मुझे पहचान नहीं पाओगे। लेकिन मैं तुम्हें बता दूं कि मैं चोर हूं। और अगर तुम्हारी मर्जी हो तो तुम मेरे घर ठहर सकते हो। घर खाली है। और मैं रात भर तो बाहर रहूंगा, तुम निश्चिंत होकर ठहर सकते हो।
लेकिन बायजीद ने कहा अपने मित्रों से कि मैंने उस दिन पहली दफा जाना
कि चोर की इतनी हिम्मत हो सकती है कि कह दे कि मैं चोर हूं। और मैं साधु हूं, लेकिन मैं हिम्मत से कह नहीं सकता कि मैं साधु हूं; क्योंकि भीतर मेरे

चोर मौजूद है! और उस आदमी के भीतर साधु जरूर मौजूद था तभी वह कह सका कि मैं चोर हूं, नहीं तो कहना बहुत मुश्किल था। एकदम मुश्किल था। तो मैंने उसके पैर छू लिए। वह कहने लगा, यह आप क्या करते हैं? यह आप क्या करते हैं? मैंने कहा कि मैं तेरे पैर छूता हूं। क्योंकि चोर स्वयं को कहने की हिम्मत सिर्फ साधु में होती है। चल मैं तेरे घर चलता हूं।
मैं उसके घर गया। वह मुझे सुला कर चला गया। और पांच बचे के करीब फिर लौटा। नींद खुली तो मैंने पूछा कि कुछ मिला? कुछ लाए? तो वह कहने लगा, आज तो नहीं, लेकिन कल फिर कोशिश करेंगे। फिर आकर वह सो गया। वह दिन भर सोया रहा। दोपहर को उठा तो बड़ा मस्त था, नाचता था, गीत गाता था। तो मैंने उससे कहाः तुझे कुछ मिला नहीं? तो उसने कहाः कल मिल जाएगा? फिर रात गया, मैं महीने भर उसके घर था। और हर बार यह हुआ कि सुबह वह आया और मैंने पूछा, कि कहो कुछ मिला? आज तो नहीं मिला, लेकिन कल फिर कोशिश करेंगे। फिर महीने भर के बाद मैंने छोड़ दिया उसका घर। फिर मैं भगवान की खोज में वर्षों भटकता रहा और बार-बार ऐसा होने लगा कि अब नहीं मिलता, तो छोड़ दो यह ख्याल। तभी उस चोर का ख्याल आ जाता कि वह आदमी रोज लौट कर कहता था कि कल फिर कोशिश करेंगे। तो वह तो साधारण धन चुराने गया था, फिर भी हिम्मत बड़ी थी। हम भगवान को चुराने चले हैं और हिम्मत बड़ी कमजोर है, कैसे काम चलेगा? तो फिर मैं टिका ही रहा, और जब भी हारने लगता मन, तब फिर उस चोर का ख्याल आ जाता, वह कहता कि कल और कोशिश करेंगे। तो उसी चोर को... उस चोर से जो सीखा था, उसी से मैंने परमात्मा को पाया, नहीं तो पा नहीं सकता था। तो उसने मरते वक्त ऐसी बहुत सी बातें कहीं, तो ऐसे बहुत से गुरु मिले।
एक गांव से गुजरता था, एक छोटा सा बच्चा दीया लिए जा रहा था। पूछा उससे, कहां जाते हो दीये को लेकर? उसने कहाः मंदिर में चढ़ाने। तो मैंने उससे कहा, कि तुमने ही जलाया है दीया? उसने कहाः मैंने ही जलाया है। तो मैंने उससे पूछा कि जब तुमने ही जलाया है, तो तुम्हें पता होगा कि रोशनी कहां से आई है? कहां से आई है बता सकते हो? तो उस बच्चे ने नीचे से ऊपर तक मुझे देखा। फूंक मार कर रोशनी बुझा दी और कहा कि अभी आपके सामने चली गई, बता सकते हैं, कहां चली गई है? और आप बता देंगे कि कहां चली गई, तो मैं भी बता दूंगा कि कहां से आई थी। तो मैं सोचता हूं, वहीं चली गई होगी, जहां से आई थी। उस बच्चे ने कहाः वहीं चली गई होगी?
तो उस बच्चे के पैर छूने पड़े। और कोई उपाय न था इसके सिवाय। नमस्कार करनी पड़ी कि तू अच्छा मिल गया। हमने तो मजाक की थी, लेकिन मजाक उलटी पड़ गई। मजाक ही की थी बच्चे से लेकिन बहुत उलटी पड़ गई, बहुत भारी पड़ गई। और अज्ञान इस बुरी तरह से दिखाई पड़ा है कि ज्योति का पता नहीं कि कहां से आती है और कहां जाती है! और बड़े ज्ञान की हम बातें किए जा रहे हैं। उस दिन से मैंने ज्ञान की बातें करना बंद कर दिया। क्या फायदा? जब एक ज्योति का पता नहीं है तो भीतर की ज्योति की बातें कर रहे हैं। कुछ पता नहीं। तो फिर मैं चुप रहने लगा, उस बच्चे ने मुझे चुप करवाया। हजारों किताबें पढ़ी थीं, जिनमें लिखा थाः मौन रहो। नहीं रहा, लेकिन उस बच्चे ने ऐसा चुप करवा दिया। कि कई वर्ष बीत गए, मैं नहीं बोला। लोग पूछते थे, बोलो। तो मैं लिख देता था कि एक दीये की ज्योति कहां जाती है यह तो बताओ? मतलब क्या है बोलने से? कुछ पता ही नहीं है तो बोलूं क्या?
तो इसको मैं कहता हूं, एटीट्यूट ऑफ लर्निंग और डिसाइपलशिप, शिष्यत्व।
तो गुरु तो बिल्कुल नहीं होने चाहिए दुनिया में, और शिष्य सब होने चाहिए। और अभी हालत यह है कि गुरु सब हैं, और शिष्य खोजना बहुत मुश्किल मामला है। वह मिल ही नहीं सकता। वह मिल ही नहीं सकता। हां, बिल्कुल नहीं मिल सकता है।

हमें यह उत्सुकता होती है जानने की कि आप सक्सेस हुए। क्या करते थे, आपकी शुरुआत कैसे हुई, कहां से आपने यह चालू किया? लोगों के ख्यालातों को चैनेलाइज करने का कब से ख्याल हुआ आपको? किस ख्याल से शुरू किया और क्यों शुरू किया?

बहुत ही कठिन बात है आप जो पूछते हैं। कठिन कई कारणों से है। एक तो यह
कि जिंदगी कुछ ऐसी चीज है कि वह ठीक कहां से शुरू होती है कभी नहीं बताया जा सकता। यानी जहां से शुरू होती है, वे कहते हैं, वह हमेशा माना हुआ बिंदु होता है। और दूसरी कठिनाई यह है कि अपने संबंध में कुछ भी कहना बड़ा मुश्किल मामला है, बहुत कठिन है। हां, इसलिए कठिन है कि दूसरे को तो हम बाहर से देखते हैं तो तस्वीरें अंक जाती हैं। प्रतिबिंब होते हैं हमारे पास। कल ऐसा था, परसों ऐसा था। हम अपने को कभी देखते नहीं। और भीतर अपनी कोई तसवीर नहीं अंकती। वहां तो एक धारा ही होती है, अलग-अलग नहीं होते हैं। तो भी मुश्किल हो जाता है और फिर जब भी हम बताने जाते हैं तो और मुश्किल हो जाता है। क्योंकि जब हम बताने जाते हैं तो कुछ खंडों को ही छू पाते हैं, और बीच के हिस्से गैप रह जाते हैं, और उनमें कई बार जोड़ दिखाई भी नहीं पड़ता। जैसे कि कोई एक सीढ़ियां जा रही हों हजारों, और उसमें से हम दस-पांच सीढ़ियां चुन कर बता दें, बीच की सीढ़ियां गिर जाएं, तो उन सीढ़ियों के बीच कोई तुक, कोई संबंध नहीं दिखाई पड़ता। फिर भी कोशिश की जा सकती है कि क्या।
जो पहली से पहली मुझे ख्याल में आती है बात, चारों तरफ एक अदभुत झूठ का बोध होना शुरू हुआ जो पिता कह रहे हैं उसमें, जो मां कह रही है उसमें, जो मित्र कह रहे हैं उसमें, जो शिक्षक कह रहे हैं उसमें, जो मंदिर का पुजारी कह रहा है, जो नेता कह रहा है उसमें। ऐसा लगा कि एक चारों तरफ एक गहरा झूठ सबको घेरे हुए है और यह भी समझ में आना शुरू हुआ कि वह झूठ मुझे भी घेर रहा है। यानी मैं जिस ढंग से देखता हूं, वह झूठ था। क्योंकि भीतर से मैं कुछ और ढंग से देखना चाहता था। और जो बात मैंने कही, वह थी ही नहीं। रास्ते पर एक आदमी मिला और उससे कहा कि नमस्कार! आपको देख कर बड़ी खुशी हुई। भीतर मन हो रहा था, यह आदमी कहां से दिख गया सुबह-सुबह, कहीं दिन खराब न हो जाए। तो यह भी दिखाई पड़ना शुरू हुआ कि वह चारों तरफ का जो झूठ है, वह मुझको भी पकड़े ले रहा है। और अगर जल्दी जागे नहीं, तो शायद वह पकड़ ही लेगा। फिर उससे छूटना बहुत मुश्किल हो जाएगा। वह सब तरफ से घेरे लिए चला जा रहा है। जिससे कोई प्रेम नहीं है, उससे कह रहे हैं, बहुत प्रेम है।
जो मुझे पहला बोध होना शुरू हुआ बहुत छोटी उम्र से, वह यह था कि एक अजीब झूठ चारों तरफ पकड़े हुए है। कि घर में लोग बैठे हुए हैं, वह छोटे बच्चे को बाहर मुझसे कहलवा देते हैं कि वह घर पर नहीं हैं। या मुझे बाहर भेजते हैं देखने कि देख लेना कौन है। अगर फलां आदमी हो तो कहना घर में हैं, और फलां आदमी हो तो कहना घर में नहीं हैं। तो मैं बहुत हैरान हुआ कि यह घर में होना भी फलां-फलां आदमी पर निर्भर होता है या कि यह घर में होना कोई सच्चाई है या यह भी झूठ है, जो कि कोई होता है तो आदमी घर में है कोई नहीं है तो घर में नहीं हैं।
मुझे जो पहला स्मरण आता है वह यह कि चारों तरफ सब चीजों में एक अजीब झूठ है। मुझे मंदिर में ले जाया गया है, पत्थर की मूर्ति, मुझे पत्थर की मूर्ति दिखाई पड़ रही है और मेरे घर के लोग कह रहे हैं कि भगवान हैं। वह इतना सरासर झूठ मालूम पड़ रहा है कि बिल्कुल पत्थर की मूर्ति है, इसको मैंने बाजार में बिकते भी देखा है। यह बाजार में से खरीद कर मंदिर में भी लाई जाती है। और भगवान कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा है और मेरे घर के लोग हाथ जोड़े हुए खड़े हैं। इनका हाथ जोड़ना एकदम झूठ मालूम पड़ रहा है। सरासर झूठ मालूम पड़ रहा है। जो मुझे पहला ख्याल आता है, जो मुझे बचपन से पकड़ना शुरू हो गया, वह यह कि एक फाल्स सूडो है जो चारों तरफ सबको पकड़े हुए हैं। और जैसे-जैसे मैं बड़ा होने लगा, वैसे-वैसे मुझे दिखाई पड़ने लगा कि सब तरफ एकदम घना झूठ है और अब दो ही उपाय हैं अगर या तो यह झूठ मुझे पकड़ लेगा, और अगर झूठ पकड़ लेता है, तो फिर जीवन में सत्य की खोज का कोई रास्ता नहीं रह जाता। जिंदगी क्या है? उसका पता ही नहीं चलेगा कभी। और पता ही नहीं चलता।
लंदन में एक फोटोग्राफर था। वह अपने दरवाजे पर एक तख्ती लगाए हुए है।
और उसमें उसने दाम लिख रखे हैं, और लिख रखा है कि आप जैसे हैं, अगर वैसी ही फोटो उतरवानी हो, तो पांच रुपये, और जैसे आप दिखाई पड़ना चाहते हैं, अगर वैसी फोटो उतरवानी हो तो दाम दस रुपये। और जैसा आप सोचते हैं कि आप हैं, अगर वैसी फोटो उतरवानी हो तो दाम पंद्रह रुपये। एक आदमी गया उसकी दुकान

पर, उसने कहा, बड़ी मुश्किल है। हम तो सोचते हैं फोटो एक ही तरह की होती है। यानी मेरी फोटो एक ही तरह की होगी, तीन तरह की कैसे हो सकती है? और यहां ऐसे लोग भी आते हैं कि यह पिछले पंद्रह और दस रुपये वाली फोटो ही उतरवाते हैं? उस फोटोग्राफर ने कहाः आप पहले आदमी हैं जो पहले नंबर की फोटो उतरवाने का ख्याल कर रहे हैं। यहां अब तक कोई आया ही नहीं, जिसने पहले नंबर की फोटो उतरवाई हो।
यह मुझे बोध एकदम से गहरा पकड़ने लगा रोज-रोज, और बड़ी अड़चन हो गई उससे शुरू, बहुत अड़चन हो गई, बहुत परेशानी शुरू हो गई। क्योंकि जहां-जहां वह मुझे दिखाई पड़ने लगा, वहीं मुश्किल शुरू हो गई। घर के बुजुर्गों को कहने लगा, यह क्या मामला है? शिक्षकों को कहने लगा, यह क्या बात है? और तब एक बात मुझे इतनी साफ दिखाई पड़ने लगी कि यह अगर झूठ मुझे पकड़ लेता है, तो जिंदगी खो गई। तो जैसा हूं वैसा ही दिखाई पडूं और जैसा मुझे दिखाई पड़े वैसा ही कहूं। और जैसा मुझे ठीक लगे उसको वैसा ही जीऊं, चाहे उसका कोई भी परिणाम हो। एक बात पक्की है कि मैं झूठ होने को राजी नहीं हूं, मैं जैसा हूं वैसा ही रहूंगा। तो फिर किसी चीज पर विश्वास करना मुश्किल हो गया कि भगवान है, कि आत्मा है, कि पिछला जन्म है, कि कर्म है--किसी भी चीज पर विश्वास करना मुश्किल हो गया। और प्रत्येक चीज पर। क्योंकि सब विश्वास मुझे झूठे मालूम पड़े। असल में विश्वास झूठ का दूसरा नाम है। जो आपको नहीं मालूम होता, नहीं दिखाई पड़ता, उसको मान रहे हैं, तो वह झूठ है।
इतना पढ़ा मैंने कि कहीं से कुछ पता चल जाएगा। इतने लोगों के पास गया, इतने लोगों से मिला, इतना भटका कि कहीं से कोई बता सकेगा। लेकिन फिर धीरे- धीरे पता चला कि कोई दूसरा शायद बता भी नहीं सकता। एक बात पक्की मेरे मन में हो गई कि विश्वास नहीं करूंगा। जान लूंगा तो जान लूंगा, नहीं जानूंगा तो अज्ञानी रहूंगा। विश्वास नहीं करूंगा। और इसने तो कुछ ऐसी हालत में पहुंचा दिया था कुछ दिन कि घर के लोग समझते थे मैं पागल हो गया, क्योंकि ऐसी छोटी-छोटी चीजों पर भी मुझे शक होने लगा कि जैसे मेरे पिता हैं तो मैं उनसे पूछने लगा कि इसको मैं कैसे मानूं कि आप मेरे पिता हैं? मुझे क्या पक्का है? मुझे क्या पक्का है? और क्यों मानूं? और जब कोई चीज पर विश्वास न करने की सख्त हिम्मत कर ली, जो अड़चन होनी थी वह स्वाभाविक ही थी, सब तरफ अड़चन हो गई और साथ ही एक भीतर एक वैक्यूम आना शुरू हो गया। जब हम किसी चीज पर विश्वास ही न करें, तो भीतर कौन सी चीज को पकड़ें? किसको पकड़ें? क्या है भीतर? कोई पकड़ने का उपाय नहीं रहा कि कोई सहारा बना लें, कोई विचार पकड़ लें, कोई धर्म पकड़ लें, कोई संप्रदाय पकड़ लें; कुछ मानना है मेरे को, कोई किताब, गीता, कुरान, कोई सहारा बन जाए।

तो भीतर एक वैक्यूम आया। वह कोई एक वर्ष मैं बिल्कुल वैक्यूम में ही था। वैक्यूम में, मतलब आप आकर बैठ गए और मुझे पता नहीं कि आप आ गए हैं। आपको देख रहा हूं कि आप आ गए हैं, आप बैठे हैं, आप चले गए। लेकिन कल आप मुझे पूछें कि मैं आया था, तो मुझे पता नहीं। यानी आंखें बिल्कुल ऐसी हो गईं जैसे दर्पण हों--कोई आया और कोई गया। और एक वर्ष तक शायद मैं ज्यादातर पड़ा ही रहा, उठा भी नहीं। क्योंकि ऐसा, जब कोई भी विश्वास न रहा, तो यह भी होने लगा कि घर के लोग कहते हैं कि खाना खा लो, तो मैं कहता, खाया तो ठीक, नहीं खाया तो ठीक; क्योंकि खाना खाने से किसको क्या मिल गया है? कहते कि उम्र कम हो जाएगी, शरीर कमजोर हो जाएगा, मर जाओगे, बीमार पड़ जाओगे। तो मैं उनसे पूछता कि आपको पक्का भरोसा है कि आप खाना खाते रहेंगे, तो मरेंगे नहीं? अगर ऐसा हो तो मैं चल कर खाना खा लूं। आप मुझे ऐसा बता दें कि जो लोग खाना खाते रहे वे नहीं मरे, तो मैं भी खाना खा लेता हूं। और मैं आपसे यह पूछता हूं कि जिंदा रह कर आपको क्या मिल गया है जो मुझे जिंदा रहने की आप सलाह देते हैं? धीरे-धीरे घर के लोगों ने भी छोड़ दी फिकर कि जो करना हो करो, जो न करना
हो न करो। और तब उस वैक्यूम में मैं बिल्कुल आटोमेटा जैसा हो गया, यानी मैं उठ कर क्यों जा रहा हूं, कहां, यह मुझे भी ख्याल में न रहा। बस चीजें आटोमेटिक हो गईं। प्यास लगी है, तो जाकर पानी पी लिया है। भूख लगी है, तो जाकर चौके में बैठ गया हूं। नहीं लगी तो दो दिन गुजर गए, चार दिन गुजर गए।

स्नान करने गया हूं तो घंटों गुजर गए, दिन गुजर गए, स्नान ही करता रहा हूं। घर के लोगों ने समझा कि पागल हो गया है। मुझे भी बीच-बीच में शक एक ही बस दोहरता था, सब खो गया है तो बस एक ही बात दोहरती थी कभी-कभी दूसरे लोगों की आंखों में देख कर कि शायद मैं पागल हो गया हूं। लेकिन मैंने कहा कि ठीक है, अगर इस खोज में पागल ही हो जाना है, तो पागल हो जाना भी ठीक है।
वह शून्य जितना बढ़ता चला गया करीब दो या तीन बार मैं कोई कई दिनों तक कोमा में चला गया बिल्कुल, यानी दो-चार दिन बेहोश ही पड़ा रहा, होश ही नहीं है। एक वर्ष... लेकिन मैंने इससे भागने की कोशिश नहीं की। क्योंकि मैंने सख्त मान यह लिया था कि जो भी हो, मैं जानना ही चाहता हूं, या मर जाऊं या जान लूं। एक वर्ष तक निरंतर इस शून्य में गुजरते-गुजरते एक दिन कोई आधी रात होगी, जैसे मैं एकदम से उठ खड़ा हूं। और कोई तीन दिन से बेहोश था। और जैसे कोई एक्सप्लोजन हो गया भीतर, कोई चीज एकदम से फूट गई, कोई बंद द्वार खुल गया, कोई दीया एकदम से जल जाए और अंधेरे में चीजें दिखाई पड़ने लगें। वह हुआ, उस होने के बाद सब बदल गया। उस होने के बाद मैं एकदम नार्मल हो गया। एकदम चुपचाप, सीधा, नार्मल हो गया।
उस दिन के बाद कोई अविश्वास न रहा, कोई विश्वास भी न रहा। दोनों ही चले गए, दोनों ही चले गए। और एक सीधी दृष्टि हो गई। अब मेरे पास कोई पक्का नहीं है मुझे ख्याल कि क्या कहूंगा आप से। आप कोई बात पूछ लेते हैं, तो मुझे दिखाई पड़ने लगता है। और जो मुझे दिखाई पड़ता है वह आपसे कह देता हूं। उसमें मुझे भी पता नहीं कि इस शब्द के बाद दूसरा शब्द क्या आएगा और इसके बाद क्या कहूंगा, यह मुझे कुछ पता नहीं है। और जब कोई नहीं है, तब मैं बिल्कुल खाली हूं। जब कोई आ गया है तो सोच-विचार खत्म ही हो गया। यानी अब बस जब बोल रहा हूं, तभी विचार है। नहीं बोल रहा हूं, तो बिल्कुल, बिल्कुल मौन हूं। लेकिन इतनी अदभुत शांति और ऐसे आनंद का अनुभव हुआ है कि मैंने ईश्वर का अर्थ ही यही कर लिया है, और जीने का एक बिल्कुल ही नया... खाना भी खा रहा हूं तो ऐसा नहीं है कि खाना मुझे कोई छोटा आनंद है। उतना ही आनंद है जितना परमात्मा का है। उसमें फर्क नहीं है। आपसे बात कर रहा हूं, तो आनंद मुझे उतना ही है कि जितना परमात्मा से बात करूं, उसमें मुझे फर्क नहीं है। सो रहा हूं तो उसमें भी आनंद है।
अब जो भी कर रहा हूं, यानी अब ऐसा नहीं है कि कोई मेरे लिए धार्मिक कृत्य है और कोई अधार्मिक कृत्य है, और कोई सांसारिक बात है और कोई पारलौकिक बात है। छोटी से छोटी चीज में, और सब चीजों में रस है। ऐसी किसी चीज में मुझे विरस है ही नहीं। वैराग्य जैसी चीज ही नहीं है मुझे। किसी चीज में कि मुझे विराग है, किसी चीज से भी, सभी चीजों में। और मैं तो इतना हैरान हुआ हूं कि अब तो मैं वैराग्य की परिभाषा ही यह करने लगा हूं कि राग अगर पूर्ण हो जाए, तो वैराग्य हो जाता है। और स्वाद अगर पूर्ण आ जाए, तो स्वाद से मुक्ति हो जाती है।
तो अब तो जो भी चीजें हैं, उसमें कैसा पूरा... उसमें पूरा ही डूब जाता हूं। खाना खा रहा हूं, तो पूरा ही खा रहा हूं, यानी उस वक्त मैं खाना ही खा रहा हूं, उस वक्त कुछ और नहीं कर रहा हूं। सो रहा हूं, तो बस सो ही रहा हूं। कल की कोई बात करता है तो ही मुझे कल का ख्याल आता है; नहीं तो कल जब आएगा जब उसे देख लेंगे। अभी जो है, है। आपके घर ठहरता हूं, तो आप ही मेरे परिवार के हैं। मुझे याद ही नहीं आता किसी और का फिर। और आपका घर छोड़ कर गया, तो फिर मुझे आप याद ही नहीं आते कभी। फिर आऊंगा दुबारा, तो फिर ऐसे लगेगा कि आप ही के साथ था सदा। और बिल्कुल याद आ जाएंगे और पूरे याद आ जाएंगे। किसी को भूलता ही नहीं और किसी को याद भी नहीं करता कभी। यानी एक तो न भूलना ऐसा होता है कि हम किसी को याद करते रहते हैं तो नहीं भूलते। तो कभी किसी को याद ही नहीं करता। तो बस जब वह सामने आ जाता है, तो याद आ जाता है। जब वह चला जाता है, तो उसी के साथ उसकी याद भी चली जाती है। एकदम जैसे एक खाली मकान हो, वैसी हालत हो गई है।
लेकिन अदभुत! और न कुछ छोड़ने का मन है, न कुछ पकड़ने की बात है। न किसी
के पक्ष में हूं, न किसी के विपक्ष में हूं। और यह भी पक्का नहीं है कि जो आपसे कहता हूं, उसका आग्रह भी नहीं है कि उसे कोई माने। क्योंकि मैंने तो

सब न मान कर एक दिशा पाई है। इसलिए तो लोगों को कहता रहता हूं कि जहां तक बने, किसी को मानना मत। मुझको भी मत मानना, मानना ही मत। और न मानने में ठहरने की कोशिश करना। और अगर ठहर गए कभी न मानने में, तो वह हो जाएगा जो जानना है। और मानने वाला कभी जानने तक नहीं पहुंचता है।
और जिस दिन से यह हुआ है, उस दिन के पहले मैं किसी से बात ही नहीं करता था। यानी आप मुझसे बात करवाना ही मुश्किल था। यानी ऐसा भी हो जाता था कि कोई मित्र आ गया है, और जबरदस्ती मुझे हिला रहा है और वह कहता है कि इस बात का जवाब दो, मैं बैठा उसे देख रहा हूं, कोई जवाब ही नहीं है। और यह भी नहीं कहूंगा कि मैं नहीं कहता हूं, नहीं कहूंगा। मुझे कोई रुचि भी नहीं थी किसी और में।
लेकिन उस विस्फोट के बाद एक और अजीब घटना घटी है, और वह यह कि यह अनुभव होना शुरू हुआ कि आनंद को जितना बांट दो वह उतना बढ़ जाता है। तो अब कोई ऐसा नहीं है कि मैं किसी के माइंड को चैनेलाइज कर रहा हूं। जैसा आप बोलते हैं, किसी के माइंड को चैनेलाइज नहीं कर रहा। मुझे जो लगा है वह कह देता हूं और अपने रास्ते पर चला जाता हूं। फिर उस कहने के पीछे यह भी नहीं है कि आपने उसे माना, पकड़ा, स्वीकार किया। आपसे कोई संबंध ही नहीं बांधता कि कोई मेरा शिष्य हुआ, कि कोई अनुयायी हुआ, कि कोई, कोई मेरा साथी हो गया। ऐसा भी कुछ भी नहीं है बात। और ख्याल ही नहीं है। बस बात इतनी है कि आपने मुझे सुन लिया, मेरी बात सुन ली और मेरे भीतर जो--जैसे कोई बादल भर जाए पानी से, तो बरस कर कोई धरती पर कृपा नहीं करता है, बल्कि धरती कृपा करती है कि बरस जाने देती है।

जे. कृष्णमूर्ति के विचार और आपके विचार कहां तक मिल सकते हैं?

मिल सकते हैं, बहुत से विचारों से मिल सकते हैं। दुनिया में कोई समझदार आदमी का कभी फालोअर में ख्याल नहीं रहा, कभी नहीं रहा। लेकिन फालोअर सभी को मिल जाते हैं, जे. कृष्णमूर्ति को भी और सबको। विचार मेल खा सकते हैं बहुत से। सच तो यह है, यानी मेरा कहना तो यह है कि अगर मैं कुछ जान रहा हूं, तो यह हो ही नहीं सकता कि वह दूसरे जानने वालों से मेल न खाता हो। यह हो ही नहीं सकता है। अगर मैं जान रहा हूं तो वह मेल खाएगा ही। यह हो सकता है कि युग बदलते हैं, भाषा बदल जाती है, शब्द बदल जाते हैं, कहने के ढंग बदल जाते हैं। और फिर एक-एक व्यक्ति के साथ अपना-अपना माध्यम होता है।
अब बुद्ध और महावीर एक ही साथ थे बिहार में, और कई बार ऐसा हुआ, एक ही गांव में ठहरे, और एक बार तो ऐसा हुआ कि एक ही धर्मशाला के आधे हिस्से में बुद्ध ठहरे, आधे में महावीर ठहरे। और दोनों ऐसी उलटी बातें बोलते हुए मालूम पड़ते हैं। लेकिन दोनों बिल्कुल एक ही बात बोल रहे हैं। मुझसे किसी ने पूछा कि जब एक ही गांव में और एक ही धर्मशाला में बुद्ध और महावीर ठहर, तो मिले क्यों नहीं? तो मैंने कहा, मिलने की कोई जरूरत न थी। मिलने की जरूरत वहीं होती है, जहां कुछ भेद होता है। वहां कोई भेद नहीं था, मिलने की कोई जरूरत न थी। शब्द बिल्कुल अलग-अलग हैं और शब्द उलटे भी हैं। महावीर कहते हैं, आत्मा को पा लेना सबसे बड़ा ज्ञान है और बुद्ध कहते हैं आत्मा को मानने से बड़ा अज्ञान नहीं है। ये दोनों एक ही बात कह रहे हैं। उनके कहने का रास्ता बिल्कुल दूसरा है। महावीर कहते हैं, आत्मा को पा लेना सबसे बड़ा ज्ञान है। लेकिन वह कहते हैं कि तुम नहीं हो आत्मा। तुम अहंकार हो, इसको छोड़ दो, इसको जाने दो, तो आत्मा मिल जाएगी। और बुद्ध आत्मा को ही अहंकार कहते हैं, वे कहते हैं, आत्मा को छोड़ दो तो वह मिल जाएगा जो है, और तब कोई दिक्कत नहीं रह जाती है।
असल में दुनिया में जिन्होंने भी कुछ कभी जाना हो, उनके शब्द में रत्ती भर का भी भेद नहीं हो सकता। होने का कोई उपाय नहीं है। अगर भेद दिखता हो तो वह हमको दिखता है, वह हमको दिखता है भेद। क्योंकि हमारे पास सिर्फ शब्द होता है, अनुभूति नहीं होती है। और शब्द में भेद हो सकते हैं। अनुभूति में कोई भेद नहीं है। जब हम कहने जाते हैं तो भेद शुरू हो जाते हैं।

लाओत्से ने जिंदगी भर नहीं लिखा कुछ। बहुत लोगों ने कहा कि लिखो। उसने कहाः पहले बहुत लोग लिख चुके हैं, उससे कुछ फायदा हुआ? और अगर उससे फायदा नहीं हुआ, तो मुझसे और क्यों कुछ कागज खराब करवाते हो, तुम रहने दो। मैं नहीं लिखता। अस्सी वर्ष का हो गया तो छोड़ कर जा रहा था चीन को। तो उसके गांव, चुंंगी पर रुकवा लिया सम्राट ने चीन के और कहा कि ऐसे नहीं जाने देंगे, वह जो तुम जानते हो लिख जाओ। उसने कहा, मैं लिखे देता हूं, लेकिन जो मैं जानता हूं, पहली तो बात उसको लिख नहीं सकता और दूसरी बात, अगर कोई तरह से कोशिश भी करूं, तो तुम उसको पढ़ कभी नहीं पाओगे। क्योंकि तुम वही पढ़ सकते हो जो तुम जानते हो। उससे ज्यादा तुम कैसे जानोगे? और मुझे एक आदमी नहीं दिखाई पड़ता। उसने कहाः जो मेरी किताब पढ़ कर जान लेगा, तो क्यों मेहनत करवाते हो? लेकिन नहीं माना। तो उसने एक किताब लिखी--ताओ तेह किंग। एक छोटी सी किताब लिखी। इससे छोटी किताब नहीं है दुनिया में; और इससे कीमती किताब भी नहीं है। कीमती इस लिहाज से कि पहला ही वाक्य उसने लिखा, कि मुझे बड़ी दिक्कत में डाल रहे हो, सत्य कहा नहीं जा सकता और मैं कहने जा रहा हूं। और जैसे ही कहा जाता है वैसे ही सब गड़बड़ हो जाता है। वह जो जानना है, वह इतना बड़ा है और शब्द इतना छोटा है कि जैसे कोई सागर को जाने और एक प्याली में भर कर आ जाए घर, तो जो घर ले आए और उसे किसी को बताए कि यह सागर रहा तो प्याली में देखे वह सागर को, और जितना जान ले उतना भी शब्द में नहीं जाना जा सकता। लेकिन जो भी जिन्होंने कभी जाना है, वह एक ही है, वह दो हो नहीं सकता।
शब्द बदलते रहेंगे, रोज बदलते रहेंगे। गीता में जो है, कुरान में जो है, बाइबिल में, महावीर में, बुद्ध में वह यही है, लेकिन यह हम जानें तो ही ख्याल में आता है नहीं तो नहीं आता। और उसे अगर पाना हो, उसे अगर जानना हो, तो किसी को पकड़ मत लेना--महावीर को, बुद्ध को या कृष्णमूर्ति को, या मुझे, या किसी को भी। पकड़ा कि खो गया। पकड़े कि बासी चीज पकड़ ली और गए। तो सारी चेष्टा यह नहीं है कि मैं आपको कह कर कुछ समझा दूंगा। कहने की सारी चेष्टा यह है कि शायद थोड़ी सी बेचैनी आप में हो जाए। और एक मूवमेंट शुरू हो जाए, गति हो जाए और कहीं आप चल पड़ें, कोई यात्रा शुरू हो जाए। यह जो आप कहते हैं, चैनेलाइज नहीं कर रहा हूं।

यह जो आप बोल रहे हैं, इसका कोई लक्ष्य तो है न?

बिल्कुल नहीं। नहीं देवानंदजी, बिल्कुल नहीं। क्योंकि मेरा मानना यही है कि लक्ष्य सिर्फ दुखी चित्त में होता है। सिर्फ दुखी आदमी के पास लक्ष्य होता है।

संसार में चार आदमी अगर अच्छा सोचने लगें, तो यह लक्ष्य ही हो गया?

नहीं, नहीं, यह मैं नहीं कह रहा हूं कि अच्छा सोचने लग जाएं, जैसा सोचना चाहिए, तो फिर तो मुझे बताना पड़े कि कैसे सोचना चाहिए। वह मैं नहीं कह रहा हूं। और जैसा लक्ष्य की बात उठाई, तो बहुत अच्छी बात उठाई। क्योंकि आमतौर से हमारा ख्याल यह है कि जो भी हम करते हैं, उसका कोई लक्ष्य होना चाहिए। और मजा यह है कि लक्ष्य भविष्य में होता है, और करना वर्तमान में होता है। और वर्तमान और भविष्य कभी नहीं मिलते। मिलते ही नहीं। लक्ष्य सदा वर्तमान में होता है और करना सदा अभी होता है। इसलिए एक और तरह की जिंदगी भी है कि जहां करना ही लक्ष्य होता है। जैसे कि एक आदमी चला है, कहीं जा रहा है, दिल्ली जा रहा है पैदल चल कर, तो उससे आप पूछते हैं, कहां जा रहे हो? तो वह कहता है कि दिल्ली जा रहा हूं। लक्ष्य है एक। एक आदमी सुबह घूमने निकला है टहलने, आप उससे कहते हैं, कहां जा रहे हो? वह कहता है, जा कहीं भी नहीं रहे हैं। घूम रहे हैं। लक्ष्य तो वहां भी है, लेकिन वह उसी के साथ जुड़ा है, बस उसके बाहर नहीं है।
जैसे वॉनगाग को किसी ने पूछा कि तुम किसलिए पेंट करते हो? उसने कहाः किसलिए? तुमने कभी चांद से नहीं पूछा कि तुम किसलिए हो? तुमने कभी फूलों

से नहीं पूछा कि किसलिए खिलते हो? जैसे फूल खिलते हैं और जैसा चांद आकाश में होता है ऐसा हम पेंट करते हैं। किसलिए नहीं। पेंट करना ही आनंद है। मैं जब आपसे बोल रहा हूं, तो वह बोलना ही आनंद है। और आपने सुन लिया, यह इतना बड़ा आनंद है कि इसके आगे और लक्ष्य बनाने की कोई जरूरत नहीं। और कुछ बनेगा तो वह बनेगा अपने से। उससे हमें कुछ लेना-देना नहीं है, उससे कुछ हमारा प्रयोजन नहीं, मतलब हमारी नजर में वह नहीं है। तो मैं बिल्कुल लक्ष्यहीन आदमी हूं। और मेरा मानना है कि जिसने भी जिंदगी में लक्ष्य खोजा, वह मुश्किल में पड़ेगा। और जिसने जिंदगी को ही लक्ष्य मान लिया, जान लिया, जीना ही--रोज-रोज, पल-पल जी लेना ही।
जीसस के जीवन में एक घटना है। वे गुजर रहे हैं एक बगीचे के पास। उनके मित्र साथ हैं। और बगीचे में लिली के फूल खिले हैं। जीसस ने उन फूलों को दिखा कर कहाः देखते हो लिली के फूलों को? सोलोमन--वह सबसे बड़ा सम्राट था उनका--जैसे हमारे यहां कुबेर की कल्पना है, वैसे सोलोमन की है। सोलोमन अपनी पूरी शान में भी इतना शानदार नहीं था, जितना ये लिली के गरीब फूल हैं। तो किसी से उसने पूछा कि कारण क्या है? उन्होंने कहाः कारण यह है कि सोलोमन कल के लिए जी रहा था, लिली के फूल अभी जी रहे हैं, अभी, इसी वक्त, कल है ही नहीं, कल से कोई लेना-देना नहीं है।
लक्ष्य जो है वही आदमी के चित्त में टेंशन है। और जिस आदमी की जिंदगी
में लक्ष्य नहीं है, उसकी जिंदगी में कोई टेंशन नहीं है।

पच्चीस साल पहले हमारे नेता गांधी जी या जवाहरलाल जी ने आजादी हासिल की, तो उनका लक्ष्य था कि आजादी लेनी है। यदि लक्ष्य न होता तो आजादी नहीं मिलती।

बहुत बड़ी आजादी मिलती।

अंग्रेज बाहर नहीं जाता, कहने का मतलब है?

वह भी जाता कि नहीं... क्योंकि अंग्रेज के जाने से आजादी नहीं मिल जाती।

तो वह लक्ष्य ही था जो ले गया उनको आगे...

हां, हां, बिल्कुल ही ठीक कह रहे हैं आप। बिल्कुल ही ठीक कह रहे हैं आप। जहां तक जिंदगी की सामान्य दौड़ का संबंध है, वहां लक्ष्य ही लक्ष्य हैं, और उन लक्ष्यों में जीने वाले लोग हैं। लेकिन मेरा कहना यह है कि लक्ष्य में जीने वाला आदमी सदा दुख में जीता है। मेरा कहना यह है, जब तक उसे लक्ष्य नहीं मिलता तब तक वह दुख में जीता है। और जब लक्ष्य मिल जाता है तब एक नया दुख शुरू होता है कि अब क्या? लक्ष्य में जीने वाला जो माइंड है वह सदा दुख में जीता है। पहला तो जब तक लक्ष्य नहीं मिलता, तब तक वह इसलिए दुखी होता है कि लक्ष्य नहीं मिलता। फिर जब लक्ष्य मिल जाता है, तब वह इसलिए दुखी होता है कि अब क्या? या अब वह नया लक्ष्य बनाए और तब फिर दुख में जीना शुरू करे।
दो तरह के लोग हैः एक हैं जो सदा लक्ष्य में जीते हैं, जो बिना लक्ष्य
के एक मिनट जी नहीं सकते। जो अगर प्रेम भी कर रहे हैं तो भी लक्ष्य है, जो अगर गीत भी गा रहे हैं तो भी लक्ष्य है। जो कुछ भी कर रहे हैं, तो लक्ष्य है। ऐसे आदमी हमेशा टेंशन में जीते हैं। ऐसे आदमी को मैं अधार्मिक आदमी कहता हूं--अधार्मिक और उस आदमी को मैं धार्मिक कहता हूं जो जहां है वहीं जीता है।
एक झेन फकीर हुआ, बोकोजू। उसके पास एक आदमी मिलने गया। और उससे पूछा
कि तुम्हारी साधना क्या है? उस वक्त वह बगीचे में गड्ढा खोद रहा था। तो उसने कहाः गड्ढा खोदना। उसने पूछा, तुम्हारी साधना क्या है? उसने कहाः गड्ढा खोदना। आदमी ने कहाः ऐसी साधना कभी सुनी नहीं, यानी कि हम भी गड्ढा

खोदें तो कहीं पहुंच जाएंगे? उसने कहाः अगर कहीं पहुंचने के लिए गड्ढा खोदा, तो फिर गड्ढा खोदना साधना नहीं रह जाएगा। हम कहीं पहुंचने के लिए नहीं खोद रहे हैं; गड्ढा खोद रहे हैं। और गड्ढा खोदने में बड़ा आनंद आ रहा है। फिर भी उसने कहा कि कुछ मुझे बताओ कि मैं कैसे जीऊं? तो उसने कहा कि मुझे जब नींद आती है तो मैं सो जाता हूं और जब मेरी नींद खुलती है, तब मैं उठ आता हूं। जब मुझे भूख लगती है, मैं खाना खा लेता हूं। जब मुझे भूख नहीं लगती है, तो नहीं खाता हूं। जब चुप होने का मन होता है तो चुप हो जाता हूं; जब बोलने का मन होता है, तो बोलने लगता हूं। मैं एक सूखे पत्ते की तरह हो गया हूं। हवाएं उसे पूरब ले जाती हैं तो पूरब चला जाता हूं, पश्चिम ले जाती हैं तो पश्चिम चला जाता हूं। और हवाएं उसे जमीन पर गिरा देती हैं, वह विश्राम करने लगता है। और हवाएं उसे छाती पर उठा लेती हैं और आकाश में चढ़ा देती हैं, तो आकाश में तैरने लगता है। मैं एक सूखा पत्ता हूं। मैंने जिंदगी को स्वीकार कर लिया है।
एक तो है लक्ष्य से जीना। और साधारणतः आदमी को वही सिखाया गया है कि लक्ष्य से जीओ--धन कमाओ, यश कमाओ, पद कमाओ, यह बदलो, वह बदलो। लक्ष्य से जीओ। ऐसे ही सब आदमी जी रहा है--चाहे आजादी लाने वाला, चाहे गुलामी लाने वाला। सब लक्ष्य से जी रहा है आदमी। सारी आदमियत लक्ष्य से जी रही है। कुछ थोड़े से लोग कभी ऐसे भी हैं, जो लक्ष्य से नहीं जीते, सिर्फ जीते हैं। अर्थात जीना ही लक्ष्य है। मेरा मानना है, ऐसे ही लोग जीवन की परम कृतार्थता को उपलब्ध होते हैं--ऐसे ही लोग, और अभी तो ये छुटके व्यक्ति हैं, छोटे-मोटे! अगर किसी दिन कोई समाज भी ऐसे जीया, तो वह समाज भी परम कृतार्थता को उपलब्ध होगा, ऐसा मेरा कहना है। और परम कृतार्थता को कोई तभी उपलब्ध होता है, जब कल का कोई सवाल ही नहीं है, लक्ष्य का कोई सवाल ही नहीं है, और जब जीवन की छोटी से छोटी चीज भी आनंद बन गई है अपने में, यानी वह जूते भी साफ कर रहा है, वह ेउतना ही आनंदपूर्ण है जितना प्रार्थना करना है। और लक्ष्य कोई भी नहीं है।
तो मेरी, यानी मेरी समझ यह है कि अगर आनंद की दिशा में जाना हो, तो लक्ष्य के ऊपर उठना पड़ता है, उसके बियांड जाना पड़ता है। और अगर दुख की दिशा में जाना हो तो, लक्ष्य पकड़ कर चलना पड़ता है। और दुनिया उसे पकड़ कर चलती है। राष्ट्र चलते हैं, समाज चलते हैं, लेकिन मैं मानता हूं कि वह चलना गलत है। वैसी गुलामी भी गलत है, वैसी आजादी भी गलत है। यह नहीं कह रहा वैसी गुलामी भी गलत, वैसी आजादी भी गलत। और होता क्या है कि एक गलती को मिटाने के लिए दूसरी गलती लानी पड़ती है, लेकिन दूसरी गलती से ठीक नहीं हो जाती। मैंने सुना है कि एक गांव में एक आदमी ने कांच साफ करने का धंधा शुरू किया। उसने एक पार्टनर रखा। वह पार्टनर पहले जाकर लोगों के कांच गंदे कर आता। कोलतार फेंक आता उन पर। तीन दिन बाद वह आदमी निकलता सड़क पर चिल्लाता हुआ, कांच साफ करवा लो। लोग उससे कांच साफ करवाते। वे कहते, तुमने बड़ी कृपा की। तुम आ गए, बड़ी कृपा है, हम बड़े परेशान थे, सब खिड़कियां गंदी हो गई हैं। हर गांव में यही होता है--कि वह आदमी चार-छह दिन पहले कांच गंदे कर आता।
वे दोनों एक ही धंधे के पार्टनर हैं। यह गुलामी लाने वाले और आजादी लाने वाले एक ही धंधे के पार्टनर हैं। बहुत गहरे में दोनों लक्ष्य वाले हैं। वे भी एक लक्ष्य लेकर आ रहे हैं, ये भी एक लक्ष्य लेकर आ रहे हैं। मेरा मतलब समझे न? वह गुलामी को मिटा रहे हैं? वह कोलतार पोत गया कोई, अब यह उसको मिटाने वाला आ गया है। यह है सब पार्टनरशिप, एक ही बिजनेस है। उसमें कोई बहुत फर्क नहीं।
लेकिन कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिन्हें किसी धंधे से मतलब नहीं है। जिन्हें जीना ही काफी है। और मैं ऐसे लोगों को--अधिकतम लोग ऐसे हो जाएं--तो मानता हूं कि कभी एक ऐसा समाज भी बन सकता है जो बस जीता हो। तब स्वर्ग होगा। यानी मैं मानता हूं कि स्वर्ग और नरक में एक ही फर्क हो सकता है, अगर कहीं स्वर्ग और नरक है तो स्वर्ग में लोग सिर्फ जीते होंगे, और नरकमें लोग योजनाएं बनाते होंगे जीने की--कल, आगे, कभी।

तो मैं तो बिल्कुल लक्ष्यहीन हूं। और मैं मानता हूं कि लक्ष्य की बात
ही बुनियादी रूप से गलत है। और क्या करे आदमी कि किसी भी तरह से लक्ष्यहीन हो जाए--चाहे बांसुरी बजाए, चाहे पेंट करे, चाहे सड़क साफ करे। लेकिन ऐसा कुछ हो जाए कि यह मूवमेंट पूरी तरह से जिंदगी को घेर ले। और यह मूवमेंट परफेफ्ट एकशन बन जाए, पूर्ण कर्म हो जाए, यही क्षण।
शरद बाबू की एक किताब है, उसमें एक लड़की है, कमल। वह एक कलाकार है उससे शादी करके आ गई है। जिस मकान में वह कलाकार रहता है उस लड़की को लेकर आया है, तो मकान का मालिक जो बूढ़ा है, वह बहुत घबड़ा गया है। लड़की बड़ी सुंदर है और बड़ी निर्दोष मालूम पड़ती है। वह जब दोपहर को कलाकार गया है, तो उस लड़की को कहता है कि पागल, तुझे कुछ पता है, कि यह आदमी और भी दस-पांच औरतों को यहां ला चुका है? यह दो-चार महीने से ज्यादा नहीं चलती है एक स्त्री। तूने ठीक से शादी कर ली? कानून से? नहीं तो कल मुश्किल में पड़ जाएगी। उस लड़की ने कहाः हे भगवान! यह तो बड़ा अच्छा हुआ। वह तो कहता था कि कानून से शादी कर लो। लेकिन मैंने ही कहाः शादी की क्या जरूरत है? प्रेम काफी है। यह तो बड़ा अच्छा हुआ। अगर हम कानून से शादी कर लेते तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाते; क्योंकि तीन महीने बाद जब वह छोड़ता, तो छोड़ न सकता। और जब छोड़ना चाहता, तो छूटना तो हो ही जाता, सिर्फ कानून रह जाता। यह तो बड़ा अच्छा किया, भगवान की कृपा। उस बूढ़े ने कहाः पागल तुझे पता नहीं है। यह सब प्रेम चुक जाएगा जल्दी। तो उसे लड़की ने उस बूढ़े से कहा कि मालूम होता है आपने कभी प्रेम को जाना नहीं। क्योंकि जब प्रेम होता है, तो क्षण काफी होता है। उसके आगे के क्षण की फिकर किसको होती है? वह तो जिसको प्रेम नहीं होता उसी को होती है। आगे के क्षण की फिकर कि कल भी प्रेम होगा कि नहीं, यह सिर्फ फिकर पैदा ही तब होती है जब आज प्रेम नहीं हो जाता है। उसने कहाः अभी तो प्रेम है। और जब तक है, है और जब नहीं होगा, नहीं होगा। उपाय क्या है? अभी है। और तुमने अच्छा बता दिया। अगर पंद्रह ही दिन रहना है प्रेम, तो फिर पूरा जी लूं! फिर एक क्षण खोना ठीक नहीं। क्योंकि फिर पंद्रह साल रहता, तो आराम से भी जी सकते थे, और अगर पंद्रह जन्म रहता, तो और भी फुरसत हो जाती। फिर कभी चूक भी सकते थे। बीच में छुट्टी भी रख सकते थे। अब वह सब नहीं रहा। तो पंद्रह ही दिन होगा न? तब तो एक-एक क्षण मूल्यवान हो गया है।
तो मैं मानता हूं कि चूंकि हम एकदम दुख में हैं, और एकदम व्यर्थता में हैं, और कोई रस नहीं है, कोई आनंद नहीं है कहीं भी काम में। इसलिए हम रस और आनंद को लक्ष्य में रख कर सुविधा बनाते हैं जीने की। वहां रख लेते हैं कि कल होगा, कल होगा। आज तकलीफ है, झेल लो; आज मुश्किल है, झेल लो। कल सब ठीक हो जाएगा, वह लक्ष्य मिल जाएगा, तब सब ठीक हो जाएगा। आज के जीने की जो कठिनाई है, उसे हम कल के लक्ष्य को बना कर सरल बनाने की कोशिश करते हैं कि आज जीना मुश्किल हो जाए। अगर आप लक्ष्य मिटा दें किसी का, और आज जीवन दुख है, तो फिर जीएगा कैसे? तो वह कल लक्ष्य बना कर। आज के दुख को झेलने का उपाय है लक्ष्य। लेकिन जब आज आनंद हो तो कल के लक्ष्य का सवाल क्या है? कल है ही नहीं!
यानी अगर बहुत ठीक से हम समझें, तो कल दुख से पैदा होता है। और गहरे में समझें, तो टाइम जो है वह दुख से पैदा होता है। और आनंद में टाइम नहीं होता। अगर आप एक क्षण को भी आनंद में हैं, तो फिर समय नहीं रह गया। समय है ही नहीं। और जब समय न हो, तो लक्ष्य कहां होगा? क्योंकि लक्ष्य हमेशा भविष्य में हो सकता है, और भविष्य हो सकता है समय में। और वर्तमान, समय का हिस्सा नहीं है। भविष्य समय है, और अतीत समय है। वर्तमान, समय का हिस्सा है ही नहीं।
तो मैं समय के तीन हिस्से नहीं करता--अतीत, वर्तमान, भविष्य; नहीं। वर्तमान तो समय का हिस्सा ही नहीं है। समय का हिस्सा तो है भविष्य और अतीत। अतीत है स्मृति, वह है समय, और भविष्य है आशा, कल्पना, लक्ष्य, वह है समय।
और वर्तमान का क्षण तो बिल्कुल ही कालातीत है। अगर उसमें हम डूब जाएं,
तो हम एकदम काल के बाहर हैं। चाहे हम किसी वजह से डूब जाएं, चाहे कोई प्रेम के क्षण में, संगीत के क्षण में, किसी भी क्षण में डूब जाएं, किसी सृजन के

क्षण में डूब जाएं। एक चित्रकार चित्र बना कर डूब जाता है। एक मूर्तिकार मूर्ति बनाने में डूब जाता है। एक संगीतज्ञ संगीत में डूब जाता है। और धार्मिक व्यक्ति मैं उसको कहता हूं, जो चौबीस घंटे डूबा ही रहता है। चित्रकार चित्र बना कर फिर बाहर आ जाता है। मूर्तिकार मूर्ति बनाता है, फिर वापस, वही हमड्रम दुनिया में वापस लौट आता है। और धार्मिक व्यक्ति उसको मैं कहता हूं जो चौबीस घंटे उसमें ही डूबा रहता है। और ऐसा अगर डूबना हो, तो फिर जिंदगी का प्रत्येक क्षण ही डुबाने वाला बने तब, और वह डुबा सकता है। और ऐसे डुबाने की प्रक्रिया को ही मैं साधना कहता हूं। यानी लक्ष्य छिन जाए जीवन से, और क्षण गहरा हो जाए! और जिंदगी फैलाव में न हो। दो तरह की जिंदगी है। एक फैलाव की जिंदगी है, हॉरिजंटल है। एक लकीर पर बिंदु रखे हुए हैं, वह चले गए हैं आगे तक, पीछे तक। और एक जिंदगी इंटरसिटी में है, वर्टिकल है, ऊपर जाती है। नीचे जाती है, ऐसी आड़ी नहीं जाती। तो अगर वर्टिकल जिंदगी में जाना हो, तो यह क्षण काफी है, इसमें से गहरे से गहरा डूबा जा सकता है, ऊंचे से ऊंचा जाया जा सकता है। वह एक जाने का मार्ग ही अलग है। और वहां प्रत्येक क्षण अपने में पर्याप्त है, अगले क्षण का सवाल नहीं है। और अगर ऐसे न जाना हो, तो फिर हॉरिजेंटल गति है। कि एक क्षण से दूसरा क्षण, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा, और पहले क्षण को इसमें गुजारो, कि दूसरा क्षण आएगा। तो जीएंगे। दूसरा इसमें गुजारो, कि तीसरा आएगा, तो जीएंगे। और ऐसे पूरी जिंदगी गुजारो और आखिर में मौत हाथ में आ जाती है, और कोई लक्ष्य नहीं आता हाथ में, आ सकता नहीं। क्योंकि लक्ष्य आ सकता था, उसी वर्तमान में पकड़ लेने से, उतर जाने से।
एक जर्मन मिस्टिक हुआ, इकहार्ट। वह एक कहानी कहता था। वह कहता था, एक आदमी ने ज्ञान इकट्ठा करने के लिए दुनिया की सारी किताबें इकट्ठी कीं। उसने सोचा कि किताबें इकट्ठी कर लूं ताकि ज्ञान मिल सके। ज्ञान लक्ष्य बनाया, किताबें संग्रह कीं। संग्रह करते-करते-करते वह साठ साल का हो गया, और किताबें अभी भी बहुत बाकी रह गई थीं। और उसने कहा जिंदगी तो चुकी जाती है, वह ज्ञान कब होगा? किसी ने उसको कहा कि तू पागल किताबें ही जुटाता रहेगा? उसने कहाः ज्ञान तो तभी होगा न जब सब किताबें जुट जाएंगी। पर किताबें बहुत ज्यादा हैं, और तेरी जिंदगी बहुत छोटी। तेरी जिंदगी चुक जाएगी, किताबें नहीं जुटेंगी। तो तुझे ज्ञान करना हो, तो अभी कर ले। लेकिन उसने कहाः अब मैं क्या कर सकता हूं। इतनी किताबें हो गईं--साठ साल का बूढ़ा आदमी, इतनी किताबें इकट्ठी करने में लगा रहा, तो ख्याल नहीं किया कि कितनी हो गयी। आज जाकर देखा, तो घबड़ा गया, किताबें इतनी थीं कि साठ जन्मों में प.ढ़ी नहीं जा सकती।
तो बीमार पड़ गया। उसने गांव के बड़े पंडितों को बुलाया और कहा कि बड़ी कृपा होगी, मैं तो मर गया, साठ साल गंवा दिए। और अब मौत करीब आती है, और किताबें इतनी ज्यादा हैं, तुम किसी तरह संक्षिप्त कर दो, तो बड़ा अच्छा हो। तुम सब पंडित लग जाओ, जो खर्च होगा मैं दे दूंगा। लेकिन किताबें संक्षिप्त करो। पंडितों ने पांच साल लगाए। किताबें संक्षिप्त कीं। आदमी और बूढ़ा हो गया। अब वह प्रतीक्षा कर रहा है कि वे संक्षिप्त कर लें, तो ज्ञान मिल जाए। और वक्त संक्षिप्त करने में जा रहा है। फिर वे किताबें लेकर आए, तो पांच ऊंट पर लद जाएं, इतनी किताबें थीं। क्योंकि वह लाइब्रेरी तो उसकी इतनी बड़ी थी कि पांच सौ ऊंट पर लद जाए। उसने कहाः पागल, यह तो मुश्किल है, अब मैं कब पढ़ पाऊंगा? ये पांच ऊंट पर लदी हुई किताबें भी बहुत ज्यादा हैं। यह तो नहीं हो सकता है पढ़ना इनका। और संक्षिप्त करो। तो उन्होंने कहाः पांच वर्ष और लग जाएंगे।
पांच वर्ष और लगे। वे और किताबें संक्षिप्त करके लाए। जब वे लाए तो वह बीमार, मरणासन्न पड़ा था। चिकित्सक घेरे खड़े थे। पांच किताबों में संक्षिप्त कर लाए थे। उस आदमी ने सिर पीट लिया। उसने कहाः ये पांच किताबें मैं कब पढूंगा? और संक्षिप्त करो। क्योंकि मुझे ज्ञान पाना है। उन्होंने और संक्षिप्त कीं। लेकिन अब की बार जब वे आए, तब वह बेहोश हो गया था। और चिकित्सकों ने कहा, कि घड़ी दो घड़ी का मेहमान है। वे पांच पन्नों में संक्षिप्त करके लाए थे। पर पांच पन्ने भी बहुत ज्यादा थे। चिकित्सकों ने

कहाः पांच पन्ने कब पढ़ पाओगे? यह तो मरा, अभी मरा। और संक्षिप्त करो। उन्होंने और संक्षिप्त किया, तब वे पांच शब्द लेकर आए, लेकिन तब वह आदमी बिल्कुल मरने के कगार पर था। पांच शब्द नहीं कह पाए, उसके कान में, एक शब्द कह पाए। वह बेहोश था, लेकिन तब उसने सुना भी नहीं होगा। कोई कहता है, उन्होंने कहा, परमात्मा, कोई कहता है, मोक्ष, निर्वाण। कुछ भी कहा हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। और वह आदमी जिंदगी भर जो जुटाता रहा। इकहार्ट कहता था कुछ ऐसे लोग हैं जो जिंदगी, जिंदगी जीएंगे कभी इसकी व्यवस्था में गंवा देते हैं।

लेकिन लक्ष्यहीनता भविष्य में है?

जी नहीं, लक्ष्यहीनता ही जीवन है।

क्या लक्ष्यहीनता स्वयं में एक लक्ष्य नहीं है?

हां, ऐसा कह सकते हैं, ऐसा कह सकते हैं। लेकिन नहीं कह सकते हैं इसलिए
कि लक्ष्य होता है सदा भविष्य में। लक्ष्य होता है सदा भविष्य में और जीना होता है सदा अभी। और अभी और भविष्य का कोई, कोई मेल कहीं नहीं होता। कह सकते हैं कि जीवन ही लक्ष्य है। लेकिन वह लक्ष्य की भाषा खतरनाक है, क्योंकि लक्ष्य का ख्याल होता है आगे, कभी होगा जो, और जीवन है अभी। लक्ष्य होगा कहीं, समवेयर, और जीवन है यहां। उन दोनों के बीच कोई मेल नहीं। इसलिए कहें तो कह सकते हैं, हर्जा नहीं है कहने में; लेकिन खतरनाक है कहना। क्योंकि वह पुराना भाव फिर ख्याल में आ जाता है। और दूसरी बात जो आप कहते हैं कि लक्ष्यहीनता मृत्यु नहीं है? नहीं, बस लक्ष्य की खोज ही मृत्यु है।
वह लक्ष्य की खोज में जीवन खो जाता है।

फिर विकास तो रुक जाता है।

न, यह हमें लगता है, यह हमें लगता है। क्योंकि हमारी जो धारणा है वह यह
है कि जब तक लक्ष्य का तनाव हमें खींचने को न हो, तब तक विकास होगा ही नहीं।
एक छोटी सी कहानी कहूं आपको। कल्याण जी, ख्याल में ले लीजिए।
एक रात तानसेन विदा हुआ है अकबर के दरबार से। सीढ़ियों पर अकबर उसे छोड़ता है और सीढ़ियों पर हाथ पकड़ कर रोक लेता है। अकबर की आंखों में आंसू और वह उससे कहता है कि तू कैसा अदभुत आदमी है! पृथ्वी पर तेरे जैसा कभी कोई हुआ है संगीतज्ञ? है कोई? कई बार मेरे मन में सवाल उठता है कि तुझसे भी बेहतर किसी ने गाया-बजाया होगा? और कल से मैं बड़ा चिंतित हूं, क्योंकि रात मुझे एक और ख्याल आया; हो सकता है, तूने भी किसी से सीखा हो। कोई तेरा गुरु हो। तेरा कोई गुरु है? तानसेन ने कहाः मेरे गुरु हैं, जिनसे मैंने सीखा। वह हैं अभी। तो अकबर ने कहाः कभी उन्हें बुला दरबार में और हम उन्हें सुनें। तानसेन ने कहाः यह जरा मुश्किल है। क्योंकि वे तब नहीं गाते जब कोई कहे कि गाओ। किसी को सुनना हो, तो तब सुनना पड़ता है, जब वे गाते हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि जब किसी ने कहा कि गाओ, तब कैसे गाया जा सकता है? जैसे किसी ने कभी कहा कि करो प्रेम, तब कहीं प्रेम किया जा सकता है? फिर अभिनय हो सकता है, प्रेम नहीं हो सकता। तो वे गाते नहीं हैं कहने से; कभी गाते हैं।
तो उन्होंने कहाः फिर कैसे होगा? उसने कहाः मैं पता लगाता हूं कि वे
कब गाते हैं। जब गाते हैं तब हम चलें। चोरी से सुनना पड़ेगा, क्योंकि हो सकता है हम सामने जाएं वे बंद कर दें। छिप कर ही सुनना पड़ेगा। उनको छिप-छिप कर ही मैंने सीखा है। और सच तो यह है कि सीखना सब छिप-छिप कर ही होता है। वह इतना डेलिकेट मामला है कि आमने-सामने थोड़े ही होता है। वह तो छिप-छिप कर ही होता है, किनारे-किनारे से बच कर होता है। और जो लोग आमने-सामने देखने के आदी होते हैं, वे कभी नहीं सीख पाते। वह बिटवीन दि लाइंस होता है। जो लाइन से ही पढ़ने के आदी होते हैं, वे चूक जाते हैं। उसने कहाः छिप कर!

और तानसेन ने कहा, कि पता लग गया है। वे तीन-चार बजे रात उठते हैं।
यमुना के तट पर रहते हैं। वहीं झोपड़ी के पीछे हम छिप जाएंगे रात दो बजे से।
जब वे गाएंगे, तब सुन लेंगे। शायद ही अकबर की हैसियत के किसी सम्राट ने चोरी से किसी फकीर का गीत सुना हो जाकर। अकबर छिप गया है दो बजे रात।
तानसेन है और एक-दो मित्र हैं। और तीन बजे के करीब हरिदास ने गाना शुरू किया, और अपने एकतारे पर गा रहे हैं और झोपड़े में नाच रहे हैं। फिर गीत बंद हो गया। वे स्नान करने चले गए।
फिर वे रथ में वापस लौटे। महल तक अकबर कुछ बोला नहीं, सीढ़ियों पर उसने कहा तानसेन से, कि मैं तो सोचता था कि तुझसे श्रेष्ठ कौन हो सकेगा? अब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं, तू तो कुछ भी नहीं है। लेकिन इतना फर्क क्यों? तो उसने, तानसेन ने कहाः फर्क इसलिए है कि मैं गाता हूं, बजाता हूं, कोई लक्ष्य है, कुछ पाने का ख्याल है। वे गाते हैं और बजाते हैं, और खत्म हो गई यह बात, कुछ पाने का ख्याल नहीं। वे मालिक हैं, मैं गुलाम। वह जो लक्ष्य है वह मेरी गुलामी बना हुआ है। वह जो मुझे मिलना चाहिए, वह मेरी नजर में है। मेरे प्राण तो उसमें लगे हैं। यहां मेरा प्राण ही नहीं है। जब मैं बजा रहा हूं, तब मेरे मुर्दा हाथ बजा रहे हैं। मेरे प्राण तो, वह जो मिलेगा उसमें है, जो आंखों में दिखेगा जो आदर, जो सम्मान, जो धन, जो प्रतिष्ठा उसमें है। तो मैं बिल्कुल मुर्दा बजाता हूं। उनका बजाना बड़ा जीवंत है। क्योंकि कुछ पाना नहीं है। न किसी की आंख का सवाल है, न किसी के सम्मान का। तो अकबर ने कहाः फिर वह बजाते ही क्यों हैं? क्योंकि हम कैसे सोच सकते हैं कि ऐसा भी कोई आदमी है जो बिना कारण बजाता हो? तो तानसेन ने कहा कि मैंने उनसे कभी पूछा, तो उन्होंने मुझसे यह कहा है कि दो तरह का बजाना है। एक तो वह बजाना है जिसके बजाने से आनंद मिलने की कल्पना है। और एक वह बजाना है जो आनंद के मिलने से निकलता है। एक वह बजाना है जो आनंद के मिलने से निकलता है। क्योंकि आनंद भी तो बंटेगा न? तो फिर बजेगा, कुछ होगा।
तो एक तो वह विकास है फीवरिश, बुखार से भरा हुआ, जो लक्ष्य के टेंशन से पैदा होता है। वह वैसा ही है, जैसे कोई किसी बैल के गले में रस्सी बांध कर खींच रहा है। तो बैल खिंच रहा है, और बैल यह भी कह सकता है कि अगर कोई रस्सी में नहीं खींचेगा, तो फिर बैल चलेगा कैसे? यह बात ठीक है। बैलगाड़ी में नहीं चलेगा। लेकिन जंगल में बैल का अपना एक चलना भी है, बैलगाड़ी का कोई लेना-देना नहीं है।
तो एक फीवरिश डवलपमेंट हैं हमारा, जिसमें बुखार है, और आगे का लक्ष्य रस्सी की तरह बंधा हुआ है। वह हमें खींचे चला जा रहा है। और इसे हम विकास कहते हैं? यह विकास नहीं है। यह सिर्फ बुखार है। विकास तो वह है, जो अत्यंत सहज है, जिसमें आगे कोई खींच नहीं रहा है, पीछे कोई धक्के नहीं दे रहा। बल्कि फूल खिल रहा है, क्योंकि कली फूल बनेगी ही। करोगे क्या? उस तरह से जो विकास होता है, वह भी एक विकास है। वह इसलिए नहीं होता कि आगे कुछ मिलना है, बल्कि जो हमें मिलता जाता है, वह हमारे भीतर नये-नये फूल खिलाता चला जाता है। जो-जो होता चला जाता है, वह नये-नये फूल खिलाता जाता है। फूल खिलते हैं, लेकिन उन फूलों के खिलने की कोई कामना नहीं है, कोई एंबीशन नहीं है, कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। फूल तो खिलते हैं। विकास तो होता ही है। बल्कि यह मैं मानता हूं, यही विकास है। क्योंकि इसमें बुखार नहीं है। अत्यंत स्वस्थ और शांत और साइलेंट और सहज। आदमी भर को ख्याल है यह कि विकास जो है वह तनाव से होगा और वह गलत शिक्षा का ख्याल है।

आप ऐसा नहीं समझते कि अच्छे, प्रतिभा के लोग, सब लोग इस विचार को फालो करें?

नहीं, नहीं, यह तो मैं कह ही नहीं रहा।

लेकिन अल्टीमेट तो यही होगा न?

हां, हां, फालो करें, ऐसा नहीं।

जो लोगों को मिलती ऊंचाई लक्ष्य की, वह तो नहीं मिलेगी न।

मैं कहता हूं मिलेगी, हजार-लाख गुना होकर मिलेगी। और बीमार नहीं होगी, स्वस्थ होगी, सहज होगी, सरल होगी। एक तो ऐसा भी है कि कली को जबरदस्ती भी खोल कर फूल बनाया जा सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं। आप पकड़ कर खोल दें, तो भी कली खिल जाएगी तो भी फूल दिखेगा। लेकिन एक वह भी कली है, जो खिलती है और फूल आता है। इन दोनों में बुनियादी फर्क है। एक फूल के खिलने में सहज और एक फूल की कलियों को जबरदस्ती खिला देने में। हो सकता है धोखा हो जाए। मैं तो यह कह रहा हूं कि फीवरिस आदमी दुनिया को कुछ दे ही नहीं पाता। सिर्फ अपने फीवर को संक्रमित कर जाता है।

लेकिन उस स्टेज पर पहुंच कर, उसके बाद एक दीगर सेक्रीफाइस नहीं होता
कि आप अपनी पर्सनल हैप्पीनेस लूज करके और कुछ दें दुनिया को... !

हां, मैं आपकी बात समझा। असल में सेक्रिफाइस बहुत गंदा शब्द है। त्याग शब्द ही बहुत बेहूदा है। और जब आप कहते हैं त्याग, तभी आप दूसरे को डॉमिनेट करना शुरू कर देते हैं। जब आप कहते हैं सेक्रिफाइस, तभी आप हावी होना शुरू हो जाते हैं। नहीं, वैसी सहज खिली हुई प्रतिभा भी बहुत कुछ देती है। लेकिन देने में कोई सेक्रिफाइस नहीं है। देने में भी आनंद ही है। और मैं यह कहता हूं कि देने को सेक्रिफाइस बनाना ही गलत है; और अगर सेक्रिफाइस करके देना पड़े, और दुख से देना पड़े तो मैं मानता हूं कि जो दुख से दिया जाता है वह कभी आनंद पैदा नहीं कर सकता, वह बहुत गहरे में दुख की ही प्रतिध्वनियों को बढ़ाता चला जाएगा। लेकिन जो आनंद से दिया जाता है, और आनंद से ही दान हो सकता है, लेकिन तब दान बिल्कुल मूक है। और तब दान देने वाले को पता भी नहीं है कि मैंने दिया। यही होगा कि दान देने वाला दानदाता तो बनेगा ही नहीं। सैक्रिफाइस का तो सवाल ही नहीं है। अनुगृहीत होगा उसका जिसने ले लिया, क्योंकि उसके आनंद को बंटने का मौका नहीं था न, किसी ने बांट लिया।
जब आप फूल के किनारे से निकलते हैं, अगर उसकी सुगंध आपको मिल गई। अगर फूल कह सके, तो अनुगृहीत होगा, धन्यवाद देगा, धन्यवाद। नहीं तो ऐसा भी हो सकता था, रास्ते से कोई न निकलता, सुगंध गिरती रहती। कोई पहचाना, तो धन्यवाद दे सकता है। जो महानतम दान है, वह त्याग से नहीं होता। वह आनंद से ही होता है। लेकिन हम सब इतने दुखी लोग हैं कि हम आनंद की भाषा नहीं समझ पाते। हम त्याग की भाषा समझ पाते हैं। तो मां अपने बेटे से कहती है कि तू अपना त्याग कर मेरे लिए। उसने त्याग किया अपने पति के लिए। उसका पति त्याग कर रहा है बेटों के लिए। बेटे त्याग कर रहे हैं बहनों के लिए। सारी दुनिया एक-दूसरे के लिए त्याग कर रही है और एक चक्कर पैदा हो गया है। और उसमें सब दुखी हैं। मेरा मानना यह है कि एक-एक व्यक्ति का सबसे बड़ा काम यह है कि वह आनंदित हो जाए। और उसके आनंद से बहुत कुछ बंटेगा चारों तरफ। फैल जाएगा चारों तरफ, लेकिन न तो त्याग होगा, और न त्याग का खतरा होगा। क्योंकि जिस आदमी ने भी त्याग किया, वह आपको टार्चर करेगा। त्याग बड़ा टार्चरिंग है। अगर मां ने कहीं यह कहा कि बच्चे, मैंने तेरे लिए नौ महीने पेट में रखा, बड़ा त्याग किया। ले ली जान उसने बच्चे की, उस बच्चे को मार डालेगी, वह जिंदा नहीं रहने देगी। अगर उसने यह कहा कि मैंने तुझे दूध पिलाया, तुझे बड़ा किया, तू रोया, तेरा... सब सेवा की, इतना मैंने त्याग किया, तो पहली तो बात, यह मां ही नहीं है।

तो वह त्याग ही कैसा, जो कहा जाए कि त्याग है?

हां, वही तो मैं उनसे कह रहा हूं। हां, मैं यही कह रहा हूं कि जो कहा जाए वही नहीं, जो अनुभव भी किया जाए वह भी नहीं। असल में त्याग का अनुभव ही गलत बात है। अगर मेरे आनंद से हुआ है, तो बात क्या है? त्याग कहां है? अगर

मैंने दो घंटे जाकर किसी फूल पर पानी डाला, और वह मेरा आनंद था, तो त्याग नहीं है। और अगर मैं जिसे प्रेम करता हूं, उसके पास रात भर बैठा रहा, वह बीमार है, तो त्याग नहीं है। त्याग, क्या है? यह मेरा आनंद है। और वह जो आप कहते हैं, यह तो एक्स्ट्रीम सेलफिसनेस, बिल्कुल ही ठीक कहते हैं। असल में प्रत्येक व्यक्ति सच्चे अर्थों में स्वार्थी हो जाए तो दुनिया की सब बीमारी खत्म हो जाए। लेकिन मजा यह है कि कोई स्वार्थी तक नहीं है, तो परार्थी होना तो बहुत मुश्किल ही मामला है। और परम स्वार्थ में सब परार्थ हल हो जाता है सहज ही, क्योंकि जब मैं परम स्वार्थ में उतरता हूं तब मैं करूंगा क्या--मैं अपना आनंद ही खोजूंगा न! और ध्यान रहे, कि जिस दिन भी मैं अपने आनंद को जीने लगता हूं, उस दिन मैं आनंद ही बांटूगा, करूंगा क्या? दुखी आदमी दुख बांटता है, चाहे कहे कुछ भी; क्योंकि जो हमारे पास है, वही हम बांट सकते हैं, और कुछ बांट भी नहीं सकते।
तो इधर मैं ऐसा, ऐसा सोचता हूं, लक्ष्य से मुक्त, त्याग से मुक्त, स्वार्थ-परार्थ की भाषा से मुक्त, सिर्फ जीने के आनंद में प्रफुल्लित, ऐसा व्यक्ति अगर खिले, तो उसकी सुगंध बहुत बंटेगी। क्योंकि उसमें सुगंध होगी, इसमें तो सुगंध हो ही नहीं सकती। जिसको आप कह रहे हैं उससे बहुत दान मिलेगा। लेकिन हमारी जो दुनिया है जो हमने बनाई है, दुख पर खड़ी है। और दुखी चित्त आधार है। और दुखी चित्त सिर्फ दुख की भाषा में जो सोच सकता है। और इसलिए हम कई बार पहचान भी नहीं पाते हैं। अब जैसे कि महावीर हैं, वे नग्न खड़े हो गए, तो जैन ग्रंथों में लिखा है, जैन गुरु समझाते हैं कि उन्होंने बड़ा त्याग किया--कपड़े छोड़ दिए, धन छोड़ दिया, दौलत छोड़ दी। वह मैं मानता हूं, इससे ज्यादा नासमझी की बात नहीं हो सकती। महावीर को नग्नता इतनी आनंद रही होगी कि अगर वे कपड़े पहनते तो वही त्याग हो जाता। महावीर को नग्न होना ऐसा आनंदपूर्ण रहा कि छूट गए कपड़े। अब लोग कह रहे हैं कि त्याग किया। यह वे लोग कह रहे हैं जो नंगे खड़े होने में कोई आनंद नहीं देख पा रहे हैं। वे ठीक कह रहे हैं; क्योंकि उन्हें तो नंगा खड़ा होना बड़ा दुख हो जाए। और यह आदमी नंगा खड़ा हो गया। हमें लग रहा है कि त्याग किया, यह हमें लग रहा है। और महावीर ने अगर महल छोड़ दिया, तो हमें लग रहा है कि भारी त्याग किया। क्योंकि महल! क्योंकि हम तो उस महल की कामना किए बैठे हैं कि मिल जाए, और महावीर को हो सकता है कि महल की दीवालें कारागृह बन गई हों और वह आदमी सिर्फ कारागृह से निकल भागा है।
और महावीर से जब किसी ने कहा कि आपने इतना छोड़ा, तो उन्होंने कहा, छोड़ा? कोई आदमी अपने घर का कचरा बाहर फेंक देता है, तो हम नहीं कहते कि उसने कुछ छोड़ा। जो मुझे कचरा दिखने लगा, वह छूट गया। जो मुझे आनंदपूर्ण था, वह पकड़ लिया। अपना-अपना आनंद। अपना-अपना आनंद। और अगर आनंद नहीं है, तो खतरनाक है वह आदमी। खतरनाक आदमी है अगर त्याग किया तो, अगर वह आनंद नहीं है उनका। अपना आनंद है उनका।

नहीं, नहीं, उसमें आनंद था, उनके सामने लक्ष्य था कि गांव के इतने लोग नंगे रहते हैं, उनके... ।

हां, अगर वैसा है तो खतरनाक आदमी हैं, खतरनाक आदमी हैं। समझे न? वह गर्दन पकड़ लेंगे फिर, बहुत सताएंगे वह, कई को सताएंगे इस तरह। गुरु लोग इसी तरह सता रहे हैं, बहुत सता रहे हैं। वे कह रहे हैं, हमने इतना त्याग किया। वह गर्दन पकड़ लेते हैं एकदम कि हम जेल गए थे, अब हमको गद्दी पर बिठाओ।

वह क्या अनुभूति है जिसकी वजह से सब परिवर्तन हो जाता है, बदल जाता है?
वह कैसे आएगी? आपका प्रयास था कहीं अनकांशस से सबकांशस से... ?

नहीं, वही मैंने कहा, वही मैंने कहा। अब इसे आखिरी बात मान लेना। तो वह
जो मैंने कहा न, कि मेरा प्रयास तो एक ही था कि जो मैं नहीं जानता हूं, वह न मानूं, किसी को पकड़ूं न, किसी बात को सत्य न मान लूं, किसी विचार को स्वीकार न करूं। जिसे मैं न जान लूं, मानूंगा नहीं, इतना ही प्रयास था। और जब

मानूंगा नहीं, तो हाथ से सब चीजें छूट गई, हाथ खाली हो गया। क्योंकि सब हाथ मान्यता से भरे हैं। पूरी खोपड़ी हमारी मान्यता से भरी है।
एक लड़की मुझे प्रेम करती थी, यूनिवर्सिटी में था, उसने मुझे कहा कि मैं आपसे विवाह करना चाहती हूं। मैंने कहाः तू कर सकती है। क्योंकि मेरा कोई भरोसा नहीं; क्योंकि मैं किसी को पत्नी नहीं मान सकता। मेरा भरोसा नहीं, मैं तुझे पत्नी नहीं मान सकता; क्योंकि ऐसी कठोरता मैं कर ही नहीं सकता कि तुझे पत्नी मानूं। मैं तुझे गुलाम नहीं बना सकता। और मैं कोई भरोसे का आदमी नहीं हूं। आज तुझसे कहता हूं कि प्रेम है और कल अगर प्रेम न रहा, तो कह दूंगा कि नहीं है। जिस दिन नहीं होगा उस दिन नहीं कहूंगा कि है, फिर ढोंग नहीं रचा सकूंगा। आज तू कहती है, तो मैं कहता हूं कि ठीक है। साथ रहना सुखद हो सकता है। तुझे रहना हो रह, लेकिन कल विदा हो सकते हैं।
फिर वह दुबारा लौटी नहीं कभी। क्योंकि हम तो सारा, मान्यता पर सारा मामला है न। पक्का भरोसा करके, आगे का इंतजाम करके, सिक्योरिटी करके। हमारे सब विश्वास ही सिक्योरिटीज हैं--भगवान को मानो, मोक्ष को मानो, नरक को मानो, कर्म को मानो, सब सिक्योरिटीज हैं--पाप को मानो, पुण्य को मानो। तो कोई सुरक्षा मैंने नहीं मानी। और वह विस्फोट जो आया वह असुरक्षित होने से आया। वह जो टोटल इनसिक्योरिटी पैदा हुई, उससे आया।

वह क्या था?

यह कहना बहुत मुश्किल मामला है कि वह क्या, वह क्या। ऐसे ही जैसे कि झील के एक झरने पर पत्थर रखा हो और पत्थर को हम तोड़ डालें और पत्थर बिखर कर फूट जाए, अलग हो जाए और झरना फूट पड़े पीछे से, जो कि था ही, जो कि है ही सब में। और हमने जो मान्यताएं पकड़ रखी हैं, वह पत्थरों की तरह हैं--चारों तरफ से उस झरने को रोके हुए है। और अगर हम तैयार हो जाएं, मान्यता के त्याग को, बिलीफ को, तो पत्थर हट जाते हैं, और झरना फूट पड़ता है। और वह झरना कैसा? यह इतना ही मुश्किल है मामला, जैसे कि किसी आदमी ने, आंखें न हों उसकी और उसने प्रकाश न देखा हो और वह पूछने लगे प्रकाश, और कोई आदमी उससे कहे कि घर में दीया जला है मेरे और दीये में सब दिखाई पड़ता है। वह आदमी कहने लगे, यह तो सब ठीक है, लेकिन दीया जला का मतलब क्या है? प्रकाश, इसका मतलब क्या है?
मैं एक कहानी निरंतर कहता हूं। रामकृष्ण कहते थे, वे कहते थे कि एक आदमी गया है अपने मित्र के घर। वह अंधा है। उसने खीर बनाई है। और उस अंधे ने पूछा कि यह खीर कैसी है, यह क्या है, किस चीज से बनी है? तो मित्रों ने कहा कि यह दूध से बनी है। पूछा कि पहेली मत उलझाओ; क्योंकि मुझे खीर का ही पता नहीं है और दूध का भी मुझे पता नहीं है। तुम कहते हो दूध से बनी है, और एक नया प्रश्न खड़ा हो गया है कि दूध क्या है? फिर उन्होंने कहाः दूध, दूध बिल्कुल सफेद होता है, शुभ्र। तो उसने कहाः यह शुभ्रता? मुश्किल में डाल दिया, मैं तो मर गया। वह खीर तो वहीं रही, दूध भी वहीं रहा! शुभ्रता क्या है? कुछ ऐसा समझाओ कि मैं जरा समझ जाऊं। तो एक मित्र ने कहा कि शुभ्रता, बगुला देखा है कभी? वह अंधा आदमी, उससे वह कहता है, बगुला देखा है कभी? तो बगुले की तरह सफेद पंख, बस वैसा ही सफेद दूध होता है। उस अंधे आदमी की आंखों में आंसू आ गए। उसने कहा कि तूने तो बड़ी मुश्किल कर दी। बगुला देखा है कभी? बगुला तो देखा ही नहीं, बगुला तो कभी देखा ही नहीं। कुछ ऐसा बताओ, अंधे का मजाक मत करो। कुछ ऐसा बताओ, कि मैं समझ जाऊं। तो एक मित्र पास आया, उसने हाथ उठाया और कहाः मेरे हाथ पर हाथ फेर। अब तो तेरी समझ में आता है कुछ? हाथ पर हाथ फेरा उसने। उसने कहा कि लेकिन इसका मतलब क्या है? स्पर्श हो रहा है तुम्हारे हाथ का, सुडौल है बहुत। तो उसने कहाः बगुले की गर्दन ऐसी होती है--सुडौल, हाथ की तरह। अंधा खड़ा होकर नाचने लगा। उसने कहाः जान गया कि दूध कैसा होता है, सुडौल हाथ की तरह न? बिल्कुल पहचान गया कि दूध कैसा होता है। सुडौल हाथ की तरह होता है। वे सब मित्र कहने लगे, क्षमा कर, क्षमा कर! यह बात मत कर। यह तो और मुश्किल हो गई इससे तो वही ठीक था कि तू जानता था कि नहीं जानता है। यह तो और झंझट हो गई। हम कुछ न समझा पाए।

असल बात यह है कि विस्फोट तो है अनुभव। और ऐसा अनुभव है जिसके लिए कोई पैरलल जीवन में नहीं है, कोई पैरेलल जीवन में नहीं है। बिल्कुल ही एक क्षण में, धीरे-धीरे कभी भी नहीं, इसीलिए विस्फोट कह रहा हूं। एक्सप्लोजन कहने का कारण ही कुल इतना है कि वह कोई ग्रोथ नहीं है कि ऐसा धीरे-धीरे होता है। क्योंकि धीरे-धीरे वे चीजें हो सकती हैं, जो खंड-खंड की जा सकें। जैसे प्रेम धीरे-धीरे नहीं हो सकता। धीरे-धीरे जो हो वह प्रेम नहीं, सिर्फ लाइकिंग होगी। और लाइकिंग अक्सर लव समझ ली जाती है। लव का तो विस्फोट ही होता है। धीरे-धीरे जो होता है वह सिर्फ पसंद है। धीरे-धीरे एक आदमी के साथ रहते हैं, हम उसे पसंद करने लगते हैं। और जिन मुल्कों ने विवाह ईजाद किया, उन्होंने इसी तरकीब पर ईजाद किया कि दो को साथ कर दो, वे धीरे-धीरे पसंद करने लगेंगे। और दूसरों के साथ का उपाय मत दो, ताकि उनको पसंद करना ही पड़े। इसलिए दूसरे की पत्नियों से, दूसरे की लड़कियों के मिलने का उपाय बंद कर दो ताकि साथ रहना पड़े। और साथ रहने से संग हो, उस संग से पसंदगी हो। पसंदगी से प्रेम मालूम होने लगे। वह विवाह के बाद प्रेम मालूम होते नहीं, क्योंकि विवाह के बाद एक ग्रोथ है, जो पसंदगी की है।
प्रेम तो एक विस्फोट है, जो एक क्षण में घट जाता है।
मैं सिर्फ उदाहरण के लिए कह रहा हूं। और ऐसा ही ज्ञान भी एक विस्फोट है, जो एक क्षण में घट जाता है। ऐसा नहीं होता कि थोड़ा-थोड़ा अज्ञान कम होता चला जाता है और एक दिन आप पाते हैं कि अब अज्ञान कम होते-होते ज्ञान आ गया ना। ऐसा नहीं होता जब मैं माचिस जलाता हूं तो ऐसा नहीं होता कि पहले थोड़ा अंधेरा बाहर जाता है।, फिर और थोड़ा अंधेरा बाहर जाता है, फिर और थोड़ा अंधेरा बाहर जाता है, ऐसा नहीं होता है। माचिस जली कि अंधेरा नहीं है। इसमें इतना ही विस्फोट है। लेकिन विस्फोट क्या है, यह विस्फोट करके ही जानना पड़ेगा। इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है।
तो उसके लिए मैं कहता हूं कि कभी दस-पांच मित्रों को लेकर दस-पंद्रह दिन के लिए कहीं भी एकांत में चल कर रहें। विस्फोट की प्रतीक्षा करें।

क्या मेरा भी हो सकता है?

हो सकता है। बिल्कुल हो सकता है। यानी मेरी तो सारी कोशिश ही यह है, मेरी सारी कोशिश ही यह है कि ख्याल में आ जाए कि ऐसी कोई चीज हो सकती है, फिर तो वह करनी ही पड़े तो ही हो। और वह हो सकती है। बिल्कुल हो सकती है। बल्कि तैयारी है हमारे भीतर सबके। और नहीं हो पा रही है, इससे हम बहुत ज्यादा कष्ट झेल रहे हैं। क्योंकि कोई झरना भीतर से फूटना चाहता है, और सब तरफ से पत्थर दबा दिए हैं। और वह झरना हमारी जिंदगी है। और जितनी सभ्यता बढ़ती जाती है, उतने पत्थर चढ़ते चले जाते हैं। और वह झरना दबता चला जाता है। इसलिए सभ्यता पागल करती है आदमी को। सभ्यता आत्महत्या लाती है। क्योंकि वह झरना कहता है कि मुझे निकलने दो। और हम सब दबाते चले जाते हैं। तो पत्थर क्या है, यह समझाया जा सकता है। वह हमारी पहचान है उससे और पत्थर हट जाए तो, विस्फोट होगा। लेकिन वह होगा, तो ही ख्याल में आता है, उसके पहले नहीं आ सकता है।

सम्बोधि के क्षण
पांचवां प्रवचन

क्षण-क्षण जीना

प्रश्नः कल बात हुई थी लक्ष्यहीनता पर। वह ठीक है कि बच्चे के लिए लक्ष्यहीनता एक आनंद का रास्ता है, तो क्या यह समाज के लिए घातक नहीं होगा? यह दिशाहीनता नहीं होगी उसकी? जिसको आजकल कहते हैं कि प्रोग्रेस है, आगे बढ़ना है। प्लानिंग का जमाना है, तो यही प्लानिंग किसे, क्यों? टारगेट बना लो फाइव इयर्स का, सेवेन इयर्स का, क्या वह सब गलत है लक्ष्यहीनता होना?

व्यक्ति को तो ऐसे ही जीना चाहिए कि जैसे कल है ही नहीं। जो क्षण मिला
है वह वही काफी है, तो ही व्यक्ति अधिकतम जी पाएगा। क्योंकि प्रतिक्षण का भोग कर लेगा। रहा समाज, तो सच बात तो यह है कि समाज केवल व्यवस्था है, उसके पास कोई आत्मा नहीं है। और व्यवस्थाएं तो कभी भी वर्तमान में नहीं जी सकती। असल में व्यवस्थाएं जीती ही नहीं, व्यवस्थाओं के पास कोई जीवन ही नहीं है। जीवन तो है व्यक्ति के पास। व्यवस्था के पास कोई जीवन नहीं होता। तो व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति अधिकतम जी सके। व्यवस्था का अपना कोई जीवन ही नहीं है। जब हम कहते हैं कि समाज का जीवन, तो हम ऐसे शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं, जिनका कोई भी अर्थ नहीं है। लेकिन बहुत बार शब्दों से भूल पैदा होती है। एक छोटी सी घटना से मैं समझाऊं कि शब्दों से बड़ी अदभुत भूल पैदा होती है।
अलाइस इन वंडरलेंड में एक छोटी सी कहानी है। अलाइस पहुंची परियों के देश में। परियों की रानी से मिलने गई। तो रानी ने उससे पूछा, डीड यू मीट समबडी कमिंग टुवर्ड्स मी? कोई मिला रास्ते में मेरी तरफ आता हुआ? उसने कहाः नोबडी मैडम, कोई भी नहीं। लेकिन रानी ने समझा कि नोबडी नाम का कोई आदमी आता है। उसके ही पीछे रानी का हरकारा है, डाकिया है, वह आया मैसेंजर, उसने उससे भी पूछा कि डीड यू मीट समबडी कमिंग टुवर्ड्स मी? उसने कहाः नोबडी मैडम, तब तो और पक्का हो गया क्योंकि दो आदमियों ने कहा कि नोबडी आ रहा है। तो उस रानी ने उस मैसेंजर से कहा कि इट्स नेवर बी वॉक स्लोवर दैन यू, नोबडी वॉक स्लोवर दैन यू। वह जो नोबडी है, वह तुमसे बहुत धीमा चलता है। ऐसा रानी ने कहा, लेकिन हरकारे ने समझा कि रानी कहती है तुमसे धीमा कोई भी नहीं चलता। मैसेंजर की तो जिंदगी ही तेज चलने पर है। उसने कहा आप क्या कहती हैं? नोबडी वाक्स फास्टर देन मी। आप बात क्या कर रही हैं? मुझसे तेज कोई नहीं चलता। रानी ने इफ नोबडी वॉक फास्टर देन यू, देन ही मस्ट रीच्ड बीफोर। तब वह घबड़ाई, उसने कहा कि नोबडी को अब तक आ जाना चाहिए, अगर वह तुमसे तेज चलता है। वह मैसेंजर घबड़ाया तो उसने कहा कि नोबडी इ.ज, नोबडी मैडम, तो रानी ने कहा, ऑफकोर्स, नोबडी मस्ट बी नोबडी। यह ठीक है बात कि नोबडी इ.ज नोबडी, लेकिन आना तो चाहिए। और ऐसे वह कहानी चलती है। और वह जो नोबडी है समझाना मुश्किल होता चला जाता है। कि वह कोई भी नहीं है।
समाज जो है वह नोबडी है। समाज जैसी कोई चीज है नहीं। लेकिन रोज-रोज
बात करके ऐसा लगता है कि समाज कोई है। जीवन है उसका। आदमी है, हाथ में है उसके, समाज को बचाओ, समाज की रक्षा करो, समाज ऐसा न हो जाए समाज वैसा न हो जाए। फिर भी हम भूल जाते हैं कि समाज का मतलब क्या है? समाज का मतलब है हमारे बीच के अंतर्संबंधों का जोड़। हम दस लोग यहां बैठे हैं, एक समाज बैठा है। लेकिन समाज कहां बैठा है? एक-एक आदमी बैठा है। लेकिन दस आदमी बैठे हैं पास-पास तो एक तरह का संबंध बना है उनमें। उस संबंध का नाम समाज है। समाज का मतलब है रिलेशनशिप। तो व्यक्ति जैसे होते हैं, समाज वैसा हो जाता है। समाज का अपना कोई है नहीं हिसाब। अगर व्यक्ति सब काले रंग के कपड़े पहन लें तो समाज काले रंग के कपड़े पहन लेता है। और व्यक्ति अगर सभी आनंदित हैं, तो समाज आनंदित हो जाता है। और व्यक्ति अगर क्षण में जीएंगे तो समाज ऐसा हो जाएगा कि वह क्षण में जीने की सुविधा बने, तो वह बन जाएगा। लेकिन समाज में ऐसी कोईर् चीज नहीं होती है कि उसका कोई लक्ष्य, ऐसा कुछ, कोई मतलब नहीं

रहता। व्यक्ति है, वास्तविक। और मजा ये है कि समाज वास्तविक हो गया है और व्यक्ति नकार हो गया है, यानी व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं। हम कभी पूछते ही नहीं कि व्यक्ति? सारी बात समाज के आस-पास होती है, राष्ट्र के आस-पास होती हैं, संप्रदाय के आस-पास होती हैं। जो कि बिल्कुल झूठ है, सब झूठ है। न संप्रदाय कहीं है, न कोई धर्म कहीं है, न कोई राष्ट्र कहीं है? लेकिन बातचीत इनके आस-पास चलती है। और सारी दुनिया इनके आस-पास घूमती है। और मजा यह है कि झूठ के आस-पास जो बिल्कुल फाल्सूड है, फाल्सूड इनकार्मिक कहना चाहिए जहां कुछ है ही नहीं। उसके आधार पर सारा जीवन बंधा है। सारी हमारी फिलासफी बंधी है। और जो है वस्तुतः जिसका अस्तित्व है व्यक्ति का, उसको निषेध कर दिया गया और उसको हम भूल ही गये।
मैं मानता हूं कि एक ऐसी दुनिया होनी चाहिए। एक ऐसा समाज, जहां समाज जैसी चीज का मूल्य ही न रह जाए, मूल्य तो हो व्यक्ति का। और व्यक्ति ही मूल्यवान है। और व्यक्ति जैसा जिएगा वैसे अंतर्संबंध बनेंगे, वैसा समाज होगा।

प्रश्नः अंतर्संबंध के लिए लक्ष्य जरूरी है?

नहीं, कोई भी लक्ष्य जरूरी नहीं है।

प्रश्नः जैसे व्यक्ति कोई सपोज कीजिए प्राइम मिनिस्टर बन गया, या प्रेसीडेंट बन गया, तो यह लक्ष्य होना ही पड़ेगा?

अभी हमारी क्या कठिनाई है कि चूंकि वह एक लक्ष्य वाले लोगों का प्राइम मिनिस्टर बनता है, इसलिए बिना लक्ष्य के तो आप उसे निकाल बाहर कर दें। क्योंकि हम सब लक्ष्य वाले लोग हैं, हमारा सब थिंकिंग जो है, वह भविष्य केंद्रित है कि कल ऐसा करना, परसों ऐसा करना, परसों ऐसा होना, तो जो प्रधानमंत्री बनता है, वह कहता है कि परसों हम ऐसा करेंगे, परसों हम ऐसा करवा के बता देंगे, तब हम उसको बनाते हैं।
एक प्रधानमंत्री अगर कहे कि मैं तो अभी जीता हूं, कल की क्या बात है? अभी जीएंगे कल की कल सम्हाल लेगा। हम कहेंगे आप नीचे उतरो। लेकिन अगर दृष्टि बदले और ऐसे व्यक्ति पैदा हो जाएं जो कहते हैं आज सब कुछ है, तो हम आज जीएंगे। आज से कल भी निकलेगा तो कल रुक थोड़ी जाएगा। और वह जो आज भी हम योजना बनाते हैं, वह निकलती तो आज से ही हैं लेकिन हमारी नजर न आगे अटकी रहती है। तब भी निकलेगा, तब भी निकलेगा।
मैं पिछली बार एक कहानी कह रहा था। एक माली एक बगिया में काम कर रहा है। सम्राट निकला है गांव का, घोड़ा रोक कर देखने लगा। माली बूढ़ा है सत्तर साल का होगा। सम्राट की उम्र पचास साल होगी। उसने उतरके माली से कहा कि बूढ़े! तुम कुछ नासमझ मालूम पड़ते हो, तुम जो अंगूर लगा रहे हो, उसमें फल तीस साल में आते हैं। तुम सत्तर साल के हो गये हो, फल कब आएंगे? मर जाओगे, यह फल तुम नहीं देख पाओगे। तो उस माली ने कहा कि हम तो लगाने का मजा ले रहे हैं। और जितनी देर बाद फल आयेंगे, लगाने में उतना ही मजा आयेगा। लगाने में। यानी हम जो लगा रहे हैं उसकी यात्रा बड़ी लंबी है। बाकी फल पर नजर नहीं है। लगाने पर न.जर है। उस माली ने कहा कि बहुत से ऐसे फल हमने खाएं हैं, जो हमारे बापदादाओं ने लगाए थे। कोई लगाता है, कोई खाता है। उन्होंने भी लगाने का मजा लिया था, नहीं तो पागल थे। हम भी लगाने का मजा ले रहे हैं। तो उस पर सम्राट ने कहा कि तुम हिम्मत के आदमी हो, सत्तर साल की उम्र में ऐसी हिम्मत जरा मुश्किल होती है। अगर फल आ जाएं तुम्हारी जिंदगी में तो पहला फल मेरे पास ले आना, अगर मैं बच जाऊं। तीस साल वह माली जी गया। असल में ऐसे लोग एक अर्थ में मरते ही नहीं। ऐसे लोगों को मारना बहुत मुश्किल है। ऐसे लोग जीते हैं। फल आ गए हैं तो पहले गुच्छे लेकर वह सम्राट के दरबार को चला गया। राजा तो भूल ही गया। पहचान में भी नहीं आया, कहा कौन हो, कैसे आए हो, क्या बात है? उसने कहा कि ऐसे-ऐसे बात थी, मैं वह माली हूं, जो लगा रहा था, वे फल आ गये हैं, सोचा था सिर्फ लगाने का मजा लेंगे लेकिन फल आने का मजा भी

आ गया। ये लगाने से आ गया नहीं तो इसका कोई ख्याल नहीं था। इसका ख्याल होता तो मैं लगाता ही नहीं, क्योंकि मैं तो मरने ही वाला था। मेरा तो कोई पक्का ही नहीं था। फल आ गए हैं तो मैं आपको भेंट कर जाता हूं, लौटने लगा, तो राजा ने उसको जितने वह फल लाया था उतने ही हीरे-जवाहरात भर कर टोकरी में दे दिए। और कहा कि तुम जैसे आदमी दुनिया में हैं, बड़ी खुशी की बात है। वह गया था अंगूर लेकर, लौटा हीरे-जवाहरात लेकर। सारे गांव में खबर फैल गई। अंगूर तो साधारण थे। बाजार में बिकते थे। इतने से अंगूरों के लिए इतने हीरे जवाहरात मिल गए हैं। तो सारे गांव में दौड़ लग गई। सारे गांव के लोगों को जहां से जिसको मिला वह टोकरी में उठा कर महल में पहुंच गया। और सबने राजा से जाके कहा कि भरो टोकरी में हीरे-जवाहरात, क्योंकि हम भी वही अंगूर लाएं हैं, बल्कि उससे भी बेहतर। राजा ने कहा तुम समझे ही नहीं, तुम नाहक मेहनत कर रहे हो। उस आदमी को हमने अंगूरों का थोड़ी फल दिया है? बिना फल के भी कोई आदमी रहता है, उसका ईनाम दिया है। फल की आकांक्षा के बिना कोई आदमी है, उसका ईनाम दिया है। और तुम फल लेने आए हो, तुमको खाली हाथ लौट जाना पड़ेगा। तुम खाली हाथ ही लौटोगे।
मेरा कहना यह है कि व्यक्ति की व्यवस्था, व्यक्ति का जीवन केंद्र होना चाहिए। उसका आनंद अर्थ रखना चाहिए। फिर आनंदित व्यक्तियों में भी एक व्यवस्था होगी, एक मेल होगा, एक संबंध होगा। लेकिन वह बड़ी और बात है। और हमें ख्याल में इसलिए नहीं आती, क्योंकि हम एक ही तरह की व्यवस्था के आदी हो गए हैं। और उस व्यवस्था में हम इतने जड़ हो गए हैं, कि हम तो रह ही नहीं गए, व्यवस्था ही रह गई है। व्यवस्था ज्यादा वजनी हो गई है। यानी मैं और तुम महत्वपूर्ण नहीं हैं। हमारे बीच के संबंध महत्वपूर्ण है। बाप अपने बेटे से कह रहा है कि मैं तेरा पिता हूं, इसलिए पैर छू। अब कहीं इसलिए होता है। देयरफोर, कोई गणित है कि मैं तुम्हारा पिता हूं इसलिए? छुएगा लड़का पैर। क्योंकि अब यह एक व्यवस्था है। अब इसमें व्यक्ति खो गया, अब पैर छूना एक मैकेनिकल एक्ट है। क्योंकि वे पिता हैं और मैं लड़का हूं इसलिए ठीक है पैर छूना एक व्यवस्था है तो पैर छू दिए। प्रेम भी गया, आदर भी गया, सब खो गया। क्योंकि प्रेम और आदर व्यक्ति से आते हैं, व्यवस्था से नहीं आते। व्यवस्था तो बिल्कुल मशीन की तरह है, उससे ऑफिस चलते हैं, फैक्ट्री चलती है, जिंदगी नहीं चलती। वह तो जितनी यांत्रिक चीज होगी, व्यवस्था उतनी ढंग से चला लेगी। जिंदा। और इसलिए जितना जिंदा आदमी होगा उतनी उसके साथ व्यवस्था नहीं होगी। वह अनप्रेक्टिकल होगा। आप उसके बाबत घोषणा नहीं कर सकते। कि यह ऐसे करेगा। क्योंकि कोई व्यवस्था नहीं है, पक्का नहीं है कि अंकुर निकलेगा तो दाएं जाएगा या बाएं जाएगा, कि कहां जाएगा या क्या होगा? निकलेगा और जाएगा कहीं? वह उसकी भीतरी चिंताओं पर निर्भर होगा। मेरा जोर है व्यक्ति पर। और अब तक जोर था समाज पर। और इसलिए समाज के जोर ने व्यक्ति की हत्या कर दी। व्यक्ति पर जोर होगा तो निश्चित ही समाज मरेगा, जिस समाज को हम जानते हैं, वह तो मरेगा। वह मरना ही चाहिए। उस समाज का कोई मतलब ही नहीं है। लेकिन एक नया समाज पैदा होगा। लेकिन वह समाज बहुत डाइनैमिक होगा। वह व्यवस्था चूंकि व्यक्ति को ही केंद्र मान कर चलेगी, एक बड़ी डाइनैमिक होगी उससे, जो चीजें बदलती होंगी, वह रोज बदल जाएंगी। और जहां चीजें रोज बदलती हों, वहां जिदगी है, और जहां चीजें ठहर जाती हों, वहां मौत है।

प्रश्नः क्या यह लक्ष्य नहीं हो गया?

न, बिल्कुल नहीं। अगर इसको लक्ष्य बनाया, अगर इसको लक्ष्य बनाया और इस लक्ष्य के लिए कोशिश में लग गए, तो लक्ष्य की हत्या अपने हाथ से कर दी। यानी कि यह मेरा कहना, यह समझ से निकलेगा। लक्ष्य नहीं है हमारा, यह लक्ष्य पूरा हो सकता है, लेकिन यह लक्ष्य नहीं है हमारा। हमें तो जो समझपूर्वक उचित मालूम हो रहा है, वह हम समझ रहे हैं। हम उसकी चेतना पैदा कर रहे हैं।
यह उसकी बाई-प्रॉडक्ट होगी। यह आएगा उसके पीछे।

एक आदमी गेहूं बो रहा है। कोई गेहूं बोता है तो भूसा उसके साथ आ जाता है। वह उसका लक्ष्य नहीं है। लेकिन कोई आदमी सोचे, कि हमको भूसा लाना है, तो भूसा बो दे, तो घर का भूसा भी चला जाए, और कुछ पैदा नहीं होता। तो वह बाई-प्रॉडक्ट है। वह गेहूं के साथ आता ही है। लक्ष्य जो है, अगर हम जीना सीख जाएं तो वह आता ही है, जिंदगी के साथ उसको अलग से सोचने की जरूरत ही नहीं है। जीएगा तो आने वाला है आता ही रहेगा, रोज-रोज आएगा। जरा भी नहीं, कोई जरूरत ही नहीं, हां, हम हमेशा हैं। और हम जितने ज्यादा कांशियस हैं लक्ष्य के प्रति, उतने ही अनकांशियस हो गए हैं अपने प्रति। क्योंकि लक्ष्य बहुत दूर है, और हम यहां पास हैं।
एक आदमी सड़क पर चल रहा है। वह दस मील दूर एक लक्ष्य को देख रहा है। एक्सीडेंट होने वाला है। वह यहां है और दस मील दूर पर आंखें हैं। चलना यहां हैं, डुलना यहां है, हिलना यहां है, बचना यहां है, और दस मील दूर पे लक्ष्य है। तो गया वह। होना यहां चाहिए। और चलने से दस मील कब पूरे हो जाएंगे, यह पता भी नहीं चलेगा। जब पूरे हो ही जाने वाले हैं तो, लेकिन हमें जीना है एक-एक कदम पर और एक-एक कदम पर जीते जाना है। और वह दस मील कब पूरे हो जाएंगे पता भी नहीं चलेगा और लक्ष्य भी आ जायेगा। लेकिन लक्ष्य सेंटर्ड नहीं होना चाहिए। रोज-रोज हमें जीना चाहिए, उस जीने से सहज कुछ निकलता ही रहेगा। निकल आएगा। लेकिन हम क्या करते हैं कि जीने को हम रोज-रोज नहीं भोग कर, कोश पूर्ण करके रखते हैं कि तब जीएंगे, जब वह लक्ष्य मिल जाएगा। उस लक्ष्य का कोई पक्का ही नहीं। और इतना जीना तो कम से कम नष्ट हो ही जाएगा, वह लक्ष्य मिलते-मिलते। और यह जो माइंड है, इसकी आदत हो जाएगी लक्ष्य में ध्यान रखने की। जब वह लक्ष्य मिल जाएगा तो फौरन इसकी नजर आगे चली जाने वाली है। इसने अगर तय किया कि दस लाख रुपये मिल जाएं फिर विश्राम करूं। दस लाख रुपये मिलते-मिलते इसकी नजर बीस लाख पर चली जाने वाली है। और उसको पता ही नहीं चलेगा कि कब चली गई। हां उसका लक्ष्य ज्यादा महत्वपूर्ण था। बिना लक्ष्य के वह जी नहीं सकता। लक्ष्य के आदी हो जाते हैं, हां, आदी हो जाता है। यानी हम फिर एक तरह की झूठी जिंदगी जीने लगते हैं। जो लक्ष्य के पूरे होने की आशा में चलती है। फिर हम जीते नहीं अभी। जीने का मतलब यह है कि जहां हम हैं, वहां हमें पूरा होना चाहिए। एक छोटे से छोटे काम में भी। यानी मैं कोई जीवन की ऐसी कोई बड़ी-बड़ी बात नहीं कर रहा, कि मोक्ष पाओ, ईश्वर पाओ वे सब लक्ष्य हैं। और सब गड़बड़ बातें हैं। मेरा उन सबसे मतलब नहीं है। जियो अभी, हां, अगर किसी को प्रेम किया है, तो पूरे डूब जाओ उस प्रेम में इसी वक्त, इस मौके को क्यों खो देते हो?
एपीकुरस था यूनान में। वह थोड़े से अदभुत लोगों में से एक हुआ। यूनान
का सम्राट उससे मिलने गया। उसकी खबर सुनी कि नास्तिक है, और कहता है कि खाओ-पीयो मौज करो। लेकिन ये भी खबरें आई कि वहां लोग बड़े शांत हैं, बड़े आनंदित हैं। उसने बगीचा बनाया हुआ है, उसी में सब रहते हैं। वह सम्राट देखने गया। वह तो दंग रह गया। वे तो सारे लोग दोपहर से बगीचे में काम कर रहे थे, फिर सब झाड़ों के नीचे सो गए। वह देखता रहा, फिर नींद के बाद उठे और फिर काम में लग गए हैं। फिर सांझ को सब नदी तट पर नहाए-धोए, वह सब देखता रहा। वह बड़ा हैरान हुआ। लोग बगीचे में गड्ढे खोद रहे थे, तब वह ऐसे अनंदित थे कि जैसे कोई खजाना गड़ा हो। ऐसा नहीं था मामला कि सिर्फ गड्ढा खोद रहे हैं। ऐसे गड्ढा खोद रहे हैं जैसे कोई खजाना खोद रहा हो। इतने आनंदित थे खोदने में। पसीना बहा जाता था। फिर वह बिल्कुल थक गए। फिर वह वृक्षों के नीचे ऐसे सो गए कि जैसे किसी महल में सो रहे हों। फिर वे उठे तो जब वे स्नान करने गए थे। फिर सांझ को आकर सबने खाना बनाया। फिर खाना बना कर खाना खाया था, फिर उस खाना खाने के बाद उसने देखा कि वह हैरान रह गया, उसने इतना रसविमुग्ध किसी को भोजन करते कभी देखा ही नहीं था। वे ऐसे खाना खा रहे थे कि बिल्कुल डूब ही गए थे। खाना खाना ही सब कुछ था। फिर रात देर तक चांदनी में वे नाचते रहे। फिर वृक्षों के नीचे सो गए।
एपीकुरस से उसने कहा कि क्या यही तुम्हारा खाओ-पीओ मौज करो? उसने कहाः यही। मैं, बहुत खुश हुआ, इतने खुश लोग मैंने कभी नहीं देखे। क्योंकि कल था ही नहीं, कल दुखी करता है। कल चिंतित करता है। कल तनाव देता है। टेंशन लाता

है। इतने खुश लोग, मैंने कभी देखे नहीं, फूलों की तरह बच्चों की तरह, क्या राज है इनका? तो एपीकुरस ने कहा कि कोई बड़ा राज नहीं। हम जीते हैं, और आप जीने की योजना करते हैं। सम्राट ने कहा कि मैं बहुत ही खुश हो गया हूं। और कुछ भेंट भेजना चाहता हूं। क्या भेंट भेज दूं? एपीकुरस ने अपने मित्रों से कहाः क्या चाहोगे? सम्राट कहता है कुछ भेंट भेज दें, कुछ, क्या भेंट भेजूं? तो वह सब सोच-विचार में पड़ गये। सम्राट ने कहा कि इतने सोच-विचार की क्या बात है? एपीकुरस ने कहा, सर! बात यह है कि कल का हमें कोई पता ही नहीं, आप ही विचार कर लीजिए। आप कहते हैं भेजेंगे भेंट। हम बड़ी मुश्किल में पड़ गये। कल के लिए बड़ी चिंता हो गई कि क्या, जो आपकी मर्जी हो। फिर भी उसने कहा कि नहीं, तुम्हीं कुछ बताओ, तो एक आदमी ने कहा कि फिर आप थोड़ा सा मक्खन भेज देना। मक्खन, क्यों? उसने कहा कि बहुत दिन से बिना मक्खन की रोटी खाने का मजा लेते हैं। अब मक्खन की रोटी खाने का मजा लेंगे।
सम्राट ने लिखवाया है अपने दस्तावेज में कि मैंने ऐसे लोग नहीं देखे जिनसे मैंने कहा कि जो तुम कहो मैं भिजवा दूंगा। वे बोले, थोड़ा सा मक्खन। और जब मैं मक्खन लेकर दूसरे दिन गया, तो मैंने उनको देखा कि वे मक्खन को रोटियों पर लगा कर ऐसे नाचने लगे और भगवान को धन्यवाद देने लगे कि मुझे अगर पूरी पृथ्वी का पूरा राज्य मिल जाता तो भी मैं नहीं नाच सकता था। व्यक्ति ऐसे जीए कि बस यह जो जीने का क्षण जा रहा है पास से, यह हो सकता है कि अगला क्षण न भी हो। एक दिन तो ऐसा आएगा ही कि अगला क्षण नहीं होगा। एक क्षण पर तो यात्रा टूट ही जाएगी। वह इसी क्षण पर भी टूट सकती है। तो पोस्टपोंड करना तो बड़ा सुसाइडल है। हम कहें कि कल प्रेम कर लेंगे कल का कोई पक्का नहीं है। कल का कोई पक्का ही नहीं है। कल का क्या भरोसा? हो सकता है आप न हों, हो सकता है प्रेम करने वाला न हो। प्रेम लेने वाला न हो। हो सकता है दोनों हों लेकिन प्रेम विदा हो गया हो। कल का तो कोई पक्का नहीं है। कोई भरोसा नहीं है। भरोसा तो हो सकता है इसी क्षण का जो मेरे हाथ में है और अभी जा रहा है। बस इसका, इससे ज्यादा का कोई भरोसा नहीं हो सकता। और इसको ही दांव पर लगा देते हैं उस क्षण के लिए, जो कभी आएगा, तो हम गणित ही गलत किए दे रहे हैं।

प्रश्नः यह कहने में जरा आसान महसूस होता है। बड़ा आसान महसूस होता है, कहने में। सब शास्त्र और वेद सब ऐसा ही है, बट इट इ.ज वेरी डिफिकल्ट?

जरूर कठिन है, कठिन है क्योंकि उसे हमने कठिन बनाया हुआ है। सरल हो जाता है हम सरल बना लें तो।

प्रश्नः सरल कैसे हो जाए कि हमको कितनी आदत पड़ी है? कितनी ज्यादा?

असल में, असल में कोई आदत कभी किसी को रोकती नहीं, नासमझी रोकती है। आदत रोकती ही नहीं। आपको कितनी ही आदत पड़ी हो कि दो और दो पांच होते हैं। और एक दिन आपको समझ में आ जाए कि दो और दो चार होते हैं। और आप यह नहीं कहेंगे कि मुझे हजार साल की आदत है, दो और दो पांच की। एकदम विदा हुआ है। समझ न आए तो आदत रोकती है। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न, यानी बहुत गहरे में प्रश्न अंडरस्टेंडिंग का है, आदत का नहीं है। तो अंडरस्टेंडिंग अगर आ जाए तो अब भी सरल हो जाए। और नहीं आएगी अंडरस्टेंडिंग अगर आप कोशिश में लग गए कि हमें इसे सरल करना है, यह फिर यूचर शुरू हो गया। आप मेरी बात समझ लें। अगर आप मेरी बात सुन रहे हैं और उस वक्त आपने सोचा कि हां, यह तो बड़ी करने जैसी चीज है। इसे हम कैसे करें? तो आप गए यूचर में आपने फिर यह नियमन छोड़ दिया। आपने योजना बना ली। और योजना कठिन हो जाएगी। नहीं, मैं यह कह रहा हूं कि मेरी बात समझ में पड़ती है तो समझ लें, बात खत्म हो गई। सभी समय में उतनी बात है इससे ज्यादा तो कुछ है ही नहीं। और यह समझ को अगर आप बिना किसी फ्यूचर में बांधे, उतर जाने दें भीतर, तो आप सीढ़ियों को उतरते पाएंगे कि ऐसे आप कभी सीढ़ियों से उतरे ही नहीं, जैसे आज आप उतर रहे हैं। यह आपकी कोशिश का हिस्सा नहीं होगा। और आप रात जाकर आज ऐसे सोएंगे जैसे आप कभी सोए

नहीं थे लेकिन यह आपकी कोशिश का हिस्सा नहीं होगा। यह आपकी अंडरस्टेंडिंग आई बाई-प्र्रॉडक्ट होगी। और हो क्या जाता है कठिन क्यों है? कठिन इसलिए है कि जब मैं कह रहा हूं तब आपको वह सुखद लगने लगा। यह बिल्कुल सुखद बात है, यह अगर ऐसा हो जाए, बस आप चूक गए। चूक इसलिए गए कि आपने सुखद लगा आपने लगा कि कैसे हो जाए? आप तरकीब सोचने लगे कि कैसे करेंगे? तब तक हो पाएगा और कठिन मालूम होने लगा। क्योंकि आप करने के ख्याल में चले गए। असल में आप अगर करने के ख्याल में गए तो इस जगत में सभी कुछ कठिन है। और अगर आप समझने में उतर गए, तो इस जगत में कुछ भी कठिन नहीं है। इसलिए सवाल समझ का है, और समझ चूक जाती है फौरन।
मेरे पास लोग आते हैं। कहते हैं कि आपने जो कहा था, वह हम बड़ी कोशिश कर रहे हैं। लेकिन आप कोशिश कर रहे है तो मुझे समझे ही नहीं। ये ही तो मैं कह रहा कि कोशिश करने में तो क्योंकि कोशिश हमेशा फ्यूचर सेंटर्ड है। कोशिश कभी प्रेजेंट में हो ही नहीं सकती। ख्याल ले रहे हैं आप। और अगर यह ख्याल में आ जाए तो कठिनाई जो है हमारी, वह कठिनाई है, क्योंकि निरंतर हम उस ढंग से जीए हैं। और वही जीना हमने पकड़ रखा है जोर से। लेकिन वह कठिनाई ऐसी ही है, जैसे कि एक घर में अंधेरा भरा हो बहुत सालों का। और फिर कोई कहे कि तुम दीया जलाओ। सब मिट जाएगा। और वह आदमी कहे कि हम समझ गए लेकिन अंधेरा कई सालों का है, और एक दिन दिया जलाने से क्या होगा? ठीक है, वह ठीक कहता है। वह गणित बिल्कुल ठीक है उसका। वह कहता है कि पचास साल से अंधेरा भरा हुआ है, हजार साल से अंधेरा है उस कमरे में। लेकिन एक दिन के दीये जलाने से हो क्या सकता है? बड़ा कठिन है। हजार साल का अंधेरा है, तो हजार साल दिया जलाएं कम से कम, मेहनत करें तो होगा। नहीं लेकिन उसे पता नहीं दीया जलाने का। कि दीया जलाने पर वह हजार साल वाला अंधेरा ये नहीं कह सकता कि मैं हजार साल का हूं, कि एक दिन का हूं, कि कितने दिन का हूं। दीया जलाया वह गया। तो हमारी जो नासमझी है, वह कितनी ही अनंत जन्मों की हो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक बार समझ, फील हो जाए, एक क्षण हमें दिख जाए, और वह नहीं दिख पाता है इसलिए कि जब हम समझने की कोशिश में लगे हैं, तब भी हम यूचर में चले गए हैं फौरन। उसकी फिकर ही छोड़ दें कि वह होगा कि नहीं होगा, सवाल ही नहीं है इसका। इसको इस तरह सोचें हीं मत कि यह होगा कि नहीं होगा। क्योंकि यह सोचना ही गलत है। अगर समझ में आ गया तो यह हो ही जाता है। और समझ में नहीं आया तो ये होता ही नहीं है।

प्रश्नः अगर यह समझ ही साधना पर हमें लेकर जाता है। और आप यूं ही कहते हैं, कि मैं कौन हूं, ऐसा अभ्यास करो, इसके लिए बुद्ध ने कितने वर्ष एकाग्रता की होगी। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिलता है, जो सब सुनते-सुनते उपलब्ध हुए। आपकी बात या किसी भी महाऋषि की बात, परम ज्ञान किया, इतने वर्ष क्यों लगते हैं? ऐसा हम समझते हैं कि आपको भी वर्ष लगे होंगे। उस पुरुषार्थ के लिए, उस स्थिति तक पहुंचने के लिए, महावीर को भी लगा होगा?

वर्ष लगे होंगे। वह अतीत की बात हो गई। वर्ष लगेंगे नहीं। मैंने एक स्त्री से पूछा कि जब तू संन्यास में मां हुई तो तुझे कैसा लगा? उसने कहा घर जाकर देखेंगे। घर उतर कर मैंने पूछा कि कैसा लगा? डरते हुए उसने कहा कैसा लगा, बिल्कुल ठीक लगा। माला मैं वहीं छोड़ आई हूं। जो माला हाथ में रखती थी, वह मैदान में ही छोड़ आई। क्योंकि चालीस साल का मेरा अनुभव भी कहता है कि कुछ भी नहीं हुआ। चालीस साल तो हो गए हैं। अब उसने यह नहीं सोचा कि कैसे माला छोडूं, पूछती तो घबड़ा जाती, मुश्किल हो जाता मामला। इतने दिन की माला कैसे छोडूं? और चालीस साल से करती हूं, तो कैसे जाए? आसान नहीं है छोड़ना। नहीं समझ आई और छूट गई। असल में हम समझ की फिकर करें। बस और कुछ फिकर ही मत करें। यानी हम इसको इस अर्थ में सोचें ही नहीं कि क्या हानि, क्या लाभ, कब, कैसे? सोचें ही नहीं, ये सोचा कि आप समझ से चूके। ऐसा समझ लें कि जैसे किसी और के लिए समझ रहे हैं। आपको इससे कुछ लेना-देना नहीं है। ऐसा मैंने कई दफा देखा है कि मुझसे कोई बात करने आता है, तो जो मुझसे बात करता है सीधा, मैं पाता हूं कि वह कम समझ पाता है, जो किनारे बैठा है एक आदमी जो

मुझसे बात नहीं कर रहा, वह ज्यादा समझ जाता है। और उसका कारण मैंने अनुभव किया है कि क्योंकि वह समझने की कोशिश में लगा हुआ है बेचारा, वह चूक जाता है, वह कोशिश भारी पड़ जाती है। वह सिर्फ बैठा है, बगल में एक आदमी बैठा है। बंबई में एक मित्र थे। वे कोई दो-तीन कैंप में आ होंगे और ध्यान उन्हें नहीं हुआ। उन्होंने मुझसे कहा कि मुझे तो होता ही नहीं कुछ। मैंने कहाः तुम करने की ज्यादा कोशिश करते हो, नहीं होता। यह तो बड़ा मुश्किल मामला है। जब करने से नहीं हो रहा है, तो न करने से कैसे होगा? गणित तो ठीक ही है हमारा। जब इतनी मेहनत करने से नहीं हो रहा है तो न करने से कैसे होगा? तो मैंने उनसे कहा कि तुम आज घर जाके सोने की कोशिश करो। और नींद आ जाए तो मुझे बताना सुबह आकर। रात भर उन्होंने सोने की कोशिश की, उसके पहले सो जाते थे, कोशिश नहीं की थी कभी। उस रात नींद नहीं आई। तो उन्होंने मुझसे आके कहा कि ये तो बड़ा मुश्किल हो गया। रात खराब हो गई मेरी इस कोशिश में। तो मैंने कहा कि क्या अब तुम यह कह सकते हो कि कोशिश नहीं करूंगा तो नींद कैसे आएगी? जब रात भर कोशिश की तो नहीं आई। अब तो नहीं कह सकता हूं क्योंकि रोज सोता ही था। अब तो मैं झंझट में पड़ गया। कोशिश की सोने की तो कोशिश तो टेंशन हो गया। बाधा हो गई। तो वह नींद नहीं आई। तो मैंने कहा कि फिर एक दफा कभी आ जाओ, क्योंकि मैं यह नहीं कहता हूं कि कैंप में आने से ध्यान हो जाएगा, यह मैं नहीं कहता। हो सकता है, ये थोड़ी है मामला की हो जाएगा। यह कोई ट्रेनिंग थोड़े ही है कि लेफ्ट-राइट है कि हो जाएगा। और कई लोग इस ख्याल से पहुंच जाते हैं कि हो जाएगा, वह बेचारे खाली हाथ लौट जाते हैं। जो इस ख्याल से जाता है कि देखें क्या हो सकता है, हो जाता है।
एक जैन साधु-साध्वियों का सम्मेलन था। तब मुझे उन्होंने बुलाया था कि मैं उनको ध्यान के लिए कुछ कहूं। तो वह मित्र भी पहुंच गया वहां। वे भी जैन हैं। उन्होंने सोचा कि देखूं साधु-साध्वी कैसे ध्यान करते हैं? वे मेरे पास बैठे। और ध्यान करने नहीं बैठे थे। तीन-चार जो साधु-साध्वी जो थे, वह ध्यान करने बैठे थे। वह तो सिर्फ देखने, मुझसे पहले कहा उन्होंने कि मैं तो सिर्फ देखने आया हूं। मैं सिर्फ देखूंगा, कोई एतराज तो नहीं है। मैं ध्यान नहीं करूंगा, मैं सिर्फ बैठ कर देखना चाहता हूं क्या हो रहा है। मैंने कहा बहुत अच्छा है, बैठो। मैंने ध्यान की बात करनी शुरू की, साधु- साध्वियों ने ध्यान शुरू किया और मैंने देखा कि वह आदमी मेरे बगल में गिर गया। गिर ही गया। सब साधु-साध्वी ध्यान से उठ आए। और वह आदमी उठा ही नहीं। और वहां भीड़ लग गई। कि क्या हो गया? हिला रहे हैं, डुला रहे हैं, वह कहीं और ही खो गया है। बड़ी मुश्किल से उठा। मेरे पैर पकड़ लिए कहने लगे कि ये क्या हो गया? क्योंकि मैं तो सिर्फ देखने बैठा था। यह हो कैसे गया? मैंने कहाः यह वही नींद वाली कहावत है। अभी तक तुम ध्यान करने बैठते थे, वही बाधा हो जाती थी। आज तुम सिर्फ देखने बैठे थे, दूसरों का देख रहे थे, तुम्हे कोई मतलब ही न था। समझ गया, उतना भी दबाव नहीं था कि मैं समझूं, उतना भी टेंशन नहीं चाहिए। तो अंडरस्टेंडिंग, तो समझ खिलती है। और उसके खिलने से सब होता रहता है। और उसके होने का हमें कुछ करना नहीं पड़ता। इसलिए और फिकर ही छोड़ दें कुछ। समझें, कुछ मुझसे समझें, ऐसा नहीं, समझें। हां, रास्ते पर चलते, और मकान में बैठे, और खाना खाते, और मित्र के पास, और दुश्मन के पास, अपरिचित के पास, समझें, किससे यह भी नहीं। क्या यह भी नहीं। क्या समझें यह भी नहीं। किससे समझे यह भी नहीं। कहां समझें यह भी नहीं। बस समझते रहें, समझ को जगा हुआ रखें। उससे जो फल होते हैं वे अपने आप होते हैं। और इसलिए यह सोचो ही मत कि यह कठिन है कि सरल। क्योंकि कठिन और सरल दोनों ही, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। क्योंकि वह करने की भाषा से निकलते हैं। कि हम करेंगे तो सरल हैं कि कठिन है। कोई कहे सरल है कि कठिन, दोनों बातें गलत हैं, क्योंकि करना है नहीं। और तब किसी तरह का बंधन न लें। अगर ऐसा समझ लें कि आप अगर पृथ्वी पर अकेले आदमी होते, कोई न होता, न पीछे कोई इतिहास, न पीछे कोई पुराण, न पीछे कोई किताब, न पीछे कोई गुरु, पीछे कोई था ही नहीं।

राबिंसन क्रोसो की तरह आप पृथ्वी पर फेंक दिए गए थे अकेले, बिल्कुल अकेले, तो आप कैसे जीते, जीते न? मर तो नहीं जाते? कि गीता नहीं है, तो मर

जाएं, अब क्या करें? गीता नहीं है तो मर जाएंगे। रामायण नहीं है, तो मर जाएंगे। गुरु नहीं है, तो मर जाएंगे। जीते तो? कैसे जीते? बस सहज जीते। फिर कल भी ना होता, मोक्ष भी न होता, भगवान भी न होता, पुण्य-पाप भी ना होते, बस जीते, भूख लगती, फल तोड़ते, नींद आती, सोते, धूप पड़ती, छाया में चले जाते, छाया ठंड देने लगती, धूप में आ जाते। जीते। पीछे कुछ न होता, आगे कुछ न होता तो आप जीते। ऐसा ही समझें, और सच बात तो यह है कि आप ही अकेले ही हैं। कोई राबिंसन और क्रोसो तो हैं ही। भीड़-भाड़ से क्या होता है? उससे क्या फर्क पड़ता है कि कितने रोबिंसन क्रोसो हैं। आदमी अकेला तो है ही। तो फ्रेशली जीएं, बासा न जीएं। और हम सबको बासा जीने के लिए इस तरह सिखाया जा रहा है। कोई किताब पढ़ो उसमें लिखा है कि जीवन का रस्ता क्या है? जीने की राह यह रही, बस हमको बासा किया जा रहा है, एकदम। बासा किया जा रहा है। गुरु पकड़े हुए हैं, ग्रंथों में बताते हैं कि ऐसा करो। हमको बासा किया जा रहा है। मां-बाप पैदा होते से बासा कर रहे हैं। शिक्षक बासा कर रहा है। सब मिल कर इस कोशिश में लगे हैं कि तुममें ताजगी रह ना जाए किसी तरह से। ताजा आदमी खतरनाक है, क्योंकि वह जीएगा। और जीने, कोई भरोसा नहीं है कि वह कैसा जीए। इसलिए सब तरफ से इंतजाम करके उसे मार डालना है। ताकि वह वैसा जीए, जैसा हम चाहते हैं, जीना चाहिए। तो इसको समझ में आ जाए कि आदमी छूट जाए, छोड़ना भी नहीं पड़ता, भागना भी नहीं पड़ता छोड़ना। भागना किससे, छूटना किससे। छूट गया। यानी यह ख्याल में आ गया कि इस तरह की साजिश चारों तरफ कसी जा रही है। मैं उसमें कस गया हूं। और कस गया हूं तो मैं राजी हूं इसलिए। इसमें क्षण भर की भी देर नहीं है। लेकिन जब ये होगा तो आपकी जिंदगी में ऐसे फूल खिलेंगे, ऐसी सुगंध आएगी कि लोग इकट्ठे हो जाएंगे। और वे पूछने लगेंगे यह कैसे हुआ? हो सकता है कि आप भी इस भूल में पड़ जाएं कि मैं यह-यह कर रहा था इसलिए हुआ। आप भी, दूसरे तो भूल में पड़ेंगे ही कि यह आदमी प्रतिक्रमण कर रहा था। परिश्रम कर रहा था। उपवास कर रहा था। नमाज पढ़ रहा था। उसमें हो गया है इसको। और जो असली कारण है समझ, वह ख्याल में नहीं आयेगा और ये नकली कारण है इसे कैसे कपड़े पहनूं।
मैं ब्यावर में था। तो वहां का बहुत बड़ा नेता मुझे मिलने आया। मुझसे कहा एकांत में मिलूंगा। दरवाजा बन्द कर लिया। मैंने कहा कहिए, उसने कहा कि मुझे दो-तीन बातें पूछनी हैं। एक तो मुझे ये पूछना है कि आप जिस तरह के कपड़े पहने हैं, इस तरह के कपड़े अगर मैं पहनूं तो कुछ लाभ होगा? हंसी आती है हमें, लेकिन हमारे सब साधु-संन्यासी येह ही कर रहे हैं। और हम उधर पैर छू रहे हैं, उधर जाकर हम खड़े होकर हंसते नहीं। लेकिन कर क्या रहे हैं? वे सोच रहे हैं कि फलां आदमी, विवेकानंद ऐसा कपड़ा पहने हुए खड़ा था, तो पचास विवेकानंद खड़े हैं। वही पगड़ी बांधे हुए, वही साफा लपेटे हुए उस ख्याल में कि शायद गेरुए कपड़ों से कुछ हो जाए। क्योंकि गेरुए कपडे वाले आदमी से हो गया फिर। यह जो हमारा सोचने का ढंग है, और ये चाहे कपड़े का हो या चाहे किसी और का।
अब महावीर को जिस दिन ज्ञान हुआ उस दिन वह ऐसी स्थिति में बैठे थे, जिसमें आमतौर पर आदमी कभी बैठते ही नहीं। वे बैठे थे ऐसे जैसे कोई गाय को दोह रहा हो। गोदोहासन में बैठे हुए थे। जब गाय को दोहते वक्त बैठते हैं। ऐसे बैठे हुए थे। उस वक्त उनको ज्ञान हुआ। तो ख्याल चल पड़ा कि परम ज्ञान जो है, वह दोहासन से होता है। अब उकडूं बैठ कर, ऐसा होने से परम ज्ञान प्रकट हो रहा है। अब हो सकता है महावीर लेटे होते, खड़े होते, चल रहे होते, इससे क्या लेना-देना। इससे कुछ नहीं है, समझ किस क्षण प्रकट हो सकती है कैसी स्थिति में, न शरीर से कोई वास्ता है न कपड़ों से, न आप क्या खा रहे थे, क्या पी रहे थे, से कोई बहुत गहरा वास्ता नहीं है। मगर हमें यह दिखाई पड़ता है। जब हो जाता है एक आदमी का उसकी हम सब जांच-पड़ताल करके व्यवस्था बना लेते हैं। और सोचते हैं इस व्यवस्था को हम भी ढाल लें, तो हमको भी हो जाएगा। उसको हुआ था समझ से और हम व्यवस्था ढाल देते हैं। और समझ व्यवस्था कभी नहीं आने देती। इससे खो जाते हैं कहीं ओर। इसलिए सिर्फ समझें। अंडरस्टेंडिंग के अतिरिक्त और कुछ मूल्यवान नहीं है इस जगत में। सत्य भी मूल्यवान नहीं है, समझ मूल्यवान है। और परमात्मा भी मूल्यवान नहीं है, समझ मूल्यवान है।

क्योंकि जहां समझ है वहां सत्य भी है, वहां परमात्मा भी है। वह सब पीछे चले आते हैं। असल में, जिंदगी में जो आ जाए मुझे स्वीकृत है, जो आए। लेकिन कुछ आ जाए, इसका कोई सवाल ही नहीं। कुछ भी आ जाए, इसका कोई सवाल नहीं है। सत्ता कि, संन्यास कि मोक्ष आए, आ जाए, इससे कोई लेना-देना नहीं है, और जो भी आ जाए, जब आ ही जाएगा तो करोगे क्या?

प्रश्नः कुछ चीजें आती नहीं है, थोड़ा सा हाथ बढ़ाना होता है?

नहीं, उतना भी हाथ मैं नहीं बढ़ाता। उतना भी हाथ मैं नहीं बढ़ाता। जो चीज हाथ बढ़ाने से आती है, उसमें मेरी उत्सुकता नहीं है। असल में प्रारब्ध और डेस्टिनी और भाग्य, बड़े और अर्थ की बातें हैं। जैसा हम उनको सोचते हैं, वैसी नहीं हैं। जैसा हम उनको सोचते हैं, वैसी नहीं हैं। हम ऐसा सोचते हैं कि जो लिखा है, वह होगा। जो होने वाला है, वह होगा। जो बंधा है, वह होगा। हम ऐसा सोचते हैं। फिर हमारी दृष्टि जो है समझ ही नहीं पाई कि जिन लोगों ने कभी भाग्य की बात की होगी, वे बड़े अदभुत लोग थे। जिन्होंने जाना होगा, समझा होगा। उनका मतलब यह नहीं है कि जो होगा, वह तय है। उनका यह मतलब ही नहीं है। यानी फ्यूचर से उनका यह मतलब ही नहीं, जो मैं कह रहा हूं। हमारे भाग्य का मतलब सदा फ्यूचर से है। यानी कि हम यह निश्चित कर लेना चाहते हैं कि क्या होगा? जो होगा वह ठीक है। जिन लोगों ने भाग्य को पहली दफा सूत्र दिया, उनका प्रयोजन ही कोई दूसरा था। उनका प्रयोजन था कि जो हो गया, वह हो गया। हमें उसमें कुछ अनकिया नहीं होता है, इसलिए फिजूल की बकवास में मत पड़ो, जो हो गया, वह हो गया। उनका जो मतलब है, वह अतीत से है कि जो हो गया वह हो गया। हां, वह गया, एक आदमी मर गया, मर गया। अब इस पर तुम एक क्षण भी मत सोचो। अब रुको ही मत। हां, एक हाथ टूट गया तो टूट गया। अब तो इस पर सोचो ही मत। यह होना था, हो गया। इसका मतलब केवल इतना है कि यह जो जिसने भी जिनको समझ पड़ी थी बात, उन्होंने भाग्य की जो बात कही थी वह आपको अतीत से मुक्त करने की थी। अतीत से मुक्त करने के लिए। क्योंकि अगर जो होना था वही हुआ तो उस बात को सोचने की जरूरत क्या है। सोचते हम इसीलिए हैं कि अगर ऐसा न होता और ऐसा हो जाता तो। अगर ऐसा होता कि मैं दो मिनट देर भर से निकलता तो एक्सिडेंट बच जाता। मगर तुम निकल चुके, अब निकलते इसका कोई मतलब ही नहीं है। जिन्होंने भाग्य की बात की थी, उनका प्रयोजन इतना था कि अतीत से तुम मुक्त हो सको। और हम उस बात का जो अर्थ निकाल लिए हैं, वह यह है कि न तो हम अतीत से मुक्त होते हैं बल्कि हम भविष्य से भी बंध गए हैं। यानी हमने उसको बंधन बनाया हुआ है। तो मैं तो बिल्कुल भाग्य का विरोधी हूं। क्योंकि वह उसूल गलत रास्ते चला गया। और अक्सर ऐसा होता है कि कभी किन्हीं क्षणों में, किन्हीं घड़ियों में मनुष्य के इतिहास में कोई चीज कारगर होती है और आदमी उसको सुनने का आदी हो जाता है और उसके दूसरे अर्थ निकाल लेता है। तब उसे हत्या कर देनी चाहिए। उस सिद्धांत को फिर तोड़ना चाहिए। उधर मैं न मालूम कितने पुराने सिद्धांतों के खिलाफ बोलता हूं, मुझे बहुत दर्द होता है, क्योंकि मैं जानता हूं कि उन सिद्धांतों में कुछ है। और ऐसा अदभुत, है जिसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन अब उनका, उनका सारा एसोसिएशन बदल गया है। उनका सारा दूसरा ही मतलब हो गया है। और इसलिए अब उनको बिल्कुल जड़ से तोड़ देना जरूरी है। ताकि फिर अब हम फिर दूसरी तरफ से वही शुरू कर सकें, जो उनमें था। तो इसलिये मुझे समझना ही मुश्किल हो जाता है और एक झंझट खड़ा हाता है।
सब पुराने सिद्धांतों पर किसी न किसी दिन चोट करनी पड़ती है, क्योंकि आदमी उनको अपनी मशीन की दुनिया में फिर ढाल लेता है। और ऐसे मतलब निकाल लेता है, जो मतलब उनमें कभी थे ही नहीं। और वे इतने पुराने हो जाते हैं जैसे भाग्य वह हमेशा हमें नियति बन गया है, डेस्टिनी। डेस्टिनी होती फ्यूचर में। दिस इ.ज नॉट ए फ्यूचर। भाग्य को हमने बना लिया भविष्य का निर्धारण कि भविष्य का निर्धारण कैसे करें? और जिन्होंने बात की है, उन्होंने बात की है अतीत से मुक्त करने की। जो हो गया, वह हो गया। इतना ही भाग्य का मतलब है। जो अभी नहीं हुआ है, वह नहीं हुआ है। और इतना ही मतलब है सिर्फ और इसलिए जो हो गया है उससे हम छुटकारा पा जाते हैं क्योंकि अब

उसमें कुछ करने जैसा नहीं बचा। सोचने जैसा भी नहीं बचा। सोचने का भी उपाय नहीं है उसमें। अगर इतना समझ में आ जाए तो मैं भाग्य के बिल्कुल पक्ष में हूं। उतना समझ में न आए तो मैं एकदम दुश्मन हूं। मैं फिर उसे बिल्कुल बरदाश्त नहीं करता कि भाग्य की कोई बात भी उठाये।
रोज ऐसा होता है कि हम, आदमी का मन जो है, वह इतना चालाक, इतना कनिंग है
कि हिसाब नहीं है उसका, कनिंगनेस का उसकी। हमें पता नहीं कि वह जल्दी से चीजों को कैसे बदल देता है? और किस तरह फिक्स्ड कर देता है? और क्या मलतब निकाल लेता है? यह हमें पता ही नहीं। और जो मतलब वह निकाल लेता है, वह चूंकि बहुत से मनुष्यों का माइंड भी वैसे ही निकालेगा, इसलिए वे मतलब थिर हो जाते हैं। और जो मतलब था, वह खो जाता है। यानी वह मतलब तो एकाध-दो ही लोग निकाल सकते हैं। जो है, और जो नहीं है, वे हम सब निकाल सकते हैं। तो हम सब लोग उस पर राजी हो जाते हैं। हम सब निकाल सकते हैं, वह मतलब। कुछ भी पता नहीं है हमें जो हमारी सुविधापूर्ण होता है, हम उसमें से मतलब निकाल लेते हैं।

(प्रश्न ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

ख्याल दूसरी बात है, ख्याल बिल्कुल दूसरी बात है। यह भी हमें समझना चाहिए। जैसे कि आपको कल प्लेन में जाना है, तो आज आपको टिकट लेनी पड़ेगी। टिकट लेनी पड़ेगी, पता लगाना पड़ेगा कि प्लेन कब जाता है? यह सब आपको करना पड़ेगा। लेकिन यह करते क्षण में भी आप प्रेजेंट सेंटर्ड हैं या फ्यूचर सेंटर्ड, यह सवाल है। वह तो करना ही पड़ेगा, यह तो मुझे भी करना पड़ेगा।

(प्रश्न ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न, आप मेरी बात नहीं समझे, जब मैं ये विचार कर रहा हूं कि कल सुबह जाऊं या न जाऊं। तो ये विचार तो मैं अभी कर रहा हूं। इस विचार करने में क्या मैं पूरा डूबा हूं? अगर डूबा हूं तो मैं प्रेजेंट में हूं। आप मेरा मतलब नहीं समझे। यह विचार तो अभी हो रहा है न, यह तो कल नहीं हो रहा है, कल का विचार है, हो तो अभी रहा है। इसमें मैं अगर पूरा लीन हो गया हूं, तो मैं वर्तमान में हूं। और अगर कल जाऊं के न जाऊं, इसमें कल मेरा सेंटर बन गया है। कल, और आज खो गया है बिल्कुल यह मोमेंट भी खो गया है। और वर्तमान मेरा भूल ही गया है, और अब मैं कल में खड़ा हो गया हूं जाकर। और कल मेरे चित्त में केंद्र बन गया है। तो मैं फ्यूचर सेंटर्ड हो गया।
वह तो महावीर को भी रात पड़ गई है तो गांव में ठहरना है, कि नहीं सोचना पड़ेगा। किसी को भी, लेकिन यह सोचना भी फ्यूचर सेंटर्ड है। या यह भी आपके वर्तमान की ही घटना है, और उसमें आप पूरे डूब गए हैं। ऐसे समझें, आप खाना खा रहे हैं, और खाना खाते वक्त अगर आप सोच रहे हैं कि कल मुझे प्लेन से जाना है, तो क्या आपको खाना उस वक्त याद रहा है कि मशीन बन गए आप? क्या खाना खाया ये भी याद नहीं रहा। तो फिर आप यूचर में चले गए।
मैं अगर खाना खा रहा हूं तो खाना ही खा रहा हूं। और अगर सोच रहा हूं तो सोच लूं, खाना बंद कर दूं। मेरी बात नहीं समझे। सोचूंगा तो सोचूंगा खाना बंद कर दूंगा। मगर उस वक्त भी मैं प्रेजेंट में ही हूं। फ्यूचर में नहीं। तो वह जो हमारी लांगिंग है, फ्यूचर की, वह जानी चाहिए। वह जो हमारा पागलपन है भविष्य का, वह जाना चाहिए। और इसलिए भूल हो जाती है बहुत। अब जैसे कि मैंने कहा है आपसे कि कल का भी आज आपको अभी सोचना पड़ेगा। लेकिन यह आपकी कोई साइकोलाजिकल नीड नहीं है। यह सिर्फ व्यवस्था का हिस्सा है कि कल जाना है आपने तय किया, सोच लिया, बात खत्म हो गई।
यह आपकी साइकोलॉजिकल नीड नहीं है। जैसे नीड कब होगी यह कि एक आदमी बैठा हुआ है मित्र आपका और उससे आप मिलना नहीं चाहते और बात नहीं करना चाहते। आप उससे भागना चाहते हैं। और आप सोच रहे हैं कि कल हवाई जहाज से जाऊं कि ट्रेन से जाऊं। कैसे जाऊं? कैसे न जाऊं? और आप सिर्फ इस बात से भागना चाहते हैं कि पत्नी बगल में बैठी है, उसे आप भूलना चाहते हैं। और आप

उसमें जा रहे हैं। तो आप फ्यूचर में एस्केप कर रहे हैं। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न, तब आप वर्तमान की किसी स्थिति से भाग रहे हैं। और कल में खो रहे हैं ताकि अभी जो है वह पता न चले। तब फिर आप फ्यूचर में चले गए हैं। नहीं तो कोई मतलब नहीं।

प्रश्नः आपको प्लेन में आठ घंटा लगता है, इसका मतलब है उस प्लेन में
आप प्रजेंट हैं। यू विल बी प्रेजेंट सेंटर्ड?

हां, बिल्कुल ही, बिल्कुल ही, आठ घंटे का सवाल ही नहीं है। आठ घंटे तो हमको दिखाई पड़ते हैं, होता तो मोमेंट ही मोमेंट है। एक ही मोमेंट होता है। दूसरा तो होता ही नहीं है इकट्ठा कभी। एक ही काफी होता है, एक से गुजर गए तो दूसरा आता है। आप जिस ढंग से एक से गुजरे, उसी ढंग से दूसरे से गुजर गये। कोई जरूरत ही नहीं है, कोई जरूरत नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बिल्कुल बता सकते हैं। और डेस्टिनी बिल्कुल फिक्स्ड नहीं है। और बता सकते हैं। हां, यह ही तो फिर कैसे हो सकता है। बिल्कुल हो सकता है, इसलिए हो सकता है। असल में हम जो व्यक्ति है, साधारणतः जैसे यंत्रवत, जीने वाले, तो कल तक आप जीएं हैं मशीन की तरह। एक सचेतन जीवन आपका नहीं है। यंत्र की भांति आप जीए। उस यंत्र की भांति जीने से आपकी एक व्यवस्था बन गई, है। और उस व्यवस्था के कारण आप एक ढंग से कल भी जीएंगे, यह बिल्कुल कहा जा सकता है। क्योंकि आप चेतन तो जीते ही नहीं। प्रिडिक्टेबल आप इसलिए हैं कि आप मशीन की तरह जी रहे हैं। ऑटोमेटिक की तरह जी रहे हैं। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न जैसा कि मैं कह सकता हूं कि विजय कल सुबह उठ कर सिगरेट पीएंगे। यह इसलिए नहीं कि कल सिगरेट पीना कोई बंधा है, बल्कि विजय को मैं जानता हूं कि रोज सुबह सिगरेट पीते हैं। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न। अगर ये रोज सुबह सिगरेट पीते हैं। और ये सचेतन रूप से नहीं जीते हैं। यंत्र की तरह जीते हैं तो कल सुबह ये उठेंगे और सिगरेट उठाएंगे और जलाएंगे और पीएंगे। यह इसलिए नहीं कि यह कल सिगरेट पीएंगे कि ऐसी कोई डेस्टिनी है, जो तय है कि कल सिगरेट पीनी ही पड़ेगी। नहीं, लेकिन ये जिस ढंग से जीए हैं, उसका ऑटोमैटिक रिजल्ट है। तो हम अनेक जन्मों में जीए हैं। और अनेक जन्मों में जीकर हमने एक व्यवस्था बना ली है। हम उस व्यवस्था के कारण प्रिडिक्टिबल हो गए हैं। वह व्यवस्था बहुत रूपों में प्रकट होती है। हाथ की रेखाओं में भी प्रकट होती है। माथे पर भी प्रकट होती है, पैर की रेखाओं में भी प्रकट होती है। और हजार रास्ते हैं उसके प्रकट होने के। वे हजार तरह से प्रकट होती हैं। वह किस क्षण में आप पैदा हुए, इस दुनिया में उसमें भी प्रकट होती है आपकी व्यवस्था। आपकी जो व्यवस्था है, अनंत-अनंत जन्मों की, उसने आपको बिल्कुल मशीन बना दिया है। और चीजें ऑटोमैटिक घूमने लगी। अब आप करने वाले हैं ही नहीं उनके। इसलिए आप प्रिडिक्ट किए जा सकते हैं। लेकिन जिस दिन आप जाग गए, उस दिन के बाद आप प्रिडिक्ट नहीं किए जा सकते।
एक घटना सुनाता हूं। उससे तुम्हें बात समझ में आएगी।
बुद्ध भिखारी हो गए। और यह ख्याल में है, बुद्ध भिखारी हो गए न, और भीख मांगने लगे गांव-गांव। एक नदी के किनारे से निकले, तो रेत पर उनके पैरों के चिह्न बन गए, और पैरों में वे चिह्न हैं जो कि चक्रवर्ती के होते हैं। काशी से एक पंडित लौट रहा है ज्योतिष सीख कर उसने पैर देखे उसने कहा कि मर गए, भरी दुपहरी, उजड़ गांव, गंदी नदी, चक्रवर्ती नंगे पांव? पोथी लाया था सब शास्त्र कि बारह साल अध्ययन करके, कहा कि इसे नदी में डुबा दूं। झंझट में न पडूं तो गड़बड़ हो जाएगी। कि चक्रवर्ती नंगे पाव भरी दुपहरी में गंदी नदी की रेत पर। या तो पोथी गलत हो गई चिह्न पक्का साफ है। इससे पहले कि किताबें डुबाऊं सोचा कि जरा इस आदमी को खोज लूं और मिल जाए जरा देख लूं कि यह आदमी कौन है? वह गया, कदमों के पीछे, एक वृक्ष की छाया में बुद्ध विश्राम करते हैं। वहां गया, देखा आदमी तो चक्रवर्ती होने जैसा लगता है, और है भिखारी।

भिक्षा पात्र रखे हैं, कुछ पास में नहीं है नंगे पैर। और देख कर तो चेहरे से लगता है कि चक्रवर्ती होना चाहिए था। कहां भूल हो गई? कहां गड़बड़ हो गई? और चिह्न बिल्कुल स्पष्ट हैं। शक-सुबह का उपाय नहीं। वह बुद्ध को जाकर पूछा कि मैं ज्योतिषी हूं। बारह बरस अघ्ययन करके लौटता हूं। पहले ही दिन दिक्कत में पड़ गया हूं, अभी मैंने किसी का हाथ भी नहीं देखा। और ये पैर का चिह्न दिख गया, मैं मुश्किल में पड़ गया हूं। क्या तुम चक्रवर्ती हो? तो यहां क्या कर रहे हो? भीख मांग रहे हो। तो अपने शास्त्र को डुबा दूं, और नमस्कार कर लूं, बारह साल खोए समझूं। बुद्ध ने कहाः नहीं, इतनी जल्दी नतीजा मत निकालो, चक्रवर्ती होने को ही पैदा हुआ था। यानी व्यवस्था ऐसी थी पीछे कि चक्रवर्ती होता। लेकिन व्यवस्था तोड़ दी। स्वतंत्र हो गया हूं। अब चिह्न काम नहीं करेंगे। तो कभी करोड़, दो करोड़ आदमी में कभी जब एक आदमी मुक्त होता है, तो मुक्त का मतलब ही यह है कि अब उसका भविष्य नहीं बताया जा सकता। मुक्त का मतलब ही यही है कि अब अतीत के आधार पर उसका कोई भविष्य नहीं, क्योंकि अब अतीत से वह मुक्त हो गया है। हम चूंकि अतीत से बंधे हैं। इसलिए हमारा बिल्कुल प्रिडिक्ट किया जा सकता है। और कुछ चीजों में उसका भी प्रिडिक्ट किया जा सकता है। इन चीजों से वह मुक्त नहीं हुआ। जैसे बुद्ध की उम्र बताई जा सकती है, चाहे वह बुद्ध हो जाएं, कोई ओर हों। क्योंकि शरीर से बुद्धत्व का कोई लेना-देना नहीं है। यह बताया जा सकता है कि यह व्यक्ति इतने दिन में चल बसेगा। बुद्ध के शरीर की बीमारियां बताई जा सकती हैं। क्योंकि शरीर से उनके बुद्धत्व का कोई लेना-देना नहीं है। लेकिन बुद्ध एक अर्थ में अब हवा की भांति हो गए, क्योंकि बुद्ध का एक नाम है, जो बड़ा अदभुत है। हम कहते भी हैं लेकिन ख्याल में कभी लेते नहीं। बुद्ध का एक नाम है, तथागत। तथागत का मतलब होता हैः जस्ट कम, जस्ट गॉन। ऐसे आए और ऐसे गए, जैसे हवा आती है और जाती है। जिसके बाबत कोई भरोसा नहीं है कि कब आ जाए, कब चली जाए। कोई पक्का नहीं कि हवा पश्चिम जाए, पूरब जाए, कि आए, कि या न आए। या आ जाए, या चली जाए। ऐसा जो आदमी हो गया है, जिसके बाबत हवा की बात करते हैं। मुक्ति पर तो ज्योतिष अर्थहीन हो जाता है। लेकिन मुक्ति तक की घटना
के बाबत भी कुछ सूचनाएं दे सकता है। मुक्ति तक की यानी मुक्त होने तक के बाबत भी कुछ सूचनाएं दे सकता है। बुद्ध जिस दिन पैदा हुए थे, ज्योतिषी ने कहा कि या तो सन्यासी हो जाएगा और या चक्रवर्ती। तो पिता ने कहा कि "या" क्यों लगाते हो। ऐसा कैसा ज्योतिष जो "या" लगाए। या तो ये चक्रवर्ती हो जाए या संन्यासी। पिता ने कहा कि या क्यों लगाते हो? ऐसा कैसा ज्योतिष, जो "या" लगाए। उसने कहा कि ये लड़का जरा साधारण नहीं है। इसके साथ "या" लगाना पड़ेगा सदा। यह सीधा नहीं है। यह इधर-उधर हो सकता है। हमारे साथ या नहीं लगता। इसका कारण यह नहीं है कि सब बंधा है, उसका कारण है कि हम सब बंधें है। तो या लगाने की कोई जरूरत नहीं है। चीजें बताई जा सकती हैं। इसलिए निन्यानबें मौकों पर सही हो सकती है बात, और फिर मैं कहता हूं कि आदमी बंधा हुआ नहीं है। इसलिए मैंने कहा कि दोनों बातें मैं कहता हूं। ज्योतिष अर्थपूर्ण है और आदमी बंधा हुआ नहीं है। लेकिन जैसा आदमी है, वह बंधा हुआ है। चाहे तो अनबंधा हो सकता है। मुश्किल से कभी कोई हो पाता है। करते ही नहीं हम कुछ। हम कुछ करते ही नहीं। यह हम सोचते ही नहीं। समझते ही नहीं या होना भी नहीं चाहते। जब हम बातों में कुछ पूछोगे तुम मुझसे न, तो हमारी सारी भाषा चूंकि लक्ष्य से निर्मित होती है, इसलिए कठिनाई है।

प्रश्नः लेकिन यह ज्योतिष ने ही तो हम लोगों को बांध कर रखा है कि हम सोचें?

कोई किसी को बांध कर नहीं रखा है। आप अगर, अगर आप, यानी ज्योतिष आपको बांध कर नहीं रखता है।

प्रश्नः हर व्यक्ति के जीवन में अलग-अलग घटनाएं होती हैं, लेकिन यदि कोई दूर से देख कर कोई ऐसी बात बताता है जिसका उस बात से कोई संबंध नहीं है,

और वह बात हमारी गोपनीय बात हो, सिर्फ वह मुझे ही मालूम है कि जो मैंने किसी को बताई भी नहीं और कोई बता देता है, तो क्या यह ज्योतिष नहीं है?

यह तो बिल्कुल ही ज्योतिष नहीं है। यह तो दूसरी बात है। इससे तो ज्योतिष का संबंध ही नहीं है। यह तो टेलीपैथी है। यह बिल्कुल मामला दूसरा है। हां, इससे ज्योतिष का संबंध ही नहीं है। इसको समझ लेना ठीक से, कि ज्योतिष बहुत और बात है। यह बात तो जो ज्योतिष नहीं जानता है बिल्कुल वह भी बता सकता है। उसका कारण है।
मैं एक, जहां पूना में मैं रुकता हूं, जिसके घर पहली दफा, उसके घर रुका। तो घर की गृहिणी जो है उसने रात मुझे आकर कहा कि मैं आपके ही कमरे में यहीं बिस्तर डाल कर सो जाऊं। वह बिस्तर लेकर बगल में डाल कर सो गई, लेट कर उसने पूछा कि मैंने कभी आपसे कुछ नहीं पूछा--और सच में उसने मुझसे कभी भी कुछ नहीं पूछा--एक बात मुझे पूछनी है, आप हंसेंगे, क्योंकि बात ऐसी है कि क्या पूछना उसका। फिर भी तुम पूछ लो। आपकी मां का नाम क्या है? तो मैंने कहाः यह भी कोई पूछने की बात थी। तू आंख बंद कर ले, जो पहला नाम तुझे आ जाए तू बोल दे, वही मेरी मां का नाम होगा। तो वह इतनी सरल है कि उसने यह नहीं पूछा कि क्यों? कैसे? अगर पूछती तो फिर मैं कहता कि ठहर मैं बताए देता हूं। क्योंकि फिर मामला नहीं होने वाला था। उसने आंख बंद कर ली और एक सेकेंड बाद उसने कहाः सरस्वती। मैंने कहाः हां, वह नाम है। तो उसने कहा कि लेकिन यह कैसे हुआ? मैंने कहाः अगर यह तूने पहले पूछा होता तो यह नहीं होने वाला था। हुआ कैसे? लेकिन हुआ कुछ भी नहीं। तू बगल में लेटी है, मैं अपनी मां का नाम जानता हूं। तू शांत लेटी है, ट्रांसफर हो जाएगा फौरन। पूरा सत्य मेरे में है। रात है, शांत है, और क्यों और क्या नहीं पूछ रही। क्योंकि क्यों और क्या पूछने वाला शांत नहीं होता। तूने मेरी मान ली और चुप हो गई। और मैं जानता हूं कि मेरी मां का नाम क्या है। और मैं तेरे पास हूं। वह नाम ट्रांसफर हो गया वह उस शांति ने पकड़ लिया। जब कोई तुमसे कहे कि तुम्हारी उम्र, फलां दिन, फलां तारीख, को तू पैदा हुई, इससे ज्योतिष का वास्ता नहीं, ज्योतिष में जोड़ा जा सकता है इसको। इसका वास्ता बिल्कुल दूसरा है, तुझे तो पता है न, बस तेरा पता ट्रांसफर होता है, और कुछ भी नहीं होता। तुझे जो पता है अगर कोई व्यक्ति दूसरा रिसेप्टिव हो सकता है, और एक सेकेंड को भी पूरी तरह चुप होकर तेरी तरफ, तुझे जो पता है वह तेरी तरफ ट्रांसफर हो सकती है। वह टेलीपैथी है।

प्रश्नः लेकिन जो भविष्य की बात बताए, आगामी बात, पांच साल बाद और वह बात सच हो गई है, हम उसे क्या कहेंगे?

न, न, न, हो सकती है, बिल्कुल हो सकती है। असल में इसमें बहुत सी सांइसेज हैं। यानी हमारी तो क्या कठिनाई है कि एक शब्द होता है हमारे ख्याल में, तो बहुत साइंसेज हैं। इसमें टेलीपैथी है, जो ज्योतिष में जुड़ जाती है। और जुड़ जाए तो ज्योतिषी अदभुत हो जाता है, साधारण नहीं रहता।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, यह बिल्कुल कहा जा सकता है, इसके बहुत से कारण है। वही तो मैं तुमको कह रहा था। वही तो मैं कह रहा था। यानी तू अगर दस साल पहले एक जगह थी, तो तू कोई कोरी स्लेट तो नहीं है न। सब तेरा लिखा हुआ है। तू इतने दिन तक जो भी रही, इतने जन्मों में जो भी रही। और वे जो रेखाएं हैं। वह जो तेरे भीतर इतने दिन में बनी हैं, जो तुझे चलाएंगी, आगे बढ़ाएंगी। वे रेखाएं अगर कोई भी देख सके, जहां वह खड़ी हैं। समझ लें लेकिन पांचवे मील के पत्थर पर खड़ी हैं रेखाएं और एक व्यक्ति अगर देख सके, झांक सके कि तू कहां खड़ी है, तेरा पूरा अतीत उसके सामने झलक जाए। तेरे मन में वह उतर जाए। तो पांचवे मील के पत्थर पर एक आदमी खड़ा है, जवान है ताकतवर है, पैर चलने वाले हैं, पैरों में ताकत है, चलने की आकांक्षा है। यह कहा जा सकता है उससे कि थोड़ी देर में तू छठवें

मील पर पहुंच जाएगा। और सौ में निन्यानबे मौके पर यह सही होगा। सिर्फ एक मौके पर चूक हो जाएगी। एक मौके पर चूक हो जाएगी।
मैं, एक ज्योतिषी मेरे पास आया था। एक ज्योतिषी मेरे पास आए, बड़े ज्योतिषी हैं। और कई आ जाते हैं इस तरह के मित्र मुझे कि आपका हाथ देखना है, यह करना है, वह करना है। बड़े मजे की घटना है, जो मित्र उन्हें लेकर आए थे, वे सौ रुपये में एक प्रश्न का उत्तर ज्योतिषी देंगे। सौ रुपये में वह एक प्रश्न का उत्तर देंगे। मेरे मित्र ने कहा कि आप शंका न करें, रुपये मैं दे दूंगा। मैंने कहा, नहीं, तुम्हें रुपये नहीं देने हैं, जब हाथ मेरा देखेंगे तो रुपये मैं ही दे दूंगा। तो ज्योतिषी से मैंने कहा कि रुपये मैं दे दूंगा, आप हाथ देखिए। मित्र को मैंने कहा कि तुम जाओ। तुम्हें यहां होने की कोई जरूरत नहीं है। मित्र अपनी गाड़ी से वापस चले गये। ज्योतिषी ने हाथ वगैरह देखा, कुछ सोचा-समझा तो कई बातें बताईं। उनका कोई छह सौ रुपया हुआ। उन्होंने कहा, वह छह सौ रुपया? मैंने कहा मैं नहीं दूंगा। और अगर इतना पता नहीं लगा सके पहले से कि ये आदमी रूपये नहीं देगा। तो फिर...

प्रश्नः आपने ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन किया है?

नहीं-नहीं, जरा भी नहीं।

प्रश्नः तो मैं जरा आपका जो हाथ है, उसे देख कर जो आप इस समय हैं, उसका पूरा विवरण लिखा जा सकता है। और मैं इस समय आज की तारीख आप नोट कर लीजिए, और एक वर्ष का मैं आपको वर्षफल लिख कर दे दूंगा। बाकी जो ये सब गवाह यहां हैं, आप यह देखेंगे कि एक के बाद एक जो घटनाएं लिखी हमने, आपका ये जो सामाजिक जीवन है उसके बारे में और कहां जाना है, वह हम कह सकते हैं। यह----का जो अंश है, ... आप इंट्रोवर्ड है, बहुत शायर हैं, बहुत कम बात की हैं, ... के करीब आकर जो बात... । आपने एक बड़े पते की बात बताई, कि जिसका... ने उल्लेख किया है, ... जब सही माईने में इंसान मुक्त हो जाता है, तब जो पास्ट, है उसका असर फिर नहीं पड़ता। वह तो मुक्त ही रहता है, फिर भी जो घटना चक्रों से चलना पड़ता है, तो ज्योतिषशास्त्र उन्हीं घटना चक्रों से है, यदि अभी आने वाला वर्ष, जनता के मन में आपके बारे में प्रतिक्रिया क्या रहेगी? आपकी लोकप्रियता कितनी रहेगी, कितनी लोग मानेंगे, आपका परिगमन होगा या नहीं। कुछ शिष्य आपको तकलीफ देंगे या तो आपको आनंद देंगे, जो अगर हो तो शिष्य मैं नहीं जानता हूं, तो बहुत सी बातें ज्योतिषशास्त्र बता सकता है।

आप ठीक कहते हैं। इसको मैं मना नहीं कर रहा। इसको मैं मना नहीं कर रहा। यह मैं कह ही नहीं रहा कि वह एक अलग विद्या नहीं है। या विज्ञान नहीं है, जो मैं जोर दे रहा हूं, वह इस बात पे दे रहा हूं, कि उसका विज्ञान होना या विद्या होना, आपकी यांत्रिकता पर निर्भर है। जो मैं जोर दे रहा हूं, इससे मुझे कोई मतलब ही नहीं है। आपने अभी जो कहा न मुझे, जो आपने मुझे कहा न, अब मैं कहता हूं, आप साल भर का प्रिडिक्ट करिए, वह बिल्कुल गलत होगा। इस कारण से कहता हूं।
न-न, इसलिए कहता हूं, इसलिए कहता हूं, जैसा कि आपने यह कहा न कि इंट्रोवर्ट रहे होंगे। यह मुझे आज कोई भी देखेगा तो यह कहेगा। लेकिन आपको मैं अपने गांव ले चलूंगा, मैं आपको अपने गांव ले चलूंगा, और आपसे कहूंगा कि सारे गांव में आप पता लगाइए कि बाइस साल तक इंट्रोवर्ट की कल्पना भी मुझमें कोई नहीं कर सकता था। कल्पना भी! आज अगर आप मुझे देखते हैं, तो आप ख्याल कर सकते हैं कि यह आदमी इंट्रोवर्ट रहा होगा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं आपकी बात ठीक समझता हूं, मेरे हाथ में वैसा है, आप जो कह रहे हैं ठीक कहते हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

और जो सामुद्रिक शास्त्र जानता है, अभी जो आपकी अंगुलियां हैं, अंगूठा है, और जो हथेली आपकी है, ऊपर-नीचे बत्तीस साल के बाद, अभी मैंने आपका हाथ देखा नहीं, ... पच्चीस साल के बाद यानी सही मायनों में आप इस लौकिक दृष्टि के प्रकाश में आ गए। वैसे चौबीस-पच्चीस साल से भी...
बिल्कुल ठीक रह रहे हैं आप। यह तो मैं कह ही नहीं रहा। यह मैं कह ही नहीं रहा कि ज्योतिष या सामुद्रिक कोई विद्या नहीं है, बल्कि जो मैं कह रहा हूं वह तो ज्योतिषी जो नहीं कह सकते उससे ज्यादा गहरे आधार दे रहा हूं उसको। बिल्कुल ही विद्या है। और भविष्य बहुत अर्थों में प्रिडिक्टिबल है। लेकिन प्रिडिक्टिबिलिटि जो है वह मनुष्य की मूर्च्छा पर निर्भर है। मूर्च्छा पर, यानी वह चूंकि वह मूर्च्छित जी रहा है, इसलिए निर्भर है। हां, लेकिन अगर एक अपवाद हो गया ना, तो प्रत्येक अपवाद हो सकता है, इसकी संभावना हो गई। जो जोर दे रहा है वह यह है कि बंधे रहने का कोई कारण नहीं है। बंधे हुए आप हैं और बंधे हुए आप रहेंगे। लेकिन बंधे रहने का कोई भी कारण नहीं है। यानी ऐसी कोई भी सत्ता नहीं है जो आपके कल के एक भी क्षण को बांधे। अगर आप ही बंधे नहीं रहना चाहते। आप अगर बंधे रहना चाहते हैं, तो दुनिया की कोई सत्ता आपको मुक्त नहीं कर सकती। आप बंधे रहें और आमतौर से बंधे हैं। इसलिए...

प्रश्नः एक भाई साहब पूछ रहे थे कि यू आर प्रेजेंट सेंटर्ड ऑर फ्यूचर सेंटर्ड? क्या विचार स्मृति और कल्पना से निर्मित नहीं होता? और जब स्मृति और कल्पना के आधार पर विचार निर्माण हुआ, तो आप वर्तमान में थे?

बिल्कुल बढ़िया ख्याल दिया है आपने। इसमें दो-तीन बातें हैं।
विचार बहुत तरह के हैं। बहुत से विचार सौ में से अस्सी प्रतिशत विचार आपकी अतीत स्मृति से जन्मते हैं, उससे बंधे होते हैं। उससे ही पैदा होते हैं। लेकिन इस कारण वे अतीत के नहीं होते। एक वृक्ष आपने लगाया है, जो पत्ता आज सुबह वृक्ष पर आया है, वह अतीत जो वृक्ष लगा था तीस साल से उससे ही आया है। उसमें ही कहीं छिपा था, उससे ही निकला है। जो सूरज सदा से था, उससे ही किरणें ली हैं उसने। जो हवा सदा थी, उससे ही आक्सीजन ली है। लेकिन फिर भी वह पत्ता नया है, जो कल नहीं था। पत्ता नहीं था, कल। क्लोरोफिल था वृक्ष में, सूरज की किरणों में डी विटामिन था। हवा में आक्सीजन थी। पत्ता कल नहीं था। यह सब मिल कर आज जो पत्ता आया है, यह पत्ता बिल्कुल नया है बिल्कुल और आज ही आया है। यह पत्ता इन अर्थों में पुराना है कि जो भी इसमें है वह था, लेकिन ये पत्ता नया है इस अर्थ में कि यह पत्ता जो भी है यह बिल्कुल आज ही हुआ है, आज ही प्रकट हुआ है। एक तो विचार अस्सी प्रतिशत विचार तो ऐसे हैं, जो आपकी पिछली स्मृति, पिछले अनुभव, पिछले आधार से आते हैं। लेकिन जरूरी नहीं अतीत के हों। आमतौर से अतीत के होते हैं। क्योंकि आप इतना भी श्रम नहीं उठाते, नया पत्ता भी बनाए। इतना भी श्रम नहीं उठाते, तो वे वही होते हैं जो कल थे, वही आज हैं। मैं इसलिए कह रहा हूं कि विचार की जो आपकी संपदा है भीतर स्मृति की, उस संपदा में से ही वह प्रकट होता है। लेकिन वह कल प्रकट नहीं हुआ था। और उसके प्रकट होने में आप ही जिम्मेदार नहीं है, आज जो स्थिति खड़ी हो गई है, वह भी जिम्मेदार है।
एक आदमी ने आकर आपको गाली दे दी है, जो आप गाली का उत्तर दे रहे हैं वह कहीं न कहीं आपकी अतीत स्मृति से ही आता है। लेकिन वह नहीं था उसी अर्थों में, जैसे कल कोई पत्ता नहीं था, लेकिन इस आदमी की गाली ने आज उसे जन्म दिया है। जैसे आज के सूरज ने एक नये पत्ते को जन्म दिया है।
अस्सी प्रतिशत विचार ऐसे हैं जो अतीत की स्मृति से ही आते हैं, लेकिन फिर भी अतीत के नहीं हैं। मैं पूरी बात कर लूं, न उसको कर लेंगे चर्चा। दस प्रतिशत विचार ऐसे हैं जो आपके हैं ही नहीं, आपके आस-पास के लोगों से आते हैं। चाहे आपके जाने, चाहे आपके अनजाने। जो आपके हैं ही नहीं। आपकी अतीत

की संपदा में जो जुड़ जाते हैं आकर बाहर से। आज आपने मुझे सुना इसका भी फर्क पड़ता है।

सम्बोधि के क्षण
छठवां प्रवचन

मेरा अंतर-सहयोग का सत्य

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

तो हो सकता है उस काल के एक खंड को देखा है उसने, इसलिए इतिहास लिख सका है। हमारी काल की अनुभूति भी लंबी है। यह हो सकता है कि हमने काल को इतनी लंबाई पर देखा हो। जैसे समझें कि कुछ कीड़े हैं, जो वर्षा में ही पैदा होते हैं और वर्षा में ही मर जाते हैं। उन्होंने न सर्दी देखी, न गर्मी देखी। अगर तीनों कालों को देखने वाला कोई कीड़ा, पक्षी उनसे कहे कि तुम घबड़ाओ मत, वर्षा फिर आएगी, तो वे कीड़े कहेंगे, वर्षा को फिर कभी आते देखा नहीं, सुना नहीं, मां-बाप ने कभी कहा नहीं, हमारे पुराण में लिखा नहीं कि वर्षा फिर कभी आती है। आई तो कभी नहीं। आती है, और गई तो गई, फिर कभी नहीं आती। क्योंकि वे कीड़े वर्षा में ही पैदा होते हैं, वर्षा में ही मर जाते हैं। उन्हें काल के दो और खंड हैं--और उन्हें यह ख्याल में भी नहीं होता कि वर्षा एक घूमता हुआ काल-खंड है, जो फिर लौट आएगा। उसके साथ सब कीड़े भी लौट आएंगे और उसके साथ सब कीड़े भी विदा हो जाएंगे।
पर जो कीड़ा वर्षा में ही जीआ है, यह बात बहुत कठिन है, वह जो तीनों काल में जीआ हो, उसके लिए बड़ा मुश्किल होगा यह मानना कि यह वर्षा फिर नहीं आएगी। उसने हजार बार इसे आते देखा है। यह भी मैं नहीं कहता हूं अभी। यानी इन धारणाओं में पूरब ने इतनी बड़ी घटनाएं देखीं, और वह ऐसी जगहों से गुजरा, और फिर-फिर उसे लगा कि फिर लौटना हो गया। इसलिए उसने बड़ी विस्तीर्ण समय की धारणा बनाई, और अगर विस्तीर्ण बनाएंगे तो वर्तुल हो जाएगी, अगर बहुत विस्तीर्ण बनाएंगे तो वर्तुल हो ही जाने वाला है सीधा नहीं रह सकता। अगर छोटा सा बनाएंगे तो स्ट्रेट लाइन छोटी ही हो सकती है।
यूक्लिड ने जब स्ट्रेट लाइन की बात ज्यामेट्री में की, तो उसको ख्याल यही था कि सीधी लाइन क्यों नहीं हो सकती? दो बिंदुओं को जोड़ने वाली निकटतम सीधी लाइन होती है। दो बिंदु जोड़ें, तो सीधी लाइन हो जाती है। निकटतम मार्ग से जुड़ गए, तो सीधी लाइन हो जाती है। फिर अभी पचास वर्ष पहले जब नॉन-युक्लिडियन विचारक पैदा हुए, तो उन्होंने कहाः कोई सीधी लाइन है ही नहीं। क्योंकि सब सीधी लाइनें गोल पृथ्वी पर खींच रहे हों, वह सब किसी बड़े गोल खंड के टुकड़े हैं। इसलिए सीधी लाइन बिल्कुल झूठी चीज है। बड़े वर्तुल के खंड हैं। और इतना बड़ा है वर्तुल, इसमें दिखाई नहीं पड़ता। और पृथ्वी का वर्तुल तो बहुत बड़ा नहीं है, समय का वर्तुल और बड़ा हो सकता है। हमारे कल्प-महाकल्प की जो धारणा है वह और भी बड़ा वर्तुल है।
होता क्या है? हमारी धारणाओं पर निर्भर करता है। आज से कोई हजार साल पहले, तारे वगैरह हैं जो हमारे, वह बिल्कुल जैसे घर की चांदनी थे। जो हमारी स्पेस की धारणा थी बड़ी छोटी थी। सूरज बहुत आगे था, चांद और आगे था, तारे बहुत ही पास थे, क्योंकि छोटे थे। जो छोटा था वह पास था, जो बड़ा था वह दूर था। जो और बड़ा था वह और दूर था। तो अगर हम हजार साल पीछे लौटें तो जिन लोगों ने दुनिया का नक्शा खींचा था, उसमें पृथ्वी सेंटर थी। चांद, तारे, सब तारे उसका चक्कर लगा रहे थे। एक छोटा सा घर था, अर्थ सेंट्रेड था वह, और स्पेस कोई लंबी न थी, बस छोटी सी थी, और आकाश सब तरफ से घेरे हुए था, आकाश सब तरफ से बंद किए हुए था। आकाश कुछ था, जो एनक्लोज कर रहा था। आकाश की जो धारणा थी, वह जो चारों तरफ से हमें ढांके हुए है ढक्कन की तरह है।... कि जैसे उलटा बर्तन पृथ्वी पर ढंका हो, ऐसा आकाश ढंका है। और दिखता भी है चारों तरफ से जमीन को छूता हुआ, उलटे बर्तन की तरह। ऐसी छोटी सी धारणा थी। फिर तो जैसे ही हमारी समझ तारों के बाबत बढ़ी तो सारी धारणा बदल गई। और इतनी विस्तीर्ण धारणा आई कि तब आकाश का अर्थ वह नहीं जो घेरता है, तब आकाश का अर्थ हो गया कि वह जो है जिसमें सब समा जाते हैं और फिर भी वह है और है ही और फैलता ही चला जाता है। आकाश की एक अंतहीन धारणा हमारे ख्याल में आई। समय की अंतहीन

धारणा अभी भी पश्चिम को समझ में नहीं आई है। अभी भी समय के मामले में पश्चिम थोड़ा छोटा टुकड़ा लेकर जी रहा है।

इसका कारण क्या यह भी हो सकता है कि समय को साक्षीभाव से पश्चिम नहीं देख सका?

साक्षीभाव से तो पश्चिम किसी चीज को नहीं देख सका। और साक्षीभाव से देखे जाने पर न समय बचता है, न आकाश बचता है। यानी समय और आकाश को साक्षीभाव से देखा भी नहीं जा सकता। पश्चिम ने तो देखा ही नहीं है साक्षीभाव से टाइम, स्पेस को। और साक्षीभाव से देखे जाने पर वह बचता ही नहीं। और जिन्होंने साक्षीभाव से देखा है, उन्हें वह माया हो गया है तत्काल, न हो गया है। उसे वह इनकार कर गए। क्योंकि साक्षीभाव से देखने पर साक्षी ही बचता है और सब खो जाता है। और साक्षीभाव से मत देखिए, तो साक्षी भर नहीं बचता और सब हो जाता है। वह तो अगर हम ठीक से समझें तो बिकमिंग और बीइंग के बीच वही सेतु है साक्षीभाव। अगर साक्षीभाव पर जोर दिया, तो बीइंग बचेगा और बिकमिंग खो जाएगा। एकदम निषेध हो जाएगा बिकमिंग का। और अगर साक्षीभाव छूटा, तो बिकमिंग बचेगी और बीइंग का कोई पता नहीं चलेगा कि वह है भी या नहीं, वह गया। और दो में से एक ही बचता है, दोनों एक साथ बचते नहीं। बात ही बहुत अदभुत है साक्षी की। वह साक्षीभाव में हमारा जो कांशसनेस का सेंटर है, वह बदल जाता है।
जब तक मैं अपने को नहीं जानता हूं, तब तक आप मेरी चेतना के केंद्र हैं। क्योंकि मैं तो हूं नहीं। आपका मुझे पता नहीं है, तो आप मेरे केंद्र बनते हैं--आप, आप, आप, कोई मेरा केंद्र बने तो ही मैं जी पाता हूं। नहीं तो मैं जीऊंगा कैसे? यानी दी अदर है, वह महत्वपूर्ण है; क्योंकि मैं तो हूं ही नहीं। मुझे कोई काम मिले तो जी सकता हूं, विचार मिले तो जी सकता हूं, सपना देखूं तो जी सकता हूं, मित्र हों, दुश्मन हों, तो जी सकता हूं। तू चाहिए मुझे हर हालत में। अगर तू नहीं है, तो मैं गया; क्योंकि मेरा कोई अस्तित्व नहीं है। मैं तो हूं ही नहीं। हम कहते हैं बहुत मैं, निरंतर दिन-रात, लेकिन सत्य है हमारे लिए "तू"। और जो हम इतना जोर से "मैं" "मैं" बार-बार कहते हैं, उसका भी कारण यही है कि "तू" सत्य मालूम पड़ता है। और मन करता है कि "मैं" सत्य हो।
मन करता है कि "मैं" सत्य हो, तो हम इसलिए "तू" को निरंतर इनकार करते हैं और "मैं" की घोषणा करते रहते हैं। लेकिन "तू" के बिना हम एक मिनट जी सकते नहीं। अगर कोई जिसको मैं प्रेम कर सकूं नहीं है, तो मेरा प्रेम गया। क्योंकि वह सदा तू पर निर्भर है। और क्रोध भी मैं नहीं कर सकता हूं, अगर तू न हो। तो जीने का उपाय नहीं छूटता है, अगर "तू" न हो। और हमारी चेतना जो है "तू" पर खंडित होकर बंट जाती है, फैल जाती है। थोड़ी सी चेतना मेरे उस मित्र पर भी है मेरी, जो मेरा मित्र बन कर मेरे लिए एक "तू" बना है; और थोड़ी उस दुश्मन पर भी है, जो एक दुश्मन बन कर मेरा "तू" बन गया है। और इस तरह मेरी चेतना खंडित, बंटी हुई है। और मैं तो हूं नहीं। इन्हीं सबका जोड़ मैं हूं। इन्हीं सबने जो कहा है, इन्हीं सबने जो बताया है, इन्हीं सबने जो माना है, इन सबको जोड़ कर मेरी एक तस्वीर है जो मैं हूं। इसको मैं ईगो कहता हूं। "तू" के आधार पर बनी हुई जो मेरी दृष्टि, धारणा है, मेरे बाबत, वह ईगो है, यानी ईगो जो है वह "तू" की आंखों में झांका गया रिफ्लेक्शन है। उसे जो मैंने इकट्ठा कर लिया है, बुरा-भला जैसा भी है। वह हजार तरह का है, क्योंकि हजार आंखों से इकट्ठा किया है। उसमें अच्छा भी है, उसमें बुरा भी है। बड़ा भी हूं, छोटा भी हूं। क्रोधी भी हूं, प्रेमी भी हूं, सब हूं उसमें मैं। और वह इकट्ठा करके मैं उसे पकड़े हुए हूं; क्योंकि वही मेरे लिए है। और जैसे ही मैं साक्षी बनूं, तो एकदम से ट्रांसफार्मेशन होता है चेतना के केंद्र का। क्योंकि जब मैं साक्षी बनता हूं, तो मैं केंद्र बन जाता, तू परिधि पर हो जाता है। और जैसे-जैसे मैं उभरने लगता है, वैसे-वैसे तू विदा होने लगता है। क्योंकि जैसे-जैसे तू उभरता था, मैं विदा होता था। वह ऐसा ही है, जैसे कि हम पानी को भाप बनाएं। तो जैसे-जैसे पानी भाप बनने लगा, तो पानी विदा होने

लगा। और भाप को पानी बनाएं, तो पानी भाप बनने लगा तो भाप विदा होने लगेगी। चेतना उस छोर से चलती है, तो तू बन जाता है, और मैं मिट जाता हूं। और चेतना इधर लौट आती है, उधर खाली छूट जाता है, और मैं बन जाता हूं।
इसलिए जिन्होंने भी साक्षी का प्रयोग किया उन्होंने कहा, मैं ही हूं अहं-ब्रह्मास्मि। तू है ही नहीं। तू बिल्कुल झूठ है। और फिर तू के जितने रूप थे, सब वह निषेध कर गए। इस निषेध को ही माया कहता हूं मैं। यह जो निषेध है साक्षी की तरफ से किया गया, जो यह कह रहा है कि और कुछ भी नहीं है, बस मैं ही हूं, ब्रह्म ही हूं। और ब्रह्म का भी इसलिए तू का अर्थ नहीं होता है। ब्रह्म का भी मैं का अर्थ है, अहं-ब्रह्मास्मि। वह यह नहीं कहता कि तुम ब्रह्म हो। तुम तो हो ही नहीं। तुम्हारा तो होना ही नहीं है, मैं हूं और मैं ब्रह्म हूं।
तो जगत माया हो जाता है, और अगर जगत माया हो जाता है, तो उसमें से यथार्थ छिन जाता है। सच बात यह है, यह बड़े मजे की बात है कि जिस चीज पर हम चेतना को केंद्रित करते हैं, वहीं यथार्थ पैदा होता है। मेरी दृष्टि में यथार्थ जो है, वह कनसनट्रेटेड अटेंशन है। जिस चीज को भी हम पूरी एकाग्रता से ध्यान दे देते हैं, वह हो जाती है, वह यथार्थ हो जाती है। यथार्थ जो है वह हम देते हैं उसे। और हम अपना ध्यान खींच लेते हैं, तो वह अयथार्थ हो जाती है। तो उसका होना जो है एकदम फीका, फीका, फीका, फीका, फीका... तो जब मैं आपको गौर से देखता हूं, तो मैं आपको यथार्थ कर रहा हूं। यानी यथार्थ का मेरा मतलब ही यह है कि जब कोई ध्यान से आपको देखता है, और इसलिए हमारे मन में ध्यान से देखे जाने की बड़ी आकांक्षा है। और कोई कारण नहीं है। कोई हमें ध्यान से देखे! और जितनी आंखें हमें ध्यान से देखें, उतने हम रियल मालूम पड़ते हैं कि मैं भी हूं। कोई देखे और किसी की आंख रुक जाए मुझ पर, तो ही मुझे भी लगता है कि मैं हूं, नहीं तो गया। तो नेता की, गुरु की जो दौड़ है वह यही दौड़ है कि भीड़ उसको देखे। उस देखने में उसको यथार्थ मिल जाता है। और जिस चीज को हम देखते हैं वही यथार्थ हो जाती है। और मजा है कि अगर इस टेबल को भी।
अभी एक व्यक्ति है अमेरिका में, जो किसी भी चीज को सोचे, तो उसके सोचने
के फोटोग्राफ लिए जा सके हैं, यह पहला मौका है। अभी मैंने उसका सारा साहित्य देखा जो दंग करने वाला है।

यानी भौतिक साक्ष्य भी उपस्थित किया जा सकता है?

यानी भौतिक साक्ष भी उपस्थित हो गया है, बिल्कुल उपस्थित हो गया है। यानी वह आदमी कार के संबंध में सोच रहा है, तो उसकी आंख में कार का चित्र उभर आता है। आंख में भी कार दिखाई पड़ती है और कैमरे के सामने आप प्लेट रखिए, तो कैमरा भी कार पकड़ता है। और वह आदमी सिर्फ सोच रहा है, और ऐसी चीजें नहीं जो उसने नहीं देखी हैं, वह भी। जैसे ताजमहल, और वह सोच रहा है जोर से, सोचता रहेगा और फिर आंख खोलेगा, और कैमरे में ताजमहल आ जाएगा। अब यह गहरा अटेंशन का प्रयोग हुआ।
यहां काशी में एक विशुद्धान सूर्य--विज्ञान वाले हैं--वे किसी भी चीज को, जैसे चिड़िया उड़ रही है, उसको देखेंगे और आंख बद कर लेंगे, और चिड़िया फौरन गिर जाएगी और मर जाएगी। वे उसको गौर से देखेंगे और वह चिड़िया फड़फड़ाएगी और फिर उड़ जाएगी। यह सारा का सारा खेल ध्यान का है। हम जिस चीज पर ध्यान देते हैं, वह होनी शुरू हो जाती है। उसे आकार मिलने लगता है। यानी सच यह है कि हम एक दूसरे को निर्मित कर रहे हैं, पूरे वक्त। जैसा भी हम ध्यान दे रहे हैं वैसा ही वह निर्मित हुआ चला जा रहा है।
यथार्थ मनुष्य के ध्यान की बाइ-प्रोडक्ट है कि जैसा ध्यान होगा, वैसा जगत बन जाएगा, वैसी चीजें बन जाती हैं, वैसा सब हो जाता है। तो फिर लेकिन जब ध्यान चीजों पर होता है, बाहर होता है, दि अदर पर होता है, तू पर होता है, तो भीतर उसकी धारा नहीं जाती, बाहर जाने लगती है। और जब बाहर जाने लगती है, तो भीतर शून्य हो जाता है। क्योंकि वहां भी ध्यान होगा, तो वहां भी यथार्थ आ सकता है। नहीं तो वहां भी नहीं आएगा। ध्यान जहां जाएगा, वहीं यथार्थ आ

जाएगा। यथार्थ का मतलब ही है गया हुआ ध्यान, दिया गया ध्यान। तो वह वहां शून्य हो जाता है, इसलिए पदार्थवादी जो है वह यह कह रहा है कि आत्मा नहीं है। कहां है आत्मा? शून्य हो गई आत्मा। क्योंकि वह पदार्थ पर ध्यान दे रहा है। पदार्थ है।
इसलिए मेरा मानना है कि पदार्थवादी में और अध्यात्मवादी में बुनियादी भेद नहीं है, प्रक्रिया एक ही है। अध्यात्मवादी कह रहा है जगत नहीं है, और नहीं होने का और कोई कारण नहीं है। जगत उतना ही है अभी, जितना कि पदार्थवादी के लिए आत्मा है। बस उतना ही है, आकार नहीं ले पा रहा है, निराकार हो गया है, शून्य हो गया है। क्योंकि ध्यान जो आकार देता था, वह हट गया है। और वह ध्यान अगर भीतर हो गया है केंद्रित, तो भीतर एक सत्ता उघड़ आई है, जो थी। लेकिन ध्यान न होने से पड़ी रहती है, पड़ी रहती है अनंतकाल तक, अनंत जन्मों तक, और उसका कोई पता नहीं चलता। पता चले भी कैसे? ध्यान देंगे तो पता चलेगा।
जो पोटेंशियल है, उसे एक्चुअल कर देता है ध्यान। जो अव्यक्त है, उसे व्यक्त कर देता है। और एक तरफ व्यक्त हो जाए, तो दूसरी तरफ अव्यक्त हो जाता है; क्योंकि वहां ध्यान सिकोड़ लेना पड़ता है। और साक्षी में ध्यान सिकोड़ना पड़ता है और उस पर लगा देना पड़ता है जो भीतर है। तो दुनिया माया हो जाती है। और मेरा मानना है जो दुनिया को माया कह रहे हैं, वे और जो आत्माओं को इनकार कर रहे हैं, वे दोनों एक ही तरह के लोग हैं। और दोनों सीक्रेट नहीं समझ पा रहे हैं। सीक्रेट केवल इतना है कि तुम जिस चीज पर ध्यान देते हो, वह हो जाता है, तुम जिस चीज पर ध्यान नहीं देते हो, वह नहीं होता है। दोनों आपत्तिजनक हैं। क्योंकि दोनों हैं, क्योंकि दोनों हैं। अब हम उसको ही उघाड़ पाते हैं, जिस पर हम ध्यान देते हैं। यानी अगर साक्षी होकर भी मैं उसको नष्ट कर दूं, या अपने आपको नष्ट कर लूं, तो दोनों ही भ्रामक हैं। दोनों ही भ्रामक हैं। अधूरे हैं। आधे सत्य हैं। और इसलिए दुनिया मुश्किल में पड़ी हुई है। नास्तिक के पास भी आधा सत्य है और आस्तिक के पास भी आधा सत्य है। एक ही चीज के दो पहलू हैं आधे-आधे। और इसीलिए वे किसी को हरा नहीं पाते। वे हराएंगे कैसे? दोनों के पास आधा-आधा है।

वह लैक ऑफ पर्टिसिपेशन जो दोनों में है, वह दिक्कत पैदा कर देता है।
और वह सिर्फ प्रेम, जो कि अभिव्यक्त है, सेवा के रूप में हम कहें या और किसी सृजनात्मक रूप में कहें, पर्टिसिपेशन को वही सिद्ध करता है।

ठीक कहते हैं, ठीक कहते हैं। इसलिए ध्यान का जो दूसरा हिस्सा है, वह प्रेम है या करुणा है। तब पूरा सत्य प्रकट होगा।

लिव कर सकते हैं तब?

लिव कैसे करेंगे? असल में पूरे न हो पाएं, तो कभी नहीं लिव कर सकते। क्योंकि आधा जो विरोध में इनकार कर दिया है। वह चारों तरफ से घेरे है, और कारागृह बन गया है। वह कारागृह बन गया है, अब वह मुक्ति नहीं ला रहा है। इसलिए गौतम बुद्ध ने बहुत अदभुत व्यवस्था कही है। या तो ध्यान के प्रयोग के पहले, या बाद में, कोई भी हालत में, जिसको हमने ब्रह्म-विहार कहा है-- करुणा, मैत्री उसके भाव का हममें उदय होना चाहिए। क्योंकि तब, जैसा मैंने अभी कहा कि या तो तू या मैं, यह हमारी सामान्य डिवीजन है देखने का, ध्यान का। लेकिन ऐसा भी हो सकता है, तू भी और मैं भी। या ऐसा भी हो सकता है, न तू, न मैं। यह प्रेम का अनुभव होगा। प्रेम के अनुभव हम दो ढंग से कह सकते हैं। न तू, न मैं, कोई और। इसी को परमात्मा कहेंगे। परमात्मा को अगर मैं "मैं" से आइडेंटीफाई करता हूं, तो मैं आपका निषेध कर देता हूं और अगर "तू" से करता हूं तो मेरा निषेध हो जाता है। मैं परमात्मा की परिभाषा करता हूं, जो मैं भी है और तू भी। जहां मेरा मैं और आपका तू दोनों आकर मिल गए हैं और एक हो गए हैं।

तब परम हो गए हैं?

तब वह परम हो गया है। तब उसने दोनों घेर लिए हैं। इसलिए परमात्मा में
सब विरोध समाहित होंगे। दि यूनिटी ऑफ दि अपोजिट।

कम हो गया?

जैसे ही यूनिटी हुई, कम हो गया, वह दोनों कट गए। और उन दोनों की बीमारी गई। दोनों का निषेध गया। और या फिर तो रास्ता यह है कि तू भी और मैं भी। वह भी जोड़ता है। वह एक ही बात को, विधेय और निषेध से कहने की बात है। तो अकेला ध्यान, इस तरह के वादों को जन्म देता है, जो जगत को मिथ्या कर देते हैं और जीवन को अयथार्थ कर देते हैं। और एक तरह से जीवन की जो विस्तीर्ण क्षमता है, उसको सिकोड़ कर मार डालते हैं। कर्म भी नुकसान पाता है। सृजन भी नुकसान पाता है। माया का क्या सृजन करना और क्या काम करना? कला, सबको घातक प्रहार होते हैं। विज्ञान तो बुरी तरह मर जाता है। यानी विज्ञान सर्वाधिक मर जाता है, क्योंकि विज्ञान तो यथार्थ है कुछ, तो ही उसकी खोज में जा सकता है। कला थोड़ी बहुत बच सकती है; क्योंकि कल वह फिक्शन में भी जाने की हिम्मत रखती है। यानी अगर हम जगत को माया भी कह दें, तो भी कलाकार को बहुत दिक्कत नहीं होती है। वह कहता है, माया भी है काफी है। वह जा सकता है। इसलिए भारत जैसे मुल्कों ने, जहां साक्षी पर जोर दिया, विज्ञान तो बुरी तरह मरा, कला फिर भी बची। यानी कला की, मैं मानता हूं, विज्ञान से ज्यादा गहरी गति है। गति इन अर्थों में कि उसे माया से भी बाधा नहीं पड़ती। वह माया में भी प्रवेश कर सकती है, वह स्वप्न को भी सत्य मान सकती है। इसलिए इतनी थोड़ी कला। जिंदा रह सकी। लेकिन विज्ञान तो बुरी तरह मर गया; क्योंकि विज्ञान तो शुरू ही इससे होता है कि वह यथार्थ है। अगर माया है तो जड़ ही कट गई, फिर माया में क्या सत्य खोजना? विज्ञान मरता है, कला मरती है। क्योंकि जो सपना बिल्कुल सपने जैसा मालूम होने लगे उसके भी प्राण निकल जाते हैं। सपने के प्राण इसमें हैं कि वह यथार्थ जैसा मालूम हो, तो ही उसका प्राण है। अगर प्रेयसी माया मालूम होने लगे, तो मर जाएगी, तो प्राण तो निकल गए। वह है तो ही सार्थकता जुड़ती है।
तो मैं जो बातें कर रहा हूं, वह तीसरे विकल्प की हैं। यानी मैं एक ऐसे... न तो मैं साक्षी पर जोर देना चाहता हूं, क्योंकि वह एकांगी है और न अकेली करुणा पर जोर देना चाहता हूं, वह भी एकांगी है। वह तू को ध्यान में लेती है। प्रार्थना तू को ध्यान में लेती है। प्रेम भी तू को ध्यान में लेता है। ये एकांगी हैं। इसलिए किसी न किसी रूप में प्रज्ञा और करुणा, ध्यान और प्रेम दोनों एक ही साधना के संयुक्त हिस्से होने चाहिए कि मैं भी हो सकूं और दूसरा मिट न जाए। बल्कि मेरे होने में दूसरे का होना भी विकसित हो। तो यहां उस हालत में यह जो दो विरोधी छोर हैं, जो एक-दूसरे को मिटा कर जीते और बनते हैं, अगर ये दोनों बचें या दोनों मिट जाएं, तो जो शेष रह जाता है, वही सत्य है।
और इसलिए अकेला साक्षी उस सत्य तक नहीं ले जाएगा और न अकेली साइंस उस सत्य तक ले जा सकती है। उस सत्य के लिए किसी न किसी रूप में धर्म और विज्ञान का गहरा तालमेल चाहिए। किसी भी अर्थों में... इसलिए परमात्मा की खोज सर्वाधिक कठिन है। आत्मा की खोज सरल है। और इसलिए कुछ लोग आत्मा पर रुक गए--जैसे जैन। आत्मा पर रुक गए क्योंकि साक्षी पर पूरा बल दिया, आत्मा रह गई, परमात्मा का उपाय न रहा।

यानी उनका व्यवहार पक्ष पुष्ट हो गया?

व्यवहार पक्ष तो पुष्ट हुआ, व्यवहार पक्ष पुष्ट हुआ। यह सब पुष्ट हुआ। यह सब पुष्ट हुआ। लेकिन परमात्मा तक गति नहीं हुई। गति हो गई आत्मा की तरफ। मेरा कहना यह कि साक्षी के गहरे प्रयोग ने उन्हें आत्मा से बाहर नहीं जाने दिया। आत्मा पर्याप्त हो गई। वह ठहर गई वहां बात।

मैं पर्टिसिपेशन की बात कर रहा था कि आत्मा तक ही मैं पहुंच गया, लेकिन आत्मा, आत्मा ही नहीं है, तब वह पर्टिसिपेट नहीं करता?

नहीं, नहीं।

अगर यह चीज आ जाए, तो यह जो हमारी भ्रामक स्थितियां पैदा हुई हैं मन में, वह निकल जाएंगी?

बिल्कुल नहीं निकल जाएंगी। असल में मैं हूं ही तब जब मैं पर्टिसिपेट करता हूं।

और वह भी सर्वमय-भाव से सर्वभाव से नहीं, सर्वमय-भाव से?

मैं कहूंगा कि भाव लें ही न बीच में। समग्रभाव से, यानी हम उसे चुनाव न करें कि किस भाव से पर्टिसिपेट करूं। पूर्णभाव से मेरा पर्टिसिपेशन हो तो टोटल पर्टिसिपेशन हो। एक फूल को भी मैं देखने जाऊं, तो सिर्फ देखूं ही नहीं, बाहर ही खड़ा न रह जाऊं, फूल भी हो जाऊं। यानी ऐसा न हो कि मैं फूल के बाहर खड़ा होकर देख रहा हूं, आन लुकर हूं। मैं देखते क्षण में, मैं फूल ही हो गया हूं। फूल ऐसी कोई अलग चीज नहीं रह गई है। मैं कोई अलग नहीं रह गया हूं। उस दर्शन के क्षण में फूल और मैं एक हो गए हों। इतने समग्रभाव से, कर्म भी इतने ही समग्रभाव से, उठना-बैठना भी इतने ही समग्रभाव से, ऐसे समग्रभाव से पार्टिसिपेशन जो होगा कि जिस गहराई तक पर्टिसिपेशन हो, जिस गहराई तक हम डूब रहे हैं, जितने गहरे तक, उतने ही गहरे तक हमें पता चलेगा सत्य का। अगर हम पूरे ही डूब गए हैं, तो ही हमें पता चलेगा पूरे का।
हिंदी के एक पुराने कवि का एक वचन है कि जो पार निकल गए, वे अभागे हैं,
जो डूब गए वे धन्यभागी हैं।

पार जाए तो पार है; डूब जाए तो पार--यह कबीर का वचन है।

एक और कवि का, जिसका वचन मैंने आपको कहा। जो डूब गए वे धन्यभागी हैं।
जीसस ने एक जगह कहा है कि तुमने अपने को बचाया, तो तुम मिट जाओगे। तुम अगर मिटा सके, तो फिर तुम्हें कोई नहीं मिटा सकेगा।
लाओत्सु का एक वचन है। एक दिन अपने शिष्य से वह कह रहा है। शिष्य ने कुछ पूछा है कि आप कभी जिंदगी में हारे कि नहीं हारे? तो लाओत्सु कह रहा है कि मुझे कोई कभी नहीं हरा सका। शिष्य ने पूछाः इसका सीक्रेट, इसका राज? तो लाओत्सु ने कहाः क्योंकि मैं हारा ही हुआ था। मुझे कभी कोई नहीं हरा सका, क्योंकि मैं हारा ही हुआ हूं। उसी जीत मेरी ही जीत थी। तो उससे मैंने कहाः आओ मेरी छाती पर बैठ जाओ। वह समझा की जीत गए और हम सहयोगी थे, हम उसके दुश्मन थे ही नहीं। हम लड़े ही नहीं थे कभी, तो हम हारते कैसे? हमने उसे जीताया था और हम नहीं हारे। इतने समग्रभाव से। लाओत्सु का शिष्य उससे पूछता है, कभी आप कहीं अपमानित हुए? कहीं बाहर निकाले गए? तो लाओत्सु कहता है, कभी नहीं। क्योंकि हम सदा उस जगह बैठे, जिसके पीछे और कोई जगह नहीं बचती थी। और बड़े-बड़ों को हमने निकाले जाते देखा, बड़े-बड़ों को हमने निकाले जाते देखा। हमारी तरफ किसी ने ध्यान ही नहीं दिया। हम उस जगह बैठे थे, जहां जूते उतारे जाते हैं। वहां हम बैठ गए थे। हमें कोई भगाता भी नहीं था, और हम बड़े मजे में थे। और हम बड़ों-बड़ों को हारते देखते थे, अपमानित होते देख रहे थे। और हम हंस रहे थे। जो मान खोजेगा, वह अपमानित हो जाता है। हमने मान खोजा ही नहीं। हमने अपमान को ही मान समझ लिया, पर्टिसिपेशन इतना कि अपमान को मान समझ लिया। फिर बहुत मुश्किल हो गया।
एक जंगल से गुजर रहा है लाओत्सु। जंगल में बड़े पैमाने पर दरख्त काटे
जा रहे हैं। बड़े कारीगर लगे हैं, और एक दरख्त नहीं है जो बिना कटा बचा है। किसी राजा का बड़ा महल बन रहा है। लकड़ी काटी जा रही है। फिर वे एक वृक्ष के

नीचे रुके, जिसके नीचे एक हजार बैलगाड़ियां रुक सकती हैं, इतना बड़ा है। और उसकी किसी ने एक डंडी भी नहीं काटी। तो लाओत्सु ने कहा कि जाओ उस वृक्ष से पूछो कि राज क्या है? बचे कैसे? जब कि सब कटा जा रहा है। जंगल उजड़ा जा रहा है, तुम बचे कैसे? राज क्या है? शिष्यों से कहाः जाओ जरा वृक्ष से पूछो। यह वृक्ष बड़ा ज्ञानी मालूम होता है। शिष्य गए, चक्कर लगा कर आए कि वृक्ष तो कुछ बोलता नहीं। तो लाओत्सु ने कहाः यह भी उसके ज्ञान का एक हिस्सा होगा। क्योंकि बोले कि फंसे। लाओत्सु ने कहा कि बोले कि फंसे। यह भी उसका हिस्सा होगा ज्ञान का। बड़ा होशियार है। फिर भी तुम जाओ और उन लोगों से पूछो जो दरख्तों को काट रहे हैं। दूसरे दरख्तों को, कि इस दरख्त को क्यों छोड़ दिया? शायद उनसे कुछ खबर लग जाए। क्योंकि कटने की घटना में दो ही चीजें हैं--एक तो वृक्ष होशियार हो और काटने वाले कैसे छोड़ गए! काटने वाले तो कुछ न कुछ करते! शिष्य गए हैं, और जो कारीगर काट रहे हैं दूसरे वृक्षों को, लकड़ियां चीरी जा रही हैं, उनसे पूछते हैं, इस वृक्ष को नहीं काटते? वे कहते हैं, वह वृक्ष बिल्कुल लाओत्सु जैसा है। उन्होंने कहाः क्या मतलब? वह वृक्ष इतना टेढ़ा-मेढ़ा है कि उसकी कोई लकड़ी सीधी नहीं होगी। वे शिष्य पूछते हैं कि इसको काट कर जला तो सकते हैं। इस वृक्ष को जलाने से इतना धुआं छूटता है कि कोई उसका इंधन भी नहीं बना सकता, तो अपने गुरु से कहना कि वह वृक्ष बिल्कुल लाओत्सु जैसा है।
लौट कर अपने गुरु को कहते हैं कि कारीगर कहते हैं कि वृक्ष बिल्कुल लाओत्सु जैसा है। उसने कहाः वह मैं समझ ही गया। वह इतना बेकार है, वह ऐसी आखिरी जगह खड़ा हो गया है कि जहां किसी को जरूरत ही नहीं पड़ती उसकी। लेकिन देखो, वह आखिरी जगह होकर कितना फल-फूल रहा है। उसकी शाखाएं कैसे दूर तक चली गई है। कितने लोग उसके नीचे विश्राम ले रहे हैं। अगर उसने जरा भी कोशिश की होती अच्छा बनने की, वह कट गया होता। जिन्होंने अच्छा बनने की कोशिश की, वे कट रहे हैं। लाओत्सु ने कहाः ठीक कहा उन कारीगरों ने। और उनसे तुम कह देना जब निकलो वहां से कि लाओत्सु भी कहता था कि तुम ठीक कहते हो। हम भी उसी वृक्ष की तरह हैं, इसीलिए खूब बड़े हो गए हैं। कोई काटने ही नहीं आता, क्योंकि हम उस जगह खड़े हैं और इतना ही धुआं निकलता है और लकड़ी कोई सीधी नहीं है। हम बिल्कुल बेकार हैं। हम किसी काम के नहीं हैं।
अगर हम बहुत गौर से देखें, तो जितना गहरा पर्टिसिपेशन होगा, उतने ईगोलेस हो जाएंगे; क्योंकि ईगो ही तो पर्टिसिपेशन नहीं होने देती है। आपसे मैं नहीं जुड़ पाता हूं, क्योंकि मैं हूं। तब आपके आस-पास घूम सकता हूं, लेकिन प्रवेश नहीं होगा। प्रवेश कहां हो? आप भी टूटें, आप भी मैं हैं, मैं भी मैं हूं। दो मैं हैं चारों तरफ, तो पर्टिसिपेशन नहीं हो पाता। और दूसरे के लिए तो मैं कुछ कर नहीं सकता हूं। लेकिन मेरा मैं अगर विदा हो तो पर्टिसिपेशन हो जाए, उसी वक्त हो जाए। और जितने गहरे में चारों तरफ मैं फैल जाऊं, यानी ऐसा न लगे कि आपकी आंख आपकी ही है, और ऐसा भी लगने लगे कि मेरी ही है, और उधर से भी मैं देखता हूं। और ऐसा न लगे कि आपका हाथ आपका ही है, मेरा ही है, और सभी हाथ मेरे हाथ हैं, इतना गहरा पर्टिसिपेशन हो जाए। लाओत्सु एक गांव से गुजरा, एक आदमी ने आकर लकड़ी से उस पर चोट कर दी है पीछे से, वह गिर पड़ा है? आदमी भाग गया है? उसके शिष्य कह रहे हैं, क्या करना है? जाएं, हम उसे पकड़ें? उसने कहाः नहीं, ऐसा मत करना। ऐसा मत करना। क्योंकि जब उसने मुझे मारा, तब मैं बिल्कुल झुक गया। उसने हमला किया था, मैंने बिल्कुल जगह दे दी थी कि हमला करना। हम दोनों उस कृत्य में सहभागी हैं। वह मारने वाला, मैं पिटने वाला। लेकिन रेसिस्टेंट नहीं था। उस पहली कहानी से जूडो निकला, जुजुत्सु निकला।
जूडो का नियम है कि जो घूंसा आपको मारे, तो तुम उसका घूंसा पी जाओ। लड़ो मत। रेस्सिट मत करो। पूरे शरीर को ऐसा छोड़ दो कि जैसे घूंसा पी जाए पूरा शरीर। तुम घूंसे के साथ एक हो जाओ। जूडो के जो विचारक हैं वे कहते हैं कि अगर एक बैलगाड़ी जा रही हो और उसमें एक आदमी होश में बैठा है और एक आदमी शराब पीए बैठा हो, बैलगाड़ी उलट गई है, तो शराब जिसने पी है उसको चोट नहीं लगेगी, जो होश में बैठा है उसको चोट लग जाएगी। क्योंकि शराब पीने वाला उलटने में ही राजी हो जाएगा। वह कुछ उस चोट से रेसिस्ट नहीं करता, जब गाड़ी

उलट गई, तो वह भी उलट गया। यानी उसने कहीं उसका विरोध ही नहीं किया कि रोका अपने को, बचाया कि मर न जाऊं, चोट न खा जाऊं।
तो जूडो साइंस यह कहती है कि गाड़ी उलटने से हमारी हड्डी नहीं टूटती।
वह तो जब गाड़ी उलटी, तो तुम हड्डी कड़ी कर लेते हो कि बचो, वह कड़ी हड्डी टूट जाती है। वह जो रेसिस्टेंस है वह चोट तोड़ देता है हड्डी। इसलिए बच्चा गिरता है दिन में पच्चीस दफा और उठ आता है और कुछ नहीं टूटता-फूटता। और हम गिरे कि गए। क्योंकि बच्चा भी शराबी की हालत में है। अभी गिरा, तो गिरने के साथ एक हो गया।
पर्टिसिपेशन का गहरे से गहरा मतलब यह हो सकता है कि जो हो रहा है, जैसा
हो रहा है, हम उसके लिए भी राजी हैं। जीसस गहरे से गहरे इस मामले में गए हैं। लेकिन क्रिश्चियनिटी चूंकि बहुत गहरे में नहीं जा सकी, इसलिए जीसस का फायदा दुनिया को नहीं हुआ। जीसस कहते हैं, जो तेरा कोट छीने, तू उसे अपने कमीज भी दे देना। पता नहीं, उसको कमीज की जरूरत हो, संकोच में छीनता न हो। पर्टिसिपेशन हुआ यह। यह बात हुई न कि जो तुम्हारा कोट छीने, तू जल्दी से अपनी कमीज भी दे देना, क्योंकि ऐसा न हो कि बेचारा संकोच में कमीज न छीनता हो। और जो आदमी तुझसे बोझ ढोने को कहे कि चल एक मील, तो दो मील चले जाना। हो सकता है आदमी भला हो और दो मील तक की हिम्मत न कर पाता हो।
जीसस का एक वचन इतना अदभुत है, दुनिया में किसी आदमी का नहीं है। वचन हैः रेसिस्ट नॉट ईविल। इतनी हिम्मत कि बुराई से भी मत लड़ो, बुराई से भी मत लड़ो, उसमें भी राजी हो जाओ। उससे भी पर्टिसिपेट करो... टटोल। वह ऐसा नहीं कि भलाई से पर्टिसिपेट करेंगे, बुराई से नहीं करेंगे। सुख से पर्टिसिपेट करेंगे, दुख से नहीं करेंगे। मित्र से करेंगे, दुश्मन से नहीं करेंगे। जिंदगी से करेंगे, मौत से नहीं करेंगे। ऐसा चुनाव हुआ तो मुश्किल में पड़ गए हम। चुनाव हुआ कि हम फिर बच गए, और फिर वह जोड़ नहीं हो पाया। चुनाव ही नहीं है, च्वाइसलेस हैं, जो भी होगा पर्टिसिपेट करेंगे।
एक झेन फकीर है, वह अपने घर के बाहर बैठा हुआ है। कोई उससे आकर पूछता
है, क्या कर रहे हो? वह कहता है, धूप ने बुलाया था सो बाहर आ गया हूं। वह यह नहीं कहता कि मुझे सर्दी लग रही थी इसलिए बाहर आ गया। वह कहता है, धूप ने बुलाया था तो बाहर आ गया हूं। फिर वह आदमी बैठा रहा और धूप लेता रहा। फिर थोड़ी देर बाद उठा और भीतर जाने लगा। पूछा कहां जा रहे हो? घर की छाया बुलाती है, भीतर जा रहा हूं। मगर वह यह नहीं कह रहा है कि मैं छाया में जा रहा हूं। कहता है कि घर की छाया बुलाती है।
अब यह आदमी बिल्कुल पर्टिसिपेट कर रहा है। इस अर्थों में पर्टिसिपेट
कर रहा है कि यह जैसे है ही नहीं। धूप बुलाती है तो धूप में चला जाता है, छाया बुलाता है तो छाया में चला जाता है। जिंदगी ने बुलाया तो जिंदगी में आ गए, मौत बुलाए तो वहां जाने लगे। यहां आना भी सुखद था, वहां जाना भी सुखद है।
इस स्थिति को ही मैं मुक्ति कहूंगा। पर्टिसिपेशन जहां टोटल है वहां फ्रीडम पूरीहै। वहां अब कोई बंधन नहीं है, क्योंकि हम बंधन से ही पर्टिसिपेट कर पाते हैं। अब आप मुझ पर बंधन डाल ही नहीं सकते। अब कोई उपाय नहीं है मुझे बांधने का। और ऐसी जो जीवन-मुक्ति है वह पूरे जीवन को स्वीकार करती है। उसमें कोई निषेध नहीं है, उसमें निषेध है ही नहीं। न पदार्थ का है, न परमात्मा का है, न शरीर का है, न आत्मा का है, न इंद्रियों का है, न भोग का है। निषेध है ही नहीं। और जिसके चित्त में निषेध नहीं है, उसे मैं आस्तिक कहता हूं। आस्तिक से मेरा जो मतलब है वहऐसा जिसके मन में कोई निषेध नहीं है।

किसी भी चीज में निषेध नहीं, लेकिन हर काम किया नहीं जाता है। हर काम किया नहीं जाता है, लोग समझ नहीं पाते हैं। यह भी क्या मुक्ति होता है?

वह यही समझते हैं कि इसमें तो फिर चोरी हो जाएगी, बेईमानी हो जाएगी, हत्या हो जाएगी। और मजा यह है कि अगर यह ख्याल है कि सब जैसा है, वह जो टोटेलिटी ऑफ थिंग है, उसके साथ एक हूं, तो यह आदमी चोरी करेगा कैसे? चोरी

करेगा किसकी? यह संभव ही नहीं है। यानी मेरा कहना है, जो सर्वभाव से, जो सर्व स्वीकृति का जो भाव है, उसमें जो बच जाए, वही पुण्य है। और उसमें कुछ है जो बचता ही नहीं है, वही पाप है। उसे छोड़ना नहीं पड़ता, वह बचता ही नहीं। उसे कहीं छोड़ने निषेध करने नहीं जाना पड़ता। वह होता ही नहीं। वह कहीं वहां है ही नहीं।
हमारी लेकिन भूल यह है कि अंधेरे में रहने वाले लोगों की, जो सदा से अंधेरे में रहे हों, कोई जाकर अगर कहे कि तुम दीया जला लो, तो वे कहेंगे कि दीया तो जलाएंगे, फिर अंधेरे को कैसे मिटाएंगे? वे पूछेंगे कि अच्छा दीया भी जला लेंगे। जलाया नहीं दीया। जला लें तो फिर सवाल नहीं उठता है। सवाल तो अंधेरा निकालने का है। अब उनको समझाना मुश्किल है कि दीया जला, अंधेरा होता ही नहीं; फिर, कि फिर निकालने का सवाल ही नहीं है। या ऐसा भी कह सकते हैं, जब दीया जल गया, तो अंधेरा भी दीया ही हो जाता है। फिर अंधेरा भी उजाला ही है, फिर बात कहां है कि तुम निकालोगे, जाओगे कहां निकालने?
उसे डर लगता है कि चोरी कर रहा है, बेईमानी कर रहा है, झूठ बोल रहा है। उसे लगता है, तो सब स्वीकार कर लूं--झूठ भी बोलूं, चोरी भी करूं, पाप भी करूं? तो गलत सिखा रहे हैं आप। यह नहीं हो सकता, निषेध चाहिए, यह इनकार कि चोरी मत करना।
पहली दफा उपनिषदों का अनुवाद हुआ जर्मनी में, तो डियुसल और दूसरे लोगों ने जिन्होंने पहले अनुवाद की हवा पहुंचाई, उनके सामने सबसे बड़ा जो सवाल उठा, वह यह था कि ये धर्मग्रंथ कैसे हैं? क्योंकि इनमें नहीं लिखा है कि चोरी मत करो, झूठ मत बोलो। टेन कमांडमेंट कहां हैं? धर्मग्रंथ हैं कैसे? इनमें कहीं लिखा ही नहीं है कि तुम क्या मत करो। इसमें तो बस यही ब्रह्म, ब्रह्म की बात है सब। धर्मग्रंथ कुछ संदिग्ध मालूम होते हैं। क्योंकि धर्मग्रंथ में तो होना चाहिए साफ--क्या मत करो--पराई स्त्री को मत देखो, दूसरे का धन तुम्हारा नहीं है, झूठ मत बोलो, धोखा मत दो, दगा मत करो। यह सब इसमें लिखा ही नहीं है, तो धर्मग्रंथ कैसा है? लेकिन उन्हें पता ही नहीं कि जिसने यह लिखा है, वह सिर्फ नीतिग्रंथ रह गया है, धर्मग्रंथ नहीं है। धर्मग्रंथ में लिखने की जरूरत ही नहीं है।
अभी मैं अमृतसर में एक वेदांत सम्मेलन में गया था। एक बड़े संन्यासी हैं। उन्होंने अपने प्रवचन के बाद नारे लगवाए लोगों से--धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो। उनके पीछे बोला, तो मैंने कहा, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। वह कहते हैं, धर्म की जय हो, फिर अधर्म बचेगा नाश करने के लिए? धर्म की जय हुएई, बात खत्म हो गई। आगे की बात की फिकर कैसे करोगे? यानी ऐसा ही है कि दीया जले और अंधेरा हटाएंगे।
अब इसको पता नहीं है कि यह जो नारा दिया जा रहा है कि धर्म की जय में सब
हो गई बात! यह अधर्म के नाश में भी सब बात पूरी हो गई। ये कोई दो चीजें नहीं हो सकती हैं, एक ही चीज के दो हिस्से हैं। डर लगता है, वही डेथ है, जो हमें धर्म तक नहीं पहुंचने देता है, नीति तक अटका देता है। और नीति बड़ी साधारण बात है, अत्यंत साधारण बात है। धर्म का उससे क्या लेना-देना?

असल में ईशावास्योपनिषद का जो वाक्य है--ईशावास्यं इदं सर्व... । इदं
को मध्य-युग में बिल्कुल ही हम लोगों ने दृष्टि से बाहर कर दिया और उसमें पर्टिसिपेशन नहीं खोजा। उसके कारण हमारी कला में भी कुछ अति उठ आई है। क्योंकि जब कवि या कलाकार छोटा बनेगा, तो कला कैसे छोटी बनेगी? और मुख्य समस्या आज की मेरी दृष्टि में यानी मेरी अपनी समस्या यही है--अनुकृति और अभिव्यक्ति की।

सम्बोधि के क्षण
सातवां प्रवचन

जन्मों-जन्मों का जीवन

प्रश्नः बंदर से आदमी का शरीर आया हूं। कृपया इसे समझाए और इस पर प्रकाश डालें।

इसमें समझने की बात ही बहुत ज्यादा नहीं है। बंदर से आदमी की देह मिली है, यह भी आपको कैसे समझ में आता है? यह इसलिए समझ में आता है कि पीछे डार्विन ने बहुत मेहनत की, और यह समझाने की कोशिश की कि शरीर का जो विकास है, मनुष्य के पास जो शरीर है, वह शरीर बंदर के पास जो शरीर है, उसकी ही आगे की कड़ी है, यह शरीर उससे ही विकसित होकर आया हुआ है। यह तो आधी बात हुई। अगर मनुष्य केवल शरीर है, तब तो बात खत्म हो गई। मनुष्य अगर आत्मा भी है--जैसा कि है, तो कैसी विकास यात्रा से आ रही है? प्रकृति में बहुत बहुत तलों पर बहुत तरह का विकास चल रहा है। जैसे शरीर की कड़ी बंदर से जुड़ी हुई है वैसे ही अगर हम आदमी के पुनर्जन्मों में जाने की कोशिश करें--जैसे, आपके पुनर्जन्मों को जानने की, पिछले जन्मों को जानने की कोशिश की जाए तो यह बड़ा आश्चर्यजनक अनुभव है कि अगर दस पांच लोगों को उनके पिछले जन्मों की स्मृति में ले जाया जाए तो दस पांच जन्म तो उनके मनुष्यों के मिलेंगे, लेकिन मनुष्यों के अतिरिक्त अगर पीछे कहीं याददाश्त को घुमाया जाए तो आखिरी कड़ी गाय की मिलेगी। यानी अगर आपको याद दिलाई जाए, हो सकता है आपके पिछले दस जन्म मनुष्य के ही रहे हों, लेकिन ग्यारहवां जन्म आपका गाय का मिल जाएगा।
अगर किसी भी मनुष्य के पिछले जन्मों की स्मृति को खोदा जाए तो मनुष्य होने के पहले उसका जो जन्म होगा वह गाय होगा। आत्मिक कड़ी, शरीर की कड़ी नहीं; शरीर की कड़ी तो बंदर से आई हुई है। लेकिन आदमी होने से पहले कोई आत्मा किस पशु-योनि से गुजरती है, अगर इसकी खोज-बीन की जाए तो आदमी होने के पहले मनुष्य की आत्मा गाय की योनि से गुजरती है, यह मेरा कहना है। चूंकि इस संबंध में कोई बहुत बड़ा काम नहीं हुआ, जैसा कि डार्विन के लिहाज से शरीर के संबंध में हुआ है, इस पर काफी काम करने की गुंजाइश है कि अगर हम दस-पच्चीस लोगों को पिछले जन्म में उतारने की कोशिश करें तो जहां से उन्होंने मनुष्य कड़ी शुरू की है, वह कड़ी गाय की कड़ी के बाद शुरू होती है। इसलिए गाय से एक आत्मिक निकटता है। यह जो मैने कहा, इससे गौमाता का मेरा अर्थ हो सकता है। बंदर से भी एक निकटता है, शारीरिक कड़ी से दृष्टि से। इसका मतलब यह हुआ कि आदमी के पैदा होने के पहले गाय की यात्रा से जो आत्मा विकसित हो रही थी, वह और बंदर की यात्रा से जो शरीर विकसित हो रहा था, वह मनुष्य होने के लिए इन दो चीजों का उपयोग किया गया है--बंदर वाले शरीर का और गाय वाली आत्मा का। समझने की बात नहीं है न यह; यह तो प्रयोग करने की बात है। यह तो अगर पिछले जन्मों की स्मृति को जगाने की कोशिश करें तो समझ में आने वाली बात है।

प्रश्नः आपने प्रयोग किए हैं?

हां, तभी तो कह रहा हूं, नहीं तो कैसे कहूंगा? इससे भी कुछ समझ में नहीं आएगा। वह तो तुम्हारा ही प्रयोग तुम्हें कराया जाए तो समझ में आता है। आत्मा के संबंध में जितनी बातें हैं, बिना प्रयोग के उनमें से कोई भी समझ में आनेवाली नहीं है। कहा जा सकता है कि यह है, ऐसा है, लेकिन उससे फर्क नहीं पड़ता है कहने से। वह तो किसी को भी उत्सुकता हो तो जैसे मैं ध्यान के शिविर ले रहा हूं, धीरे-धीरे उत्सुकता जगाता हूं कुछ लोगों में, कि जिन लोगों को पिछले जन्म की स्मृति की यात्रा पर जाना हो, उनका अलग शिविर लेने का इंतजाम हो। थोड़े से पच्छीस लोग इक्कीस दिन के लिए आकर मेरे पास रहें; उनको पिछले जन्म की यात्रा में उतारने की कोशिश की जाए। इक्कीस के साथ

मेहनत की जाए तो उनमें से पांच सात लोग उतर जाएंगे। तभी समझ में आ सकता है कि हमारी पिछली कड़ी कहां से जुड़ी हुई है, नहीं तो वह समझ में नहीं आ सकती। कठिनाई तो यह है कि कोई प्रयोग करने, गहरे प्रयोग करने की तैयारी नहीं
है किसी की; क्योंकि गहरे प्रयोग खतरनाक भी हैं; क्योंकि आपको अगर पिछले जन्मों की स्मृति आ जाए तो आप फिर दुबारा वही आदमी नहीं हो सकेंगे जो स्मृति के पहले थे। कभी नहीं हो सकेंगे। फिर असंभव है यह बात। यानि आपकी पूरी, टोटल पर्सनैलिटी फौरन बदल जाएगी, क्योंकि अगर आप अपनी पत्नी को बहुत प्रेम कर रहे हैं तो आप पाएंगे कि ऐसी कोई पत्नियों को बहुत बार प्रेम किया है और कुछ अर्थ नहीं पाया। तो इसके बाद आप इस पत्नी को वही प्रेम नहीं कर सकते, जो इसके पहले कर रहे थे। असंभव हो जाएगा। वह बात ही खत्म हो गई। अपने बेटे के लिए आप मरे जा रहे हैं कि इसको यह बनाऊं, उसको यह बनाऊं। आपको अगर पांच जन्मों की स्मृति आ जाए कि आप ऐसे कई बेटों के साथ मेहनत कर चुके, वह सब बेमानी साबित हुई और आखिर में मर गए, तो इस बेटे के साथ जो आपका पागलपन है, वह एकदम क्षीण हो जाएगा।
बुद्ध और महावीर दोनों ने, अपने सभी साधकों को पिछले जन्मों में ले जाने का प्रयोग किया। अगर कोई बहुत गौर से समझे तो बुद्ध और महावीर का जो सब से बड़ा दान है, वह अहिंसा वगैरह नहीं है। अहिंसा तो बहुत दिन से चलती थी। इन दोनों का जो सब से बड़ा कीमती दान है, वह जाति स्मरण है। यह वह विधि है, जिसके द्वारा आदमी को उसका पिछला जन्म स्मरण दिलाया जा सके। जो लाखों लोग भिक्षु और संन्यासी हो गए, वे शिक्षा से नहीं हो गए। जैसे ही उनको पिछले जन्म का स्मरण आया कि सब बातें बेकार हो गई। उनको सिवाय संन्यास के कोई सार्थक बात न रही। लाहों आदमी एक साथ जो संन्यासी हुए, उसका यह कारण नहीं था कि महावीर ने समझा दिया कि संन्यास से मोक्ष मिल जाएगा उसका कुल कारण इतना था कि उनके अतीत की याद दिला देने से उनको यह लगा कि यह सब तो हम बहुत बार कर चुके, इसमें कोई सार नहीं है। यह चक्कर तो बहुत दफे घूम चुके, इसमें कोई भी अर्थ नहीं है। तब कुछ और करने की धारणा का कोई अर्थ ही नहीं है।
वह जो मै चाहता हूं, ये सारी बातें कहता भी हूं, इसी ख्याल से कहता हूं
कि आपमें कोई जिज्ञासा जगे। लेकिन बौद्धिक जिज्ञासा से कुछ भी नहीं होगा। जिज्ञासा जगनी चाहिए कि कुछ लोग प्रयोग करने को राजी हों। जल्दी मैं चाहता हूं कि ध्यान के शिविर भी हों तो इसी तरह के सामान्य शिविर न हों। सभी लोग आ जाएं. ऐसा अब न हो। या फिर हम शिविरों को बांटें--सामान्य शिविर हो, कोई भी आ सके। फिर विशेष इक्कीस दिन के शिविर हों, जिसमें वही लोग आ सकें जिनकी गहरे जाने की हिंमत हो, जो पूरी शक्ति लगाने को तैयार हों। मैं तो मानता हूं कि इक्कीस दिन में गहरा प्रयोग करने से आप बिल्कुल दूसरे आदमी हो जाएं, आपकी सारी जिंदगी और हो जाए। जो आप सोचथे थे ये, वह चला जाए, जो आप जीते थे, वह चला जाए और दुबारा आप लौट कर कभी वही न हो जाएं। लेकिन बौद्धिक जिज्ञासा से तो कुछ हल होने वाला नहीं है बहुत। क्योंकि जो भी आप पूछेंगे, मैं कुछ और कहूंगा। उसपर और दूसरे प्रश्न खड़े हो जाते हैं और वह बात वहीं घुमकर रह जाती है। उसमें कोई लाभ नहीं।

प्रश्नः यह बात तो अतीत की हो गई?

जी, अतीत की हो गई, लेकिन आपको अगर यह ख्याल आ जाए कि आपने अतीत में क्या क्या किया, कितनी बार किया, तो आज जो आप कर रहे हैं, उसके करने में बुनियादी फर्क पड़ जाएगा। अगर यह पता चल जाए कि मैंने कई दफा धन कमाया कई दफा कमाया और कुछ भी नहीं पाया, तो आज धन कमाने के जो दौड़ है, वह एकदम क्षीण हो जाएगी। उसमें से बल निकल जाएगा। फर्क बुनियादी पड़ जाएगा एकदम। अगर आपको यह पता चल जाए कि यह शरीर बहुत दफे मिला और हर बार नष्ट हो गया, तो अब इस शरीर के आसपास जीने का कोई मतलब नहीं है। यह फिर नष्ट हो जाएगा। तो मेरे जीने का केंद्र शरीर नहीं होना चाहिए क्योंकि शरीर बहुत दफे मिलता है और मर जाता है और फर्क नहीं पड़ता। आपके जीने का केंद्र पहली दफा आत्मा हो जाएगा, शरीर नहीं रह जाएगा।

बात अतीत की है, लेकिन उसका स्मरण आपको यह साफ कर देगा कि जो आप कर रहे हैं, यह कोल्हू के बैल जैसे करना है, यानीबहुत दफे किया जा चुका है। सफल हो गए हैं, तो भी कुछ नहीं पाया, असफल हो गए हैं तो भी कुछ नहीं गंवाया। अगर यह बात दिख जाए तो सफलता का कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। यानी हम फिर वही नहीं कर सकेंगे। किसी पिछले जन्म में मैंने करोड़ रुपये इकट्ठे कर लिए और फिर मर गया। इस जन्म में मैं फिर करोड़ रुपये इकट्ठे करने के लिए लगा हुआ हूं, तो मेरे सामने साफ हो जाएगा कि करोड़ फिर इकट्ठे कर लूंगा, फिर मर जाऊंगा। सोचने की बात है कि अब मुझे करोड़ इकट्ठे करने की दौड़ में जीवन गंवाना चाहिए या कुछ और कमाने का ख्याल करना चाहिए?
प्रकृति की यह तरकीब है कि आपके पिछले जन्म की स्मृतियां बिल्कुल दबा
कर रख देती है। ठीक भी है, नहीं तो आप पागल हो जाएं। अगर अकारण आपको स्मृति रह जाए तो आप मुश्किल में पड़ जाएं। अभिप्राय यह कि जो हिम्मत करके कोशिश करता है, खोजने पर उसको ही पता चलता है, नहीं तो नहीं चलता है। सारी स्मृतियां--जितने जन्म हुए हैं और एक-एक आदमी के लाखों जन्म हुए हैं--कोई खो नहीं जाती हैं। वे सारी स्मृतियां आपके भीतर मौजूद हैं। गहरी पर्तों के नीचे उनको खोजना पड़ेगा। ऐसे तो सामान्यतया हम, आठ साल पहले क्या किया था, वह भी भूल गए हैं।
मैं एक लड़की पर बहुत दिनों तक प्रयोग करता था, उसके जाति-स्मरण के लिए। अगर मैं आपसे पूछूं कि उन्नीस सौ इक्कावन में एक जनवरी को आपने क्या किया, तो आप कुछ भी नहीं बता सकते। एक जनवरी हुई है, उन्नीस सौ इक्कावन भी हुआ है, वह आपको पता है। पिछले जन्म की बात नहीं है, इसी जन्म की बात है। लेकिन एक जनवरी उन्नीस सौ इक्कावन को आपने सुबह से शाम तक क्या किया, यह कुछ भी स्मरण नहीं है। एक जनवरी उन्नीस सौ इक्कावन हुई न हुई, बराबर हो गई। लेकिन अगर आपको सम्मोहित करके बेहोश किया जाए और याद दिलाई जाए तो एक जनवरी, उन्नीस सौ इक्कावन की आप इस तरह रिपोर्ट करते हैं, जैसे अभी आंख के सामने से गुजर रही हो। अभी रिपोर्ट कर देंगे आप पूरी तरह कि यह हुआ--सुबह उठा, यह हुआ; यह नाश्ता लिया था; यह पसंद नहीं आया था, नमक ज्यादा था दाल में। पूरे दिन की आप रिपोर्ट कर देंगे। पर अब मुश्किल मुझे यह हुई कि उसको टैली (मिलान) कैसे किया जाए कि यह हुआ भी कि यह सिर्फ सपना है। तो मैंने नोट करना शुरू किया। दिन भर सुबह से शाम तक उसको नोट करता रहा कि क्या हो रहा है--उसने किसको गाली दी, किससे झगड़ा किया, किस पर क्रोध किया। दिन भर की दस पंद्रह घटनाएं मैंने नोट कर लीं। तीन साल बाद उसको फिर बेहोश किया और उस दिन के लिए पूछा तो उसने बिल्कुल ऐसा रिपोर्ट कर दिया कि जिसका कोई हिसाब नहीं! जो बातें मैंने नोट की थीं, वे तो रिपोर्ट हुई हीं, जो मैं नहीं नोट कर पाया था, क्योंकि दिन में तो हजार घटनाएं घट रही हैं, वे सब भी रिपोर्ट कर दीं।
तो इस जन्म की भी बहुत कामचलाऊ स्मृति हमारे पास रह जाती है, बाकी तो नीचे दब जाती है। इसमें जो भी दुखद स्मृतियां हैं, वे एकदम से दबा दी जाती हैं, चित्त उनको दबा देता है। जो सुखद स्मृतियां हैं, उनको ऊपर रख लेता है। इसलिए हमें बीता हुआ समय अच्छा मालूम पड़ता है। आदमी कहता है, बचपन बहुत अच्छा था। उसका कोई और कारण नहीं है। बचपन की जितनी दुखद स्मृतियां थीं, उन्हें नीचे दबा देता है चित्त, और जो सुखद थीं थोड़ी सी, उनको ऊपर रख लेता है, उनको याद रख लेता है। एक बूढ़ा आदमी कहता है कि जवानी बहुत मझे की थी। बस जवानी में थोड़ा सा सुखद जो घटा होगा, उसे ऊपर रख लिया है, बाकी सब उसने दबा दिया है। अगर उसका पूरा चित्त खोला जा सके तो वह हैरान रह जाएगा कि जो सौ घटनाएं घटती हैं, उनमें निन्यानबे दुख की होती हैं और मुश्किल से एकाध में कभी हलके सुख की झलक होती है। मगर चित्त ऐसा धोखा कर सकता है। अगर दो-चार जन्म खोले जा सकें, तब तो पूरी जिंदगी बदल जाती है। क्योंकि फिर आप और ही ढंग से सोचेंगे, कुछ और ही केंद्र बनाएंगे। स्मृतियां अतीत की ही हैं, लेकिन वे फर्क लाती हैं, एकदम फर्क लाती हैं।

प्रश्नः सूक्ष्म शरीर प्राणी का और आदमी का एक समान होता है?

प्राणी यानी?

प्रश्नः जानवर।

एक सा नहीं होता है, अलग-अलग होता है।

प्रश्नः सूक्ष्म शरीर अगर चक्रों के अनुसार है तो क्या चक्र अगल-अलग हैं दोनों के?

नहीं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सूक्ष्म शरीर जो है आपका, अगर मनुष्य हैं तो जैसा आपका शरीर है, ठीक इसी आकृति का, ठीक ऐसा ही, लेकिन अत्यंत एस्ट्रल एटम का बना हुआ, बहुत सूक्ष्म पदार्थों का बना हुआ शरीर होगा। उसके आर-पार जाने में कठिनाई नहीं है। अगर हम एक पत्थर फेंके तो उसके आर-पार जाने हो जाएगा। वह सूक्ष्म शरीर अगर दीवाल से निकलना चाहेगा तो निकल जाएगा, उसमें कोई बाधा नहीं है। लेकिन आकृति बिल्कुल यही होगी, जो आपकी है। धुंधली होगी, जैसे धुंधला फोटोग्राफ हो। अगर आपके सूक्ष्म शरीर का फोटोग्राफ होगा तो बिल्कुल इसमें मेल खाएगा, लेकिन ऐसा मेल खाएगा, जैसे कोई सैकड़ों वर्षों में पानी पड़ते-पड़ते एकदम धुंघला हो गया हो। गाय का होगा तो गाय जैसा होगा। लेकिन गाय जब मनुष्य के शरीर में प्रवेश करेगी तो सूक्ष्म शरीर चूंकि इतना वायवी है, वह किसी भी आकृति में फौरन ढल सकता है। वह कोई ठोस चीज नहीं है। जैसे हम पच्चीस ढंग के गिलास रखें और पानी को एक गिलास में डालें तो पानी उस आकृति का होगा, दूसरे गिलास में डालें तो दूसरी आकृति का होगा। क्योंकि पानी लिक्विड है, उसका कोई ठोस आकार नहीं है वह जिस गिलास में होता है, उसी आकार का होता है। तो वह जो सूक्ष्म शरीर है, वह जिस प्राणी-जीवन में प्रवेश करता है, उसी आकार का हो जाता है। उसके आकार में ठोस पन नहीं है। इसलिए अगर गाय का सूक्ष्म शरीर निकल कर मनुष्य में प्रवेश करेगा तो वह मनुष्य की आकृति ग्रहण कर लेगा।
सूक्ष्म शरीर की जो आकृति है, वह डिजायर (इच्छा) से पैदा होती है, वह वासना से पैदा होती है। जिस जीवन में प्रवेश की वासना पैदा हो जाएगी सूक्ष्म शरीर उसी का आकार ले लेगा। अगर हम अपने इस शरीर पर भी प्रयोग करेंगे तो हम बहुत हैरान हो जाएंगे। यह शरीर भी बहुत-कुछ आकृतियां हमारी वासना से ही लेता है।
अभी तो वैज्ञानिक भी इस बात को समझने में असमर्थ हैं कि हम खाना खाते हैं तो उसी खाने से हड्डी बनती है, उसी खाने से खून बनता है, उसी खाने से हाथ की चमड़ी भी बनती है, उसी खाने से आंख के अंदर की चमड़ी भी बनती है, लेकिन आंख की चमड़ी देखती है और हाथ की चमड़ी नहीं देखती है। कान की हड्डी सुनती है और हाथ की हड्डी नहीं सुनती है। जो तत्व हम ले जाते हैं, वह एक ही है। इतना सारे का सारा जो निर्माण भीतर होता है, यह किस आधार पर हो रहा है?
उसे हमारे भीतर जो गहरी वासना है, वह आकृति देती है। उस वासना का सूक्ष्म रूप, अब वे कहते हैं कि जरूर किसी कोड-लैंग्वेज (गुप्त भाषा) में कहीं न कहीं लिखा होगा। जैसे एक बीज है, उस बीज को हम डाल देते हैं। खोल कर देखें तो हमें कुछ पता नहीं चलता है। उस बीज को हम मिट्टी में डालते हैं तो उसमें से फूल निकलता है। समझो, सूर्यमुखी का फूल निकलता है। तो सूर्यमुखी के फूल में जितनी पंखुड़ियां हैं, इसका कुछ न कुछ कोड लैंग्वेज में उस बीज में लिखा हुआ होना चाहिए। अन्यथा यह कैसे संभव है कि यह सूर्यमुखी का ही पौधा बनता है? यह दूसरा पौधा नहीं बन जाता। बीज में किसी न किसी तरह का, किसी न किसी सूक्ष्म तल पर जो होने वाला है, वह सब लिखा होना चाहिए। एक मां के पेट में एक अणु गया है, उस अणु में वह सब लिखा हुआ है जो आपमें संभव होगा। वह उस अणु में कहां लिखा हुआ है? अभी तक यह बात वैज्ञानिक की पकड के बाहर है। लेकिन अध्यात्मक, या योग का कहना है कि उसमें जो प्राण प्रविष्ट हुआ है, उस प्राण की जो वासना है, वह वासना "कोड" है, उस कोड से सब विकसित होगा। वह जो सूक्ष्म शरीर है, जब तक एक ही तरह की जीवन-यात्रा करेगा। जैसे

दस जन्म होंगे आदमी के तो वह आदमी का रहेगा, लेकिन हर जन्म में उसकी आकृति बदलती चली जाएगी और वह आकृति भी आपकी वासना से ही निर्धारित होगी।

प्रश्नः जरा स्पष्ट कीजिए।

चक्र न? हां, चक्र को असल में गौर से समझें तो सूक्ष्म शरीर और इस शरीर
के बीच जो कांटेक्ट-फील्ड (संबद्ध क्षेत्र) हैं, उनका नाम चक्र है। यानि आपका यह शरीर और वह शरीर जहां-जहां छूता है, वे चक्र हैं। वे सब समान हैं। उसमें कोई फर्क नहीं पडता। सब में--जहां से गाय का शरीर छुएगा, वहां चक्र बन जाएगा। छूने के स्थल तय है। जैसे समझ लें कि सेक्स के सेन्टर पर एक चक्र होगा, चाहे वह किसी जाति का प्राणी हो--कुत्ता हो, बिल्ली हो, आदमी हो, औरत हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक बहुत फोर्सफुल (शक्तिशाली)चक्र सेक्स के सेंटर पर होगा। वह चक्र सब शरीरों में होगा, उनकी आकृति चाहे कुछ भी हो। हां वह चक्र छोटा बड़ा हो सकता है, कमजोर और ताकतवर हो सकता है। सात चक्र होंगे। उसका मतलब केवल इतना है कि उनके बाकी चक्र निष्क्रिय पड़े हुए हैं। वे जब भी सक्रिय हो जाएंगे, उनकी उतनी इंद्रियां प्रकट होने लगेंगी। चक्र निष्क्रिय हो सकते हैं। हमारे भीतर भी सात चक्र होते हैं, लेकिन सातों सक्रिय नहीं होते। सातों सक्रिय हो जाएं तो समझो कि बहुत अदभूत घटना घट गई। हमारे भी सातों चक्र सक्रिय नहीं होते। आमतौर से सौ आदमियों की जांच पडताल करेंगे तो सेक्स का चक्र तो सब में मिलेगा, बाकी छह चक्रों में से कोई एकाध चक्र किसी में सक्रिय होगा, किसी में दो चक्र सक्रिय होंगे, नहीं तो नहीं होंगे।
प्रकृति ने जितने चक्र सक्रिय बनाए हैं, वे तो सक्रिय रहते हैं। लेकिन जितने साधना से सक्रिय होते हैं, वे नहीं होते। वे हैं तो हमारे भीतर, लेकिन वे निष्क्रिय पडे हुए हैं। जैसे बिजली का बटन तो है, बल्ब भी है, लेकिन ऑफ है तो बल्ब बंद पड़ा हुआ है। वह ऑन हो जाए तो बल्ब जल जाए। चक्र पूरी तरह मौजूद है, लेकिन ऑन हालत में नहीं, ऑफ हालत में है। तो हमारे जितने श्रेष्ठतर चक्र हैं, वह ऑफ हालत में हैं। ध्यान और योग से उनको ऑन-हालत में लाने की यह चेष्टा की जाती है कि वे ऑन हो जाए, सक्रिय हो जाएं। जितने ऊपर के चक्र सक्रिय होने लगते हैं, उतने नीचे के चक्र अपने आप निष्क्रिय होने लगते हैं। क्योंकि, जो शक्ति है हमारे पास, वह वही है। वह धीरे-धीरे ऊपर के चक्रों में गतिमान हो जाती है, नीचे के चक्र शिथिल हो जाते हैं।
इसपर कभी पूरी बात करनी अच्छी होगी। मैं चाहता हूं कि लेक्चर्स की पूरी एक सिरीज इस पर हो सके तो अच्छा है। बहुत बात करने जैसी हैं, क्योंकि मामला इतना आसान नहीं है जितना आमतौर से समझा जाता है। कॉफी जटिल है।

प्रश्नः पिछले जन्मों में जाने के लिए जो आपने बात की, उसकी क्या कोई आउटलाइन (रूप-रेखा) दे सकेंगे?

नहीं, वह तो आप आ जाएं तो करवा ही दूं। आउटलाइन जरा मुश्किल बात है। आउटलाइन से काम नहीं होगा। आउटलाइन दी भी नहीं जा सकती। वह तो आप एक स्टैप (पग) पूरा करें तो दूसरे की आउटलाइन दी जा सकती है, नहीं तो आप परेशानी में पड़ जाएंगे उससे कोई मतलब नहीं है और उससे कुछ कर भी लें तो उससे कुछ मतलब सिद्ध नहीं होगा। वह तो एक स्टैप पूरा हो जाए तो दूसरे स्टैप की बात करना सार्थक है।

प्रश्नः जो प्रेक्टिकल हैं, वे ख्याल में आते हैं जैसा प्रयोग वैज्ञानिक करते हैं, सब लोग घर में प्रयोग नहीं करते हैं। लेकिन जो ऐसा मालूम होता है कि हो सकता है?

दोनों में बुनियादी फर्क है। यह वैज्ञानिक प्रयोग नहीं है उन अर्थों का, क्योंकि विज्ञान और धर्म के प्रयोग में जो बुनियादी फर्क है, वह यह है

कि विज्ञान का प्रयोग ऑब्जेक्टिव है। बिजली का एक पंखा किसी ने बनाया तो जिसने बनाया है उसी को पंखा दिखता है ऐसा नहीं है; जिन्होंने नहीं बनाया है, वे सब देखने आकर खडे हो गए हैं तो उनको भी पंखा दिखता है। चलाएंगे तो चलता हुआ भी दिखता है। वे मानते हैं कि ठीक है, पंखा चलता है, हवा भी फेंकता है। विज्ञान जो प्रयोग कर रहा है वह ऑब्जेक्ट के साथ कर रहा है। धर्म जो प्रयोग कर रहा है, वह सब्जेक्ट के साथ कर रहा है। मैंने जो अपने साथ प्रयोग किए हैं, वे आपको किसी हालत में नहीं दिख सकते। कोई कारण नहीं है दिखने का। सच तो यह है, मेरे शरीर से ज्यादा मेरे भीतर आपको कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता है। कैसे दिखाई पड़ेगा? शरीर ऑब्जेक्ट है। लेकिन मैं तो आपके लिए कभी ऑब्जेक्ट नहीं हो सकता; न आप मेरे लिए ऑब्जेक्ट हो सकते हैं। धर्म के सारे प्रयोग सजेक्ट से जुड़े हुए हैं--वह जो भीतर है, उससे।
कोई महावीर या कोई बुद्ध कितने ही प्रयोग कर लें, फिर भी बाहर अगर लाकर महावीर को बिठा दिया जाए सामान्य कपड़ों में, आपके बीच, तो आपको पता भी नहीं चलेगा यहां महावीर बैठे हुए हैं। क्योंकि जो घटना घटी है, वह इतनी आंतरिक है, इतनी भीतरी है कि सिर्फ महावीर के लिए ही साक्षात हो सकता है उसका। उसका साक्षात बाहर से नहीं हो सकता। बाहर से भी एक स्थिति में हो सकता है कि ठीक वैसी घटना आपके भीतर भी घटी हो। कोई भीतरी पहचान हो सकती है कि महावीर की आंख में आपको वह बात दिखाई पड़ने लगे जो आपको अपनी आंख में आपको अनुभव होती है। महावीर के चलने में आपको वह बात दिखाई पड़ने लगे जो आपके चलने में फर्क पड़ गया है। तब शायद आपको थोड़ा अंदाजा लगे कि इस आदमी के भीतर भी कुछ वैसी बात तो नहीं हो गई, जैसी मेरे भीतर हो गई है? नहीं तो अन्यथा बिल्कुल मुश्किल मुआमला है।
रूप-रेखा की जो बात है कि आउटलाइन भी दी जा सके, आउटलाइन देना भी बहुत मुश्किल है, क्योंकि मुआमला ही ऐसा है। समझ लीजिए कि पहली कक्षा में एक विधार्थी भर्ती हुआ है, और वह कहता है कि थोड़ी बहुत हमें मैट्रिक की आउटलाइन दे दी जाए तो पहली कक्षा में पढने में थोड़ी सुविधा हो। शिक्षक उससे कहेगा कि चूंकि तुम अभी पहली कक्षा से ही परिचित नहीं हो, मैट्रिक की आउटलाइन का कोई मुआमला ही नहीं उठता-- हम कैसे तुम्हें आउटलाइन देंगे? तुम कैसे जानोगे? क्या करोगे तुम उसे जान कर? तुम पहचान भी नहीं सकते हो उसको, क्योंकि जिस भाषा में आउटलाइन दी जाने वाली है, वह भाषा तुम जब इन कक्षाओं से गुजरोगे, तब तुम्हारे पास होगी। वह आउटलाइन भी जो दी जानेवाली है।
समझ लीजिए कि पांच साल, सात साल का एक बच्चा है। उसको अगर सेक्स के संबंध में समझाने बैठा जाए; तो बहुत कठिनाई हो जानेवाली है। क्योंकि, उस बच्चे के पास कोई भीतरी भूमिका नहीं है, जिससे वह सेक्स की भाषा समझ सके; क्योंकि उसके लिए कोई सवाल ही नहीं उठता है कि यह कैसे समझे। आप क्या कह रहे हैं, यह कैसे समझे? आप आउटलाइन भी उसको दे देंगे, तब भी उसको ऐसा लगेगा कि न मालूम किस लोक की बात की जा रही है जिससे मेरी कोई पहचान नहीं है। तो जितने गहरे सत्य हैं भीतर के, उनकी बिल्कुल प्राथमिक बात की जा सकती है-- बिल्कुल प्रारंभ की, बिल्कुल शुरू की। एक-एक कदम उनमें गति हो तो आगे की, एक-एक कदम आगे की बात की जा सकती है। एक सीमा के बाद उसकी पूरी बात की जा सकती है, नहीं तो नहीं की जा सकती।
हमारी कठिनाई यह है कि हम में से प्रयोग करने के लिए बहुत कम लोग हिंमत जुटा पाते हैं। कुछ बातें ऐसी हैं, जो बिना प्रयोग के कभी अनुभव में आ ही नहीं सकतीं। छोटा मोटा प्रयोग भी करना हमें मुश्किल गुजरता है। ये सब प्रयोग, टोटल डिस्टर्बेंस (पूरी उथल-पुथल) पैदा करने वाले हैं। आपकी पूरी की पूरी जिंदगी अपरूटेड (उखड़) हो जाएगी और तरह की हो जाएगी, क्योंकि कुछ चीजें आपको पता ही नहीं, जो दिखाई पड़ें। कुछ चीजें, जो आपने कभी सोचा भी नहीं, जो दिखाई पड़ें। कुछ चीजें, जो आपने सोची भी नहीं है, सामने आ जाएगी। उनको एक एक कदम करना ही उचित है।

प्रश्नः मेरा सवाल यह है कि आपने कहा कि रोज सुबह और रात हम करीब करीब पंद्रह मिनट ध्यान करें, तो इससे आगे आप कुछ कहेंगे, ऐसा मेरा ख्याल था।

वह भी कोई करता पंद्रह मिनट बैठ कर। वह भी मैं कहता हूं तब एकाध-दो दिन कोई बैठ कर कर लेता है। अगर वह भी दो तीन महीने श्रमपूर्वक करे तो उसकी पूरी की पूरी जिज्ञासा बदल जाएगी। तब वह जो प्रश्न पूछेगा, वे दूसरे हो जाने वाले हैं। वह उसे कुछ चीजें दिखाई पड़नी शुरू होंगी, जिनके बावजूद वह कुछ ऐसा पूछना शुरू करेगा जो आप कभी पूछ ही नहीं सकते। यानी आदमी क्या पूछता है, यह देख कर मैं कह सकता हूं कि वह कहां है। आदमी पूछेगा वही न, जहां वह सोच रहा है, जहां सारा चित्त खड़ा हुआ है। कोई भी फिकर नहीं करता कि वह तीन-चार महीने भी ताकत लगा कर कर ले। उतना भी नहीं हो रहा है। वह भी थोड़ा सा हो तो आगे बात की जा सकती है, जरूर की जा सकती है।
अब मैं इधर चुनाव कर रहा हूं कि कुछ लोगों को केंप में बुलाना चाहूंगा जिसमें कुछ लोगों को ही निमंत्रण करूंगा कि वे आ जाएं। जिसको मैं बुलाऊंगा, वही सिर्फ आ जाएं। मेरी नझर में कुछ लोग आने शुरू हुए हैं जो थोड़ा काम कर रहे हैं। उन थोड़े लोगों के साथ आगे मेहनत की जानी जरूरी है।

प्रश्नः अस्पष्ट लगता है अभी।

हां, कारण हैं लगने के। बड़ा कारण तो यह है कि हजारों साल से ऐसा समझाया
जा रहा है कि किसी की कृपा से हो जाएगा। कोई कर देगा तो हो जाएगा। कोई गुरु मिल जाएगा तो कर देगा। हजारों साल से यह समझाया जा रहा है कोई कर देगा तो हो जाएगा; आपको कुछ करना नहीं है। यह मन में बैठ गया है गहरे। दूसरी बात यह है कि कोई भी आदमी बहुत श्रम से गुजरना नहीं चाहता ऐसी चीजों के लिए, जो बहुत साफ साफ दिखाई न पड़ती हों। धन दिखाई पड़ता है तो आदमी श्रम कर लेता है। पद दिखाई पड़ता है तो आदमी श्रम कर लेता है। धर्म का मुआमला ऐसा है कि दिखाई बिल्कुल नहीं पड़ता। श्रम की बहुत मांग है इसमें कि इतना करो तो कुछ होगा। इतना श्रम करो तो दिखाई पड़ेगा। तो अदृश्य के लिए श्रम जिटाने की क्षमता थोड़े लोग ही कर सकते हैं। दृश्य के लिए श्रम जुटाना बहुत आसान बात है। फिर हमारे चारों तरफ जो लोग कर रहे हैं, वही हम करते है, क्योंकि हम आमतौर से खुद कुछ भी नहीं करते। जो हमारे चारों तरफ हो रहा है, उसका हम अनुकरण करते हैं। जैसे कपड़े लोग पहनते हैं, हम पहन लेंगे। जो लोग पढ़ रहे हैं वह हम पढ़ेंगे। जिस पिक्चर को वे देख रहे हैं, हम देखेंगे। चारों तरफ से हमारे चित्त के जो तार हैं वे जिस तरफ खींचे जाते हैं, वहां खिंचते हैं। जैसे कि अगर हिंदुस्तान में आप पैदा हुए तो आप और तरह के काम करेंगे; अगर आप जापान में पैदा हुए तो आप और तरह के; और फ्रांस में पैदा हुए तो और तरह के।
बुद्ध और महावीर जैसे लोगों ने दस-दस हजार भिक्षु इकट्ठे किए. और करने
का कारण यह नहीं था कि दस हजार इकट्ठा करने से कोई फायदा था। उपयोग सिर्फ इतना था कि आम आदमी दस हजार के बीच फौरन सक्रिय हो जाता है, जो अकेले में हो ही नहीं सकता। जब दस हजार भिक्षु साधना में लगे हों, जहां दस हजार भिक्षु सुबह से शाम तक आत्मिक अनुभवों की बात कर रहे हों, वहां आप अगर पहुंच गए तो बहुत असंभव है कि आप इस धारा में प्रविष्ट होने से बच जाएं। आप इसमें डूब जाने वाले हैं। बड़े आश्रमों का और बडे प्रतिष्ठानों का उपयोग सिर्फ इतना था कि वहां की पूरी की पूरी हवा जैसे संसार की पूरी की पूरी हवा सांसारिक है, और आप यहां वही करने लगते हैं जो दूसरे कर रहे हैं; ठीक इसी तरह यदि वहां पूरी हवा आध्यात्मिक हो तो आप वही करने लगेंगे जो वहां चारों तरफ हो रहा है। एक दफा थोड़ी सी गति हो जाए, तो इतना रस आने लगता है कि फिर कोई मतलब नहीं है कि कौन कर रहा है, कौन नहीं कर रहा है। आपका अपना आनंद ही आपको खींचने लगता है। लेकिन पहला स्टेप उठ जाए, उसकी जरूरत है।
इधर जितना लंबा फासला हुआ है, उतना आदमी को ऐसा लगने लगता है कि अध्यात्म पता नहीं, कहीं मुट्ठी में, पकड़ में तो आता नहीं कि क्या है। कौन झंझट में पड़े! एक-दो दिन में मुट्ठी में पकड़ में आ जाए, तो भी कोई झंझट में पड़ जाए। हमारे जन्मों-जन्मों की यात्रा प्रतिकुल है और उलटे संस्कार इकट्ठे हैं। उनको पार किए बिना कहीं गति हो नहीं सकती। इतना लंबा और कठिन

दिखाई पड़ता है कि आदमी सोचता है--ठीक है, तो सुन लो, बात कर लो, पढ़ लो। इससे ज्यादा वह झंझट में पड़ने का नहीं।
एक बहुत अच्छे आदमी हैं। वह कई बार मेरे पास आते थे। अब वह बूढे हो गए हैं। वह कई बार गांधी के साथ रहे, विनोबा जी के साथ रहे, उनके खास साथियों में से हैं। अरविंद आश्रम रहे, रमण के यहां रहे। हिंदुस्तान में इधर पचास सालो में जो कुछ हुआ होगा, वह सब से परिचित है, सब जगह रहे हैं। मैंने कहा, बातचीत आप बहुत कर चूके, अब कुछ करिएगा, क्योंकि अब उम्र बहुत हो गई। तो उनसे मैंने कहा, इक्कीस दिन का प्रयोग मैं आपको बताता हूं, पहले आप यह करके आइए तो फिर मैं आगे बात करूं, नहीं तो बेकार है। आप कितने लोगों से बात कर चूके, अब आगे इसका कोई मतलब है नहीं। वह मेरा प्रयोग समझे और मुझसे बोले कि यह तो मैं करूंगा नहीं, क्योंकि इसमें तो मैं पागल हो जाऊंगा? मैंने उनसे कहा कि अब मरने के करीब हैं आप; वर्ष, दो वर्ष या कितने दिन जिंदा रहेंगे, यह नहीं कहा जा सकता। हिंमत कर लीजिए, पागल-वागल नहीं हो जाएंगे। वैसे पागल ही है आप। जो आदमी पचास साल से निरंतर अध्यात्म की बातें सुनता हुआ घूम रहा हो और एक प्रयोग न किया हो, वह आदमी पागल नहीं तो और क्या है? घूमें मत! फिर ऐसा है तो... तो कहने लगे, नहीं, यह मैं नहीं कर सकता आपका यह प्रयोग तो मैंने पूरा समझा, इसमें सात दिन के बाद ही में लौटने वाला नहीं हूं, मैं तो गया! उस दिन से वह फिर मुझसे जिज्ञासा करने भी नहीं आए, क्योंकि वह समझ गए कि मैं कहूंगा कि वह करिए, फिर आगे की बात होगी। नहीं तो बात नहीं होगी। जिज्ञासा बौद्धिक हो गई, बिल्कुल इंटलेक्चुअल। एक आदमी आकर पूछ लेता है--ईश्वर है या नहीं? उससे उसे कोई मतलब नहीं है। हो तो ठीक है, न हो तो ठीक है। इससे कुछ भी मतलब नहीं है। पूछने में भी कोई सार नहीं है।
फ्रांस में एक फकीर था, गुरजिएफ। जो भी आदमी आएगा, जिज्ञासा करने के पहले उसे बड़े उपद्रवों में से गुजारेगा वह। जब वह उतनी हिम्मत दिखाने को राजी हो जाए तो जिज्ञासा कर सकता है, नहीं तो नहीं करने देगा वह। वह कहेगा फिजूल जिज्ञासा से तो कोई मतलब नहीं।
इधर मैं भी जो इतनी बात करता हूं, वह इसी ख्याल से करता चला जाता हूं
कि इसमें से कुछ लोग ठीक जिज्ञासा पर आ जाएंगे। हजार आदमी पूछते हैं। कोई एक आदमी करने को राजी होगा। एक, दो-तीन वर्ष घूमता रहूंगा और फिर मेरी नजर में लोग आते जाते हैं। उन लोगों को बुला कर जो करना है कर लूंगा। फिर एक कोने में बैठ जाऊंगा। जिसको करना हो वह वहां आ जाए। फिर मुझे कोई भटकने की जरूरत नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है। ध्यान रहे कि करेंगे तो ही कुछ होगा। किसी के करने से कुछ होमे वाला नहीं है। अब न साहस है, न इच्छा है, कोई कामना भी नहीं है--ऐसा ख्याल बनता है कि सब-कुछ करते हुए कभी घड़ी आध घड़ी इस तरह की बातें भी कीं तो अच्छा है। इससे ज्यादा नहीं है कुछ।

सम्बोधि के क्षण
आठवां प्रवचन

मेरा विकल्प

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

चित्रकला में चित्रकार, चित्र बनाने वाला अलग होता है, और जैसे-जैसे चित्र बनता जाता है, वैसे-वैसे चित्र अलग होता जाता है। जब तब नहीं बना, तब तक बनाने वाला चित्र एक है। जब तक चित्र नहीं बना, तब तक चित्रकार ही है, और वही चित्र भी है। फिर उसने बनाया, तो चित्र अलग हो गया और चित्रकार अलग हो गया।
तो एक ऐसा सृजन है कि जहां सृष्टा से अलग हो जाता है। लेकिन दूसरा उदाहरण लें--नृत्यकार है, वह नाचता है। लेकिन नृत्य अलग नहीं होता है। लेकिन नृत्य और नृत्यकार एक ही रह जाते हैं। जब नहीं नाच रहा था, तब भी एक थे। अब जब नाच रहा है, तब भी एक हैं और नाच बंद हो जाएगा, तो नृत्यकार ही मिलेगा, नृत्य कहीं खोजने से मिलने वाले नहीं है। यानी वहां क्रिएटर और क्रिएशन एक ही है। ये दो उदाहरण इसलिए लेता हूं कि जब तक आमतौर से परमात्मा को इस तरह सोचा गया है कि जैसे वह बना कर अलग हो जाता है। वह गलत दृष्टि है। परमात्मा क्रिएटर नहीं है, सृष्टा नहीं है; क्योंकि सृष्टा हमेशा सृष्टि से अलग हो जाता है।
परमात्मा है क्रिएटिविटी, परमात्मा है सृजन की शक्ति।
जैसे, नृत्य और नृत्यकार, कि वह अलग हो जाता। यानी सृष्टि और सृष्टा
एक ही है। जो हमें दिखाई पड़ने लगता है, वह सृष्टि है। जो प्रकट हो जाता है, वह सृष्टि है, और जो अप्रकट रह जाता है और दिखाई नहीं पड़ता है, वह सृष्टा है। जैसे नृत्यकार अभी नहीं नाच रहा है, तो अभी प्रकट नहीं हुआ है नृत्य। कहीं सोया पड़ा है। नाचेगा तो प्रकट हो जाएगा।
परमात्मा और प्रकृति या सृष्टा और सृष्टि दो चीजें नहीं हैं। इन्हें
एक बार दो मान लिया, तो सवाल उठेगा। इन्हें अगर एक ही मान लिया, तो ऐसा नहीं है कि कोई है तय करने वाला और हम उसे निभाने वाले हैं। नहीं, वह जो तय करने वाला है, वह हम ही हैं। तय करने वाला और हम दो नहीं हैं। वह हमीं हैं। और वह हमारे कृत्य से ही तय करता है। उसके पास तय करने का और कोई उपाय नहीं है। यानी हम ही हैं वह। तो जब हम कुछ कर रहे हैं, तब हम एक अर्थ में परिपूर्ण स्वतंत्र हैं कि हम वही हैं, और दूसरे अर्थ में हम बिल्कुल बंधे हैं। वह इस अर्थ में कि हम वह पूरे नहीं हैं, वह पूरा हमसे बहुत बड़ा है। हम सिर्फ उसके एक हिस्से हैं।
सागर की एक लहर है। एक अर्थ में वह स्वतंत्र है। हिलती है, डुलती है,
इस अर्थ में स्वतंत्र है कि वह भी सागर का हिस्सा है, लेकिन इस अर्थ में परतंत्र हैं कि वह सिर्फ एक लहर है और सागर बहुत बड़ा है। और भी लहरें हैं, और ऐसा भी सागर है, जहां लहरें नहीं भी हैं। इसका मतलब यह हुआ कि हम जो कर रहे हैं अगर हम अपने को अलग मान लें तो यह सवाल उठता है कि हम करने वाले हैं या नहीं हैं और अगर हम वही हैं, करने वाले ही हम हैं, तो यह सवाल ही नहीं उठता कि हम बंधे हैं या स्वतंत्र है। और जो भी हो रहा है, वह हमारे द्वारा ही हो रहा है। वह हमारे बिना हो भी नहीं सकता। सारी कठिनाई इसलिए पैदा हुई है कि कहीं भूल कर हमने अपने को अलग मान रखा है, एक-एक लहर अपने को अलग मान रही है। इसलिए लहर पूछती है कि मैं स्वतंत्र हूं कि परतंत्र हूं? लेकिन पूछने में उसने यह मान ही लिया है कि मैं अलग हूं। और अलग है तो यह प्रश्न सार्थक है कि स्वतंत्र है या परतंत्र! और अगर अलग है ही नहीं, तो स्वतंत्र किससे होना है? परतंत्र किससे होना है?
मेरी दृष्टि में हम न स्वतंत्र हैं, और न परतंत्र हैं, क्योंकि हमारे अलावा कुछ है ही नहीं। इसी अर्थ में हम परतंत्र हो सकते हैं कि सिर्फ एक हिस्से हैं, एक लहर हैं, पूरा सागर नहीं हैं। अगर हमें पता चल जाए कि यह लहर सागर के सिवाय कुछ भी नहीं है तो इस अर्थ में हम स्वतंत्र हो जाते हैं। मेरा मतलब यह है कि अहंकार जितना गहरा है, उतने ही हम परतंत्र है। अहंकार

जितना विसर्जित है, उतने हम स्वतंत्र हैं। अहंकार के अतिरिक्त हमारी और कोई परतंत्रता नहीं है। हम हैं, यही हमारी परतंत्रता है। अगर हम नहीं हैं, तो परतंत्रता का कोई उपाय नहीं है। स्वतंत्रता ही शेष रहेगी। अहंकार अकेली परतंत्रता है, और अहंकार का मिट जाना स्वतंत्रता है। परमात्मा अगर है तो ऐसा ही है, जहां अहंकार नहीं है। और हम अगर हैं, तो ऐसे ही हैं जहां अहंकार है। इसलिए हम परमात्मा से भिन्न होने के ख्याल में हैं।
मैं एक कहानी कहता रहा हूं निरंतर। एक रूसी कवि ने एक कविता लिखी है।
एक अंगूर की बेल है, जो राजमहल पर चढ़ी हुई है। और अंगूर की बेल ने भी सुना है राजमहल में विवाद होते बहुत बार। राजा संन्यासियों से पूछता है कि हम स्वतंत्र हैं कि परतंत्र! बहुत विवाद सुने हैं उसने। और एक दिन उसने चर्चा सुनी कि कोई आदमी कह रहा है कि सब स्वतंत्र है, क्योंकि परमात्मा है ही नहीं। परमात्मा ही नहीं है, तो परतंत्र कौन करेगा? दो रास्ते हैं स्वतंत्रता के, या तो परमात्मा न हो तो हम स्वतंत्र हैं, या हम न हों तो स्वतंत्र हैं, क्योंकि परमात्मा ही रह जाता है। दो हों तो परतंत्रता रहेगी; क्योंकि दूसरा जो है, वह किसी न किसी तरह की सीमा बांधेगा, और परतंत्र करेगा। अगर एक ही है, तो ही स्वतंत्रता हो सकती है। नास्तिक एक तरह से स्वतंत्र होने की कोशिश करता है, ईश्वर को खत्म करके। आस्तिक एक तरह से स्वतंत्र होने की कोशिश करता है, अपने को खत्म करके। किंतु अगर एक रह जाए, तो परतंत्रता का कोई उपाय नहीं है।
तो उस दिन उसने सुना है कि परमात्मा है ही नहीं इसलिए सब स्वतंत्र हैं। तो उस दिन उस बेल ने परमात्मा से चिल्ला कर कहा कि तू चूंकि है ही नहीं, और हम स्वतंत्र हैं, इसलिए आज से मैं बढ़ने से इनकार करती हूं। बहुत हो गया, बढ़ते-बढ़ते परेशान हो गई, थक गई। कितने पत्ते निकाले, कितने अंगूर निकाले। हर वर्ष वही-वही काम। बहुत थक गई, अब बंद करती हूं। उसने कहाः अब मैं स्वतंत्र हूं तो अब बंद करती हूं यह बढ़ना। उसने यह कहा जरूर, लेकिन दूसरे दिन सुबह देखा कि बढ़ना तो हो गया है। पत्ते नये निकल आए हैं, बेल लंबी हो गई है। उसने बहुत चिल्ला-चिल्ला कर कहा कि मैं स्वतंत्र हूं, अब मुझे नहीं बढ़ना है, लेकिन वह रोज बढ़ती चली गई।
बेल किससे स्वतंत्र होना चाह रही है? बढ़ना बेल का ही हिस्सा है। इसलिए स्वतंत्र होने का कोई उपाय नहीं है। हम सिर्फ उससे स्वतंत्र हो सकते है, जो हमसे अलग और भिन्न है। हम उससे स्वतंत्र कैसे हो सकते हैं, जो हमीं हैं? अब बेल का बढ़ना जो है, उसकी जो ग्रंथि है, वह तो उसका स्वभाव है, और वह कहे कि अब मैं बढ़ना बंद करती हूं, अब मैं स्वतंत्र हो गई, अब मैं नहीं बढ़ती! लेकिन उसे बढ़ना पड़ता है। इसलिए में वह समझ नहीं पा रही है। बेल का होना, उसके बीइंग का ही बढ़ना है। ये दोनों दो चीजें नहीं हैं बल स्वतंत्र हो जाए। बेल तो बढ़ेगी ही, बेल तो फलेगी ही। यह फैलना और बढ़ना एक अर्थ में परतंत्रता है; और अगर बेल बढ़ने और फलने से अपने को अलग समझ ले। अगर बेल ऐसा समझती हो कि बढ़ना, पत्ते लगना, फलना, ये अलग चीजें है, मैं अलग हूं--ऐसी कहीं बेल है, जो न बढ़ती हो, न पत्ते लगते हो, न फल आते हों? ऐसी बेल ही नहीं है। असल में बेल एक नाम है इसी सब ग्रोथ का, बढ़ने का, फलने का, फूलने का, फल लगने का। इन सब का इकट्ठा नाम बेल है। और बेल को भ्रम हो जाए कि मैं अलग हूं, और वह कहे कि मैं नहीं बढूंगी, तो कोई उपाय नहीं है। तब वह परतंत्र अनुभव करेगी। तब वह बेल कहने लगी, मैं बड़ी परतंत्र हूं, बढ़ना नहीं चाहती हूं और बढ़ रही हूं, और मैं फूलना नहीं चाहती और फूल रही हूं।
लोगों को भी अगर यह ख्याल हो जाए कि हम अलग हैं, तो सवाल उठना शुरू हो जाता है कि हम परतंत्र हैं या स्वतंत्र हैं? और अगर यह ख्याल बैठ जाए कि मैं अलग हूं, तो सवाल ही कहां है परतंत्रता-स्वतंत्रता का? यानी परतंत्रता-स्वतंत्रता का सवाल ही अहंकार केंद्रित है। और जब तक अहंकार है, तब तक वह सवाल मिट नहीं सकता है, चाहे कोई उपाय करो। कोई कहे कि बिल्कुल स्वतंत्र हो, तो भी यह बात हल नहीं होती; क्योंकि आपके मां-बाप ने जो आपको अणु दे दिया है, आप उससे कैसे स्वतंत्र है? और वह अणु पहले से चला आ रहा है। उस अणु में लिखा था कि इतनी उम्र में आपके बाल सफेद हो जाएंगे। उस अणु में यह भी लिखा था कि आपका रंग क्या होगा। और उस अणु में यह भी लिखा था कि

मस्तिष्क कैसा होगा। उस अणु में चमड़े का रंग भी था और लंबाई भी भी शरीर की, और उस अणु में गहरे में यह भी तय था कि यह अणु कितनी देर तक चल पाएगा, और बिखर कर टूट जाएगा। और मृत्यु आ जाएगी। उस अणु में यह सब किसी बहुत गहरे कोड में लिखा था। तो स्वतंत्र कैसे हैं?
स्वतंत्रता हल नहीं करती। और अगर कोई कहे कि बिल्कुल परतंत्र हैं, तो बात झूठी है। बात इसलिए झूठी है कि अगर हर परतंत्र हैं बिल्कुल, तो मैं यही बैठ जाता हूं और तब जो मैं कर रहा हूं, वह खत्म हो जाएगा। मैं बैठता हूं, वह सब खत्म हो जाता है, फिर वह नहीं चलता। मैं चलाता हूं, तो वह चलता है। मोहम्मद का एक शिष्य था, हजरत अली। वह एक गांव से गुजर रहा है। मोहम्मद साथ हैं। हजरत अली ने मोहम्मद से पूछा कि मैं बड़ा परेशान हूं कि आदमी स्वतंत्र है कि परतंत्र है। मोहम्मद ने कहाः तू एक पैर ऊपर उठा ले, जो भी तेरी मरजी हो। तो उसने बायां पैर उठा लिया। मोहम्मद ने कहाः अब तू दूसरा पैर भी ऊपर उठा ले। उसने कहाः अब बहुत मुश्किल है। मोहम्मद ने कहाः लेकिन पहले मुश्किल नहीं था, दायां भी उठा सकता था। अब मुश्किल हो गया है क्योंकि बायां तूने उठा लिया है। मुश्किल इसलिए हो गया है कि बाएं को उठाए हुए हो। बाएं को नीचे रख दो तो अभी दायां ऊपर उठ जाएगा। अली ने कहाः मैं समझा नहीं। मोहम्मद ने कहा, मैं यह कह रहा हूं कि आदमी आधा परतंत्र है, और आधा स्वतंत्र है। एक पैर उठा लेता है, और दूसरा तब बंध जाता है। क्योंकि जब भी हम एक चीज चुनते हैं तब और चुनाव खत्म हो जाता हैं।
अगर मैं आपको घृणा करता हूं, तो प्रेम करना मुश्किल हो जाता है। मैंने चुनाव कर लिए हैं। बायां पैर उठा लिया है, अब दायां नहीं उठता है। प्रेम करता हूं तो घृणा करना मुश्किल हो जाता है। तो मेरी स्वतंत्रता, प्रतिपल मेरी परतंत्रता भी निर्मित करती है। क्योंकि मैं जो चुन लेता हूं, वह बंद हो जाता है, जो मैं छोड़ देता हूं, वह छूट जाती है। तो मोहम्मद उससे कह रहे हैं कि तू आधा स्वतंत्र है और आधा परतंत्र है।
लेकिन मेरा मानना यह है कि ये दो उपाय हैं--एक रास्ता यह है कि आदमी कहे कि बिल्कुल परतंत्र है, जैसा भाग्य वादी कहते हैं। और एक रास्ता है, जिसे पुरुषार्थवादी कहते हैं कि आदमी बिल्कुल स्वतंत्र है। वह दोनों गलत सिद्ध हुए हैं। एक रास्ता मोहम्मद का है। मोहम्मद कह रहे हैं कि आदमी आधा परतंत्र है और आधा स्वतंत्र है। यह तीसरा रास्ता है। मैं इसको भी गलत मानता हूं। क्योंकि मेरा मानना है। कि स्वतंत्रता और परतंत्रता आधी आधी जुड़ी ही होती। असल में स्वतंत्र-परतंत्रता में जोड़ ही नहीं हो सकता। इनमें कोई तालमेल ही नहीं है। स्वतंत्रता का परतंत्रता से कैसे तालमेल होगा? यह कोई बायां और दायां पैर नहीं है। दाया और बांया पैर बिल्कुल एक जैसी चीजें हैं। स्वतंत्रता-परतंत्रता बिल्कुल उलटी चीजें हैं। कोई मेल नहीं हो सकता।
तो आदमी आधा परतंत्र और आधा स्वतंत्र है। यह असंभव है। मैं यह कहता हूं कि चौथा विकल्प है और वह मेरा विकल्प है कि न आदमी स्वतंत्र है, न परतंत्र है। क्योंकि आदमी के अलावा कोई है ही नहीं कि जिससे वह परतंत्र होगा, या जिससे वह स्वतंत्र हो जाए। वही है। परतंत्र होने के लिए भी कोई चाहिए, और स्वतंत्र होने के लिए भी कोई चाहिए। किसी से हम स्वतंत्र होंगे और अगर कोई भी नहीं है, एक ही ऊर्जा काम कर रही है, तो कैसी परतंत्रता और कैसी स्वतंत्रता?
तो चार विकल्प हैं। उनमें तीन को मैं गलत मानता हूं। न तो आदमी परतंत्र है, न आदमी स्वतंत्र है, न आदमी दोनों है। आदमी दोनों नहीं है। क्योंकि आदमी जैसी कोई चीज ही नहीं है, जो कि हो सके। वह ईगो नहीं है, वहां कोई अहंकार ही नहीं है, वहां कोई वस्तुतः कुछ नहीं है। बुद्ध नहीं छू पाता। बुद्ध आत्मा को इनकार कर देंगे। इतना परमात्मवादी आदमी नहीं हुआ है दुनिया में, जो आत्मा को भी इनकार कर दे। क्योंकि वह यह कहते हैं कि अगर आत्मा है, तो परमात्मा कैसे हो सकेगा? अगर तुम हो, तो गड़बड़ हो जाएगी। बुनियादी बात यह है कि तुम नहीं हो। तुम हो ही नहीं।

प्रश्नः आपने कहा, एक पैसेज है, स्वतंत्र हैं, दूसरा स्वतंत्र नहीं हैं। तीसरा उदाहरण आपने दिया कि बोथ आर फिफ्टी-फिफ्टी। आपने चौथा विकल्प सजेस्ट किया कि न स्वतंत्र हो, न परतंत्र हो, न फिफ्टी-फिफ्टी हो, कुछ नहीं हो...

हां, इसका मतलब साफ तुम्हें हो जाएगा। इसको अगर ठीक से समझोगे, तो इसका मतलब बहुत साफ हो जाएगा। इसका मतलब यह हुआ कि अगर मैं अकेला ही हूं, तो न स्वतंत्र होने का उपाय है, न परतंत्र होने का उपाय है; क्योंकि मुझसे दूसरा चाहिए। समझे न? मुझसे दूसरा चाहिए।
और चूंकि एक ही ऊर्जा है जगत में, एक ही जीवन है। वृक्ष में भी वही है,
आप में भी, मुझ में भी और उनमें भी एक ही जीवन है। न वह परतंत्र हो सकता है, न वह स्वतंत्र हो सकता है; क्योंकि कोई उससे अलावा नहीं है। तो यह जहां स्वतंत्र भी नहीं है, परतंत्रता भी नहीं है, उसका गहरा मतलब यह हुआ कि यहां अहंकार ही हनीं है अलग-अलग, यहां एक ही परमात्मा है परमात्मा को तुम स्वतंत्र नहीं कह सकते हो, क्योंकि उसके परतंत्र होने का उपाय ही नहीं है। जो परतंत्र हो सके, उसको हम स्वतंत्र भी कह सकते हैं। और तुम परमात्मा
को परतंत्र नहीं कह सकते; क्योंकि उसे कोई परतंत्र करने वाला नहीं है, वह अकेला ही है, एकदम अकेला है। अकेला ही है। और हम सब उस अकेले के हिस्से हैं। यानी हमसे भिन्न कुछ है ही नहीं। अगर इस भांति दिखाई पड़ जाए, तो स्वतंत्रता-परतंत्रता का प्रॉब्लम गिर जाता है। उत्तर नहीं देना है। हूं मैं। मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि वह प्रश्न ही गलत है। प्रश्न है ही नहीं कहीं। वह अहंकार से पैदा हुआ है। अहंकार सबसे बड़ा झूठ है। इसलिए अगर अहंकार को मान लेते हो, तो तुम कोई सवाल हल कर नहीं पाओगे; क्योंकि तुमने पहले झूठ मान ही ली।
मैं अभी अमृतसर में था। एक वेदांती थे, स्वामी हिमगिरी। वे मुझसे कुछ नाखुश रहे होंगे। मेरी बातों से बहुत से लोग नाखुश हो जाते हैं। जो नहीं समझ पाता है, वह नाखुश हो जाता है। तो वे सीधे मेरे विवाद में पड़ गए। मैं बोला उन्होंने खड़े होकर कहा कि मैं शस्त्रार्थ करूंगा विवाद करूंगा। तो मैंने कहाः कैसे वेदांती हो? विवाद किससे करोगे? कहते हो, अद्वैत है। विवाद किससे करोगे? कहते हो कि एक ही है तो विवाद किससे करोगे? मुझे मानते हो अलग? तो फिर विवाद हो जाए लेकिन तब तुम पहले ही हार गए। तब तुम अद्वैत को सिद्ध न कर पाओगे। तुम अद्वैत को अब सिद्ध न कर पाओगे, क्योंकि विवाद किससे? अगर तुम कहते हो कि आप गलत कहते हैं, तो भी तुम यह कहते हो कि परमात्मा गलत भी बोलता है। और क्या मतलब हुआ? इसका मतलब यह है कि परमात्मा गलत भी बोलता है कभी। तो परमात्मा के गलत और सही होने का निर्णय कौन करेगा? परमात्मा गलत बोलता है, वह ठीक है। कि परमात्मा सही बोलता है, वह ठीक है? परमात्मा ही दोनों बोलता है। तो मैंने कहा, अद्वैतवादी हो, तो विवाद का उपाय नहीं है। अगर द्वैतवादी हो, तो विवाद हो सकता है, लेकिन तब तुम हार से शुरू करते हो! फिर अद्वैत की बात मत करना। वह प्रश्न नहीं उठता, फिर प्रश्न क्या है? प्रश्न कहां है। फिर उन्होंने दूसरे दिन एक कहानी कही। यह बहुत पुरानी कहानी है।
दस आदमियों ने नदी पार की। पार जाकर गिनती की है, तो अपने को छोड़ता गया
है हर आदमी और नौ का गिनता गया है। और तब वे रोने लगे हैं कि एक आदमी खो गया है। कोई पास से गुजरा है। उससे गिनती करवा दी है वे दस हैं। तो मैंने उनसे कहा कि यह कहानी शुरू से ही गलत है। शुरू से गलत इसलिए है कि नदी के उस पार वह दस की गिनती करके चले थे। अगर दस की गिनती उन्होंने ही की थी, तो बड़े पागल आदमी थे कि इस पार गिनती ठीक रही है, और उस पार गए तो भूल गए। यह पता कैसे था कि वे दस थे। गिनती नदी के इस पार की होगी। और जब गिनना जानते थे, तो हद की बात है! नदी बड़ी अदभुत थी कि उसमें से गुजर गए--आदमी अपने को गिनना भूल गया और बाकी को गिन लिया।
तो मैंने कहा, इस कहानी से कुछ चलेगा नहीं, क्योंकि इसमें पहले यह बताना पड़ेगा, कि दस की गिनती हुई कैसे? किसने की थी वह गिनती? और अक्सर ऐसा होता है कि सवाल के पहले ही गलती हो जाती है। और फिर हम पीछे हल करने बैठते

हैं। और तब सब मुश्किल हो जाती है। कहीं न कहीं कोई भूल हो गई है। कहीं कुछ हाइपोथेटिकल भूल है जो शुरू में खड़ी हो गई है, इसलिए फिर कभी हल नहीं हो पाती है! यह जो हम पूछते हैं कि आदमी स्वतंत्र है कि परतंत्र? इसमें हमने आदमी को मान लिया, वही भूल हो गई है। और आदमी है नहीं। और सवाल आदमी के मानने से शुरू हुआ है, और आदमी है नहीं। ऐसा कोई नहीं है एनटाइटी में, अलग-अलग फिर सवाल गिर जाता है। मैं सवाल का उत्तर नहीं दे रहा। मैं यह कहता हूं, सवाल गलत है।

प्रश्नः कोई हक नहीं है न किसी को बुरा या भला कहने का?

हक ही नहीं, क्योंकि कोई है ही नहीं वहां। वहां कोई है नहीं।